भारत का इतिहास प्रारंभिक काल से 300 ईस्वी तक

इतिहास विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
विश्वविद्यालय मार्ग, तीनपानी बाईपास
हल्द्वानी-263139
ई-मेल info@uou.ac.in, http@//uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक, दूरस्थ शिक्षा केन्द्र , जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय,दिल्ली

प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)

प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास, एस.एस.जीना विश्वविद्यालय,अल्मोड़ा

डॉ. एम.एम.जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

श्री विकास जोशी, असिस्टेण्ट प्रोफेसर(एसी), इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन

ब्लॉक एक

इकाई एक - इतिहास की परिभाषा , क्षेत्र तथा महत्व, प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत डॉ. आनन्द कुमार शर्मा ,ग्वालियर

इकाई दो - पाषाण युग- पुरापाषाण युग, मध्य पाषाण युग एवं नवाष्म युग - विकास जोशी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई तीन - सिन्धु सभ्यता, विस्तार, क्षेत्र तथा कालक्रम, सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति- डॉ. मदन मोहन जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ब्लॉक दो

इकाई चार - सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन, विदेशी व्यापार एवं सम्पर्क- डॉ. मदन मोहन जोशी, एससेसिएट प्रोफेसर इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई पांच - सिन्धु सभ्यता की भाषा, लिपि, एवं पतन- डॉ. मदन मोहन जोशी, एससेसिएट प्रोफेसर इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई छह - भारत में ताम्रपाषाण काल - जीतेश कुमार जोशी इतिहास विभाग , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ब्लॉक तीन

इकाई सात - भारत में आर्यों का आगमन, आर्यों का विस्तार एवं वैदिक साहित्य- डॉ. मदन मोहन जोशी, एससेसिएट प्रोफेसर इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई आठ - वैदिक युग में धार्मिक विचार एवं धार्मिक अनुष्ठान- डॉ. मदन मोहन जोशी, एससेसिएट प्रोफेसर इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई नौ - वैदिकयुगीन सामाजिक तथा आर्थिक जीवन- डॉ. मदन मोहन जोशी, एससेसिएट प्रोफेसर इतिहास, उत्तराखण्ड

मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ब्लॉक चार

इकाई दस - मगध का उत्कर्ष एवं सोलह महाजनपद- विकास जोशी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई ग्यारह - महावीर स्वामीः दार्शनिक विचारधारा, त्रिरत्न, जैन साहित्य एवं स्थापत्य कला- डॉ. सुनील कुमार यादव, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग,एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

इकाई बारह - महात्मा बुद्धः बौद्ध धर्म,बौद्ध धर्म का विस्तार,बौद्ध धर्म दर्शन- महायान, हीनयान, भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन, पतन के कारण – डॉ. सुनील कुमार यादव, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग,एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

ब्लॉक पांच

इकाई तेरह - मौर्य साम्राज्यः चन्द्रगुप्त मौर्य बिन्दुसार तथा अशोक एवं उसका धम्म – डॉ. धर्मेन्द्र कुमार, इतिहास विभाग, एस.वी.डी.कालेज, पुंवाया,बरेली

इकाई चौदह - सातवाहन युग: राजनीतिक इतिहास, भौतिक संस्कृति एवं प्रशासन- डॉ. सम्पति नेगी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई पन्द्रह - संगमकालीन दक्षिण भारत एवं संगम साहित्य विकास जोशी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई सोलह -शक,पार्थियन एवं कुषाण: राजनीति,समाज, धर्म एवं कला- डॉ. सम्पति नेगी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आई.एस.बी.एन. :
कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथ्वा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक : इतिहास की परिभाषा, क्षेत्र तथा महत्व

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 इतिहास की परिभाषा
1.3.1 इतिहास कहानी है
1.3.2 इतिहास ज्ञान है
1.3.3 इतिहास सामाजिक विज्ञान है
1.3.4 इतिहास विचारधारा का इतिहास है
1.3.5 इतिहास समसामयिक इतिहास है
1.3.6 भूत और वर्तमान की कड़ी है
1.4 इतिहास का क्षेत्र
1.4.1 राजनीतिक इतिहास
1.4.2 सामाजिक इतिहास
1.4.3 साँस्कृतिक इतिहास
1.4.4 धार्मिक इतिहास
1.4.5 आर्थिक इतिहास
1.4.6 संवैधानिक इतिहास
1.4.7 राजनयिक इतिहास
1.4.8 औपनिवेशक इतिहास
1.4.9 संसदीय इतिहास
1.4.10 कॉमनवेल्थ का इतिहास
1.4.11 सैन्य इतिहास
1.4.12 क्षेत्रीय इतिहास
1.4.13 सार्क देशों का इतिहास
1.4.14 इतिहास - दर्शन
1.4.15 विश्व इतिहास
1.5 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत
    1.5.1 पुरातात्विक स्त्रोत
        1.5.1.1 अभिलेख
        1.5.1.2 मुद्राएँ

1.5.1.3 स्मारक
1.5.1.4 मुहरें
1.5.1.5 मूर्तियाँ
1.5.2 साहित्यिक स्त्रोत
1.5.2.1 धार्मिक साहित्यिक स्त्रोत
1.5.2.1.1 ब्राह्मण अथवा वैदिक साहित्य
1.5.2.1.1.1 वेद
1.5.2.1.2 ब्राह्मण ग्रंथ
1.5.2.1.1.3 आरण्यक ग्रंथ
1.5.2.1.4 उपनिषद
1.5.2.1.5 वेदांग
1.5.2.1.1.6 स्मृतियाँ
1.5.2.1.1.7 महाकाव्य
1.5.2.1.1.8 पुराण
1.5.2.1. बौद्ध साहित्य
1.5.2.2 जैन साहित्य
1.5.3 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक भारतीय साहित्यिक स्त्रोत
1.5.4 विदेशी लेखकों के ऐतिहासिक साहित्यिक स्त्रोत
1.5.5 यूनानी लेखकों का साहित्य
1.5.6 चीनी लेखकों का साहित्य
1.5.7 अरबी लेखकों का साहित्य

1.6 इतिहास का महत्व
1.7 सारांश
1.8 तकनीकी शब्दावली
1.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अतीत का अध्ययन इतिहास हैं। इतिहास में अतीत की घटनाओं का कालक्रमानुसार अध्ययन किया जाता है। पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के माध्यम से इतिहास मानव की कला, संस्कृति एवं सभ्यता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामने लाता है। इतिहास का ज्ञान मनुष्य को शिक्षा देता है कि, अतीत की घटनाओं से सबक ले। इतिहास का अध्ययन मनुष्य और उससे संबंधित घटनाएँ होती है।

मनुष्य के सुरक्षित भविष्य के लिए अतीत की गलतियाँ और वर्तमान की चुनौतियों का विश्लेषण बहुत जरूरी है। इतिहास यह बताता है कि, मनुष्य ने किस प्रकार और किन चुनौतियों का सामना करके वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया है और कैसे सुरक्षित भविष्य का निर्माण किया जा सकता है।

इस इकाई में आपको इतिहास की परिभाषा के साथ ही, इतिहास का अर्थ एवं इतिहास किसे कहते है की जानकारी प्राप्त होगी। इसके साथ ही, इस इकाई में आपको इतिहास के क्षेत्रों के बारे में व्यापक एवं उपयोगी जानकारी प्राप्त होगी। इस इकाई में आपको इतिहास का मनुष्य के जीवन में उपयोगिता तथा इतिहास की देश के लिए उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त होगा।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी इतिहास की अवधारणा को समझ सकेगें।
2. विद्यार्थी इतिहास की परिभाषा को जान सकेंगे ।
3. विद्यार्थी इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता को समझेंगें।
4. विद्यार्थी इतिहास के क्षेत्रों को जान सकेंगे।
5. विद्यार्थी इतिहास के महत्व को समझ सकेगें।
6. विद्यार्थी जीवन में इतिहास की उपादेयता को जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी देश के लिए इतिहास की उपादेयता को समझ सकेगें।
8. विद्यार्थी इतिहास की शिक्षा के द्वारा राजनैतिक जागृति के उदय को समझ सकेंगे।

1.3 इतिहास की परिभाषा

इतिहास अतीत का अध्ययन हैं, जिसका केन्द्र बिन्दु मनुष्य होता है। मनुष्य और उससे संबंधित समस्त घटनाएँ इतिहास अध्ययन का विषय होती है। इतिहास का ज्ञान की शाखा के रूप में उद्भव यूनान में हुआ था। इतिहास अंग्रेजी भाषा के ‘हिस्ट्री’ शब्द का हिन्दी अनुवाद हैं। वैसे, इतिहास, ‘इति - ह - आस’ शब्दों के

सम्मिलन से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ, 'निश्चित' रूप से ऐसा ही हुआ' है। 'हिस्ट्री' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यूनान के 'हिरोडोटस' (480 - 430 ई० पू०) ने किया था और इसीलिए 'हिरोडोटस' को 'इतिहास का जनक' कहा जाता है।

इतिहास की परिभाषा, इतिहास के मूल स्वरूपों, या मूल तत्वों को सरल और सुगम रूप में प्रगट करती है। इससे इतिहास को जानने और पहचाने में सहायता मिलती हैं। इतिहास को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया हैं, जो निम्नांनुसार हैं -

1.3.1 इतिहास कहानी है

विद्वानों का एक वर्ग, इतिहास को कहानी मानता है, इनमें जी. एम. ट्रेविलियन, हेनरी पिरेन, रेनियर, हुइजिंगा, एफ. एस. ओलिवर आदि प्रमुख हैं। विद्वानों के सम्मिलित विचारों को सारांशतः कहा जा सकता है कि, विद्वानों ने सभ्य समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों की उपलब्धियों और कार्यों को कहानी का इतिहास माना हैं। विद्वानों की स्पष्ट धारणा की सभ्य समाज के नेतृत्वकारी पुरूष के जीवन और उससे संबंधित घटनाओं को बिना किसी लाग - लपेट के कहानी स्वरूप में प्रस्तुत करना चाहिए। नेतृत्वकारी मनुष्य (मनुष्यों) का जीवन वृतांत नैतिक रूप से उच्च हो, जो समाज और देश के लिए अनुकरणीय भी हो, की कहानी इतिहास हैं तथा यह कहानी स्मरण करने लायक भी हो।

1.3.2 इतिहास ज्ञान है

विद्वानों का एक वर्ग, इतिहास को 'ज्ञान' का एक विषय मानता हैं। इनमें चार्ल्स फर्थ, डिल्थे, क्रोचे, कॉलिंगवुड आदि प्रमुख हैं। इन विद्वानों के मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि, इतिहास ज्ञान है, जो मनुष्य को सद्मार्ग दिखाता है और गलत रास्ते पर चलने से रोकता है। एक प्रकार से सही और गलत की शिक्षा का ज्ञान इतिहास प्रदान करता है। इतिहास अपने मूलरूप में यह बताता है कि, अमुक वस्तु सही है और अमुक सही नहीं है। ज्ञान की शाखा के रूप में इतिहास उचित और अनुचित की पहचान का रास्ता बताकर मनुष्य के दैनिक जीवन को उपयोगी ज्ञान प्रदान करता है। इतिहास अतीत की घटनाओं का ज्ञानप्रद उदाहरण प्रस्तुत करके मनुष्य को उसके कारणों और परिणामों के बारे में बताता हैं, जिससे मनुष्य उस प्रकार की घटनाओं से सीख लेकर गलतियों को दोहराने का दुस्साहस नहीं करता है। जैसे, द्वितीय विश्वयुद्ध में परमाणु युद्ध विभीषिका की जानकारी देकर, इतिहास भविष्य में परमाणु अस्त्रों के प्रयोग के परिणामों से अवगत कराता हैं। इसी प्रकार इतिहास रावण, कंश, दुर्योधन, सद्दाम हुसैन, गद्दाफी, हिटलर, के जीवन का ज्ञान देकर यह बताता है कि, जो इनके रास्ते पर चलेगा उसका अंजाम भी वैसा ही होगा, इनका हुआ। इस प्रकार, इतिहास का ज्ञान मनुष्य से संबंधित ज्ञान का आधार है।

1.3.3 इतिहास सामाजिक विज्ञान है

इतिहास सामाजिक विज्ञान है, इसके पक्ष में विद्वानों का एक वर्ग सक्षम तर्क प्रस्तुत करते हुए कहता हैं कि, इतिहास समाज की जननी है और यह समाज का संपूर्ण खाका प्रस्तुत करता है। समाज के आदि से लेकर अंत तक की संपूर्ण घटनाओं के विवरण की जानकारी इतिहास देता हैं। इसीलिए हेनरी पिरेन ने कहा है कि, इतिहास प्राचीनकालीन मनुष्य के समाज के विकास का विवरण देता है। आँक्सफोर्ड इंग्लिश शब्दकोश में इतिहास को सामाजिक विज्ञान मानते हुए कहा है कि, ’इतिहास मानव समाज और राष्ट्र की समस्त घटनाओं का विवरण देता है।’ इसी संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान ए. एल.राउज कहते हैं कि, ’भौगोलिक परिस्थिति और भौगोलिक वातावरण मनुष्य और उसके समाज को प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हैं।’ अतः इतिहास भौगोलिक परिवेश में समाज में रह रहे लोगों का वृतांत है। इस प्रकार, इतिहास को समाज विज्ञान के रूप में परिभाषित करने वाले विद्वानों का मानना है कि, ‘इतिहास समाज विज्ञान है, जिसमें मानव के संपूर्ण एवं सर्वांगीण क्रियाकलापों तथा साँस्कृतिक जनजीवन का उल्लेख होता है।

1.3.4 इतिहास विचारधारा का इतिहास है

इतिहास को विचारधारा का इतिहास मानने वाले विद्वानों का मानना है कि, मनुष्य के समस्त क्रियाकलापों एवं कार्य व्यवहार का मूल उत्स एवं उद्गम उसके विचार होते हैं और विचारधारा ही मनुष्य के कार्यों की रूपरेखा बनाती है, जिससे प्रेरित होकर मनुष्य विभिन्न क्रियाओं को साकार रूप प्रदान करते है। इस विषय में प्रसिद्ध विद्वान आर. जी. कॉलिंगवुड का स्पष्ट मत है कि, ‘सम्पूर्ण इतिहास विचारधारा का इतिहास होता है।’ कॉलिंगवुड की यह परिभाषा स्पष्टतः कार्य (क्रिया) को ‘साध्य’ और ‘विचारधारा’ को साधन मानती हैं। इतिहास को विचारधारा का इतिहास मानने वाले विद्वान कहते हैं कि, मनुष्य के कार्य करने से पहले उसके मस्तिष्क में एक स्पष्ट विचार आता है और मनुष्य उस विचार के अनुरूप कार्य करता है। इस मत के विरूद्ध प्रो. वाल्श ने कहा कि, इतिहास विचारधारा प्रधान नहीं होता। क्योंकि अलौकिक अदृश्य दैवीय शक्तियाँ और प्राकृतिक विनाशकारी घटनाएँ मनुष्य के विचार के अनुरूप नहीं होती हैं।

1.3.5 इतिहास समसामयिक इतिहास है

इतिहास को समसामयिक इतिहास मानने वाले विद्वानों का मत है कि, इतिहास को समसामयिक आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए लिखा जाता है। इतिहास को समसामयिक इतिहास मानने वाले सर्वश्रेष्ठ पक्षकार क्रोचे का मत है कि, ‘सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास होता है।’ इतिहासकार वर्तमान में रहकर अपनी वैचारिक धारणा के आधार पर अतीत का विश्लेषण करता है और जब अतीत की घटनाओं का वर्तमान की आवश्यकता के अनुसार इतिहास को पुनः व्याख्या या पुनः विवरण देता है, तो समसामयिक चेतना के

गतिशील तत्वों का उसमें समावेश करता हैं। इसीलिए गोविन्द चन्द पाण्डे ने ठीक ही कहा है कि, अतीत उस क्षण वर्तमान हो जाता है, जब हम वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुरूप उसका पुनर्विस्तरण करते हैं।' अतः वर्तमान में सामाजिक आवश्यकताओं और रूचियों को प्रधानता देने के कारण इतिहास, समसामयिक इतिहास' बन जाता है।

1.3.6 भूत और वर्तमान की कड़ी है

इतिहास को भूत और वर्तमान के बीच की कड़ी मानने वाले विद्वानों का मत है कि, इतिहासकार वर्तमान में रहकर अतीत की व्याख्या करता हैं, इस प्रकार इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच एक कड़ी और पुल के रूप में कार्य करता है। प्रसिद्ध विद्वान ई. एच. कार ने 'इतिहास को अतीत और वर्तमान के मध्य अनवरत परिसंवाद की संज्ञा दी हैं।' वस्तु स्थिति तो यह है कि, 'इतिहास काल के तीनों खण्डों भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों के लिए उपादेय होता है, क्योंकि अतीत का इतिहास, वर्तमान में सुरक्षित भविष्य के लिए रचित किया जाता है। जिस प्रकार हमारे ऋषियों, मुनियों और विद्वानों ने चार वेदों, अनेक अरण्यों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत का लेखन अतीत में करके भविष्य के लोगों के मार्गदर्शन के लिए किया। उसी प्रकार इतिहास भी वर्तमान में भविष्य को दिशा - निर्देश देने के लिए लिखा जाता है, अतः इतिहास भूत (अतीत) और वर्तमान के बीच एक कड़ी और पुल (सेतु) के समान है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) इतिहास का शाब्दिक अर्थ।
   (ख) इतिहास ज्ञान है।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

(I) क्या इतिहास भूत और वर्तमान के बीच की कड़ी है?

(II) क्या इतिहास कहानी है? सिद्ध कीजिए।

1.4 इतिहास का क्षेत्र

इतिहास के क्षेत्र से तात्पर्य, इतिहास की सीमाओं से है, जिसमें इतिहास से संबंधित अध्ययन की विषय वस्तु समाहित होती है, किन्तु इतिहास के क्षेत्र को सीमाबद्ध करना बहुत कठिन कार्य है। इतिहास क्षेत्र का स्वरूप देश, काल, परिस्थिति और सामाजिक आवश्यकताओं के कारण निरंतर विकसित होकर बढ़ता जा रहा हैं, अतः इतिहास के क्षेत्र को एक विशिष्ट सीमा में बांधना निश्चित रूप से संभव नहीं है। फिर भी इतिहासकारों ने इतिहास के क्षेत्र को वर्गीकृत करने की कोशिश की है, जो इस प्रकार है-

1.4.1 राजनीतिक इतिहास

राजनीतिक इतिहास, इतिहास क्षेत्र का महत्वपूर्ण अंग हैं। राजनीतिक इतिहास में समाज में विशिष्ट भूमिका निभाने वाले जननायकों एवं समाज को नेतृत्व देने वाले राजनेताओ का विवरण होता हैं। इन जननायकों का जीवन, कार्य एवं उपलब्धियाँ वर्तमान के लिए प्रेरणा दायक और भविष्य के लिए पथ प्रदर्शनकारी होती हैं। राजनीतिक इतिहास में राजनैतिक जननेताओं के साथ ही, राजनैतिक क्राँतियों, जनक्रांतियों, युद्धों, राजनैतिक घटनाओं आदि का भी इतिहास समाहित होता हैं। प्रसिद्ध विद्वान ए० एल० राउज 'राजनैतिक इतिहास को इतिहास की रीढ़ मानते हैं।' थ्यूसिडिडीज, गिबन, मैंकाले जैसे विद्वानों के लेखन की पृष्ठभूमि 'राजनीतिक इतिहास' रही हैं। राजनीति इतिहास में अतीत एवं वर्तमान की राजनीतिक घटनाओं का क्रमिक विवरण होता हैं।

1.4.2 सामाजिक इतिहास

सामाजिक इतिहास, इतिहास क्षेत्र का अभिन्न भाग हैं। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज में रहता है और उसकी समस्त क्रियाएँ समाज में संचालित एवं घटित होती हैं। सामाजिक इतिहास में मनुष्य के उद्भव से लेकर उसके क्रमिक विकास का संपूर्ण विवरण होता है, मनुष्य के दैनंदिनी जीवन, खानपान, रहन - सहन, वस्त्राभूषण, परिवार, विवाह, वैवाहिक जीवन एवं संबंध, विभिन्न वर्गों एवं समूहों के मध्य संबंधों का स्वरूप, आर्थिक एवं साँस्कृतिक जीवन, धर्म, संस्कृति, कला, साहित्य आदि सब कुछ समाहित रहता है। सामाजिक इतिहास में सामाजिक संबंधों एवं सामाजिक परिवर्तनों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इतिहास के सबसे बड़े समर्थकों में टेर्वेलियन प्रमुख थे। टे्वेलियन का मत 'समाज को इतिहास की आधारशिला निरूपित करता है।'

1.4.3 साँस्कृतिक इतिहास

साँस्कृतिक इतिहास, इतिहास क्षेत्र का अभिन्न अंग हैं। साँस्कृतिक इतिहास मनुष्य, समाज एवं देश के साँस्कृतिक ताने - बाने का विवरण दिया जाता हैं। संस्कृति में धर्म, संस्कार, परंपरा, रीति - रिवाज, कला, साहित्य, शिक्षा आदि सब कुछ समाहित होता है। जैसे भारतीय साँस्कृतिक इतिहास को प्रागैतिहासिक साँस्कृतिक इतिहास, वैदिक कालीन साँस्कृतिक इतिहास, प्राचीन कालीन साँस्कृतिक इतिहास मध्यकालीन साँस्कृतिक इतिहास, आधुनिक कालीन साँस्कृतिक इतिहास में बांट कर अध्ययन किया जा सकता है, जिसमें संबंधित काल के साँस्कृतिक जन - जीवन का क्रमिक कालक्रमानुसार अध्ययन किया जा सकता है।

1.4.4 धार्मिक इतिहास

धार्मिक इतिहास इतिहास क्षेत्र का प्रमुख अंग है। धार्मिक इतिहास में किसी धर्म के उद्भव, विकास, पतन आदि का उल्लेख किया जाता हैं। धार्मिक इतिहास मनुष्य की भावनाओं को सीधे प्रभावित करता है, अतः इसके लेखन में बड़ी सावधानी रखी जाती हैं। विश्व के विभिन्न धर्मो हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि का इतिहास समय - समय लिखा गया हैं। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण, भारतीय धार्मिक इतिहास की प्रमुख विरासत हैं। यूरोप महाद्वीप में ‘धार्मिक इतिहास लेखन का स्वर्णकाल’ पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार काल को माना जाता है।

1.4.5 आर्थिक इतिहास

आर्थिक इतिहास में किसी समाज, संस्था या राष्ट्र की समस्त आर्थिक गतिविधियों के उद्भव, विकास एवं पतन आदि सभी का उल्लेख होता है। पशुपालन, कृषि, उद्योग, आजीविका के समस्त साधन, व्यापार - वाणिज्य, राजस्व आदि सभी विषयों का अध्ययन किया जाता है, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ से जुड़े हैं। इतिहास क्षेत्र में आर्थिक इतिहास को प्रसिद्धि प्रदान करने वालों में कोदोंरसे, काँम्ते, बर्कले, कार्ल मार्क्स की भूमिका उल्लेखनीय रही हैं। आर० एच० टानी तथा एलीन पावर ने सर्वप्रथम ‘आर्थिक इतिहास’ लेखन कर उल्लेखनीय कार्य किया। भारतीय इतिहासकारों में रजनी पामदत्त, डी० डी० कोसाम्बी, आर० सी० दत्त, इरफान हबीब आदि ने आर्थिक इतिहास लेखन किया हैं। आर्थिक इतिहास के बारे में विलियम ऐश्ले कहते हैं कि, ‘आर्थिक विचार स्वयंमेव ऐतिहासिक तथ्य होते हैं।’

1.4.6 संवैधानिक इतिहास

संवैधानिक इतिहास के अंतर्गत किसी समाज, संस्था या राष्ट्र के वे कानूनी विधिक रीति - रिवाज (जिन्हें समाज मान्यता देता है) आते हैं, जिनसे समाज, धर्म या राष्ट्र प्रभावित होता है। भारतीय समाज में मनुस्मृति, याज्ञवतक्य स्मृति, मिताक्षरा, दाय भाग आदि का भारतीय समाज में विधिक महत्व हैं। ये ग्रंथ जटिल भारतीय रीति - रिवाजों एवं प्रथाओं से संबंधित समस्याओं के निराकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पी. वी. काणे का ‘धर्मशास्त्र का इतिहास’ लेखन को हैलम, कार्निवल लेविस, अर्सकीन, मेटलैंड ने प्रसिद्धि दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं।

1.4.7 राजनयिक इतिहास

राजनयिक इतिहास में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन किया जाता है। एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र से परम्पर संबंधों की पृष्ठभूमि, उनका क्रमिक विकास, संबंधों का उतार - चढ़ाव अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में संबंधों की भूमिका और संबंधों की प्रकृति आदि सब कुछ राजनयिक इतिहास की परिधि में आता हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारत -

चीन संबंध, भारत - पाकिस्तान संबंध, भारत - रूस संबंध, भारत - अमेरिका संबंध राजनयिक इतिहास लेखन के रोचक विषय है।

1.4.8 औपनिवेशक इतिहास

औपनिवेशिक इतिहास के अंतर्गत किसी देश द्वारा दूसरे देश को जीतकर अपना उपनिवेश बना लेने का इतिहास आता हैं। यूरोप के इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन, पुर्तगाल आदि ने एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी एवं उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के देशों को जीतकर अपने उपनिवेश स्थापित किये। औपनिवेशिक इतिहास का लेखक उपनिवेश स्थापना के कारणों, परिस्थितियों, खिंचावों, तनावों, उपनिवेशों पर आधिपत्य के साधनों आदि सभी को अपने अध्ययन में सम्मिलित कर विश्लेषण करता हैं।

1.4.9 संसदीय इतिहास

संसदीय इतिहास में लोकतांत्रिक व्यवस्था और जनकल्याण का इतिहास निहित होता हैं। संसदीय इतिहास में संसदीय व्यवस्था की स्थापना के लिए संघर्ष, संसदीय व्यवस्था की स्थापना, विकास और जनकल्याण के लिए कल्याणकारी व्यवस्था का विश्लेषणात्मक इतिहास समाहित होता हैं।

1.4.10 कॉमनवेल्थ का इतिहास

कॉमनवेल्थ के इतिहास में ब्रिटिश सामाज्य और उसके उपनिवेशों की स्वतंत्रता के बाद का इतिहास समाहित होता हैं। ब्रिटेन और उसके स्वतंत्र उपनिवेशिक देशों के बीच राजनीतिक रूप से सौहार्द्रपूर्ण संबंधों को बनाये रखने के लिए ‘कॉमनवेल्थ’ की स्थापना की गयी थी।

1.4.11 सैन्य इतिहास

सैन्य इतिहास के अंतर्गत विभिन्न सेनाओं की स्थापना एवं विकास, हथियारों के निर्माण एवं विकास, हथियारों के प्रयोग की तकनीक, युद्ध क्षेत्र में रणनीतिक व्यू - रचना आदि का समग्र अध्ययन किया जाता है। साम्राज्यों के उत्थान एवं पतन में सैन्य तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं। सिकन्दर, चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, नेपोलियन, हिटलर, मुसोलनी, चंगेज खाँ के साम्राज्यों की स्थापना में सैन्य पृष्ठभूमि ने आधारभूत भूमिका निभायी थी।

1.4.12 क्षेत्रीय इतिहास

क्षेत्रीय इतिहास में एक क्षेत्र विशेष की भौगोलिक सीमाओं में निहित इतिहास का अध्ययन किया जाता है। जैसे - उत्तरी मध्य प्रदेश का इतिहास, उत्तराखण्ड के मैंदानी क्षेत्रों का इतिहास, कुमाऊँ - गढ़वाल का इतिहास, विदर्भ का इतिहास आदि की विशेष क्षेत्रीय राजनीतिक एवं साँस्कृतिक परिवेश का अध्ययन समाहित होता हैं।

1.4.13 सार्क देशों का इतिहास

सार्क देशों का संगठन भारत सहित भारत के सात पड़ोसियों का संगठन है, जिसका सचिवालय काठमाण्डू (नेपाल) में स्थित हैं। सार्क देशों की अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं इतिहास हैं, जिसमें बहुत कुछ मूलभूत समानताएँ हैं, आने वाले समय में सार्क देशों का पृथक से इतिहास लिखा जायेगा। सार्क देशों के इतिहास लेखन संबंधी विचार सर्वप्रथम डॉ॰ आनन्द कुमार शर्मा (ग्वालियर) ने दिया हैं।

1.4.14 इतिहास - दर्शन

इतिहास दर्शन में इतिहास का आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इतिहास दर्शन का जनक वाल्टेयर को माना जाता हैं। दर्शन ज्ञान के प्रति लगाव का परिचायक है। इसका अध्ययन क्रमबद्ध तरीके से किया जाता हैं।

1.4.15 विश्व इतिहास

विश्व इतिहास के अंतर्गत सारे संसार का कालक्रमानुसार अध्ययन किया जाता हैं। इसका उद्देश सारे संसार में भाईचारे की भावना को बढ़ाना है। विश्व भ्रातृत्व का विश्व में सर्वप्रथम संदेश भारत ने ही ‘वसुधैव कुटुम्बकम’ का संदेश देकर की थी। वैसे सर्वप्रथम विश्व इतिहास लेखन ‘सर वाल्टर रेले’ ने किया। उसके बाद एच॰ जी॰ वेल्स एवं टायन्बी ने भी विश्व इतिहास की रचना में अपना उपयोगी योगदान दिया।

इस प्रकार इतिहास क्षेत्र विस्तार की सीमाओं में आबद्ध करने की कोई अंतिम रेखा खींचना संभव नहीं है। उक्त क्षेत्र विस्तार इतिहास क्षेत्र के विभिन्न अंगों में से हैं।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) सार्क देशों का इतिहास।
   (ख) विश्व इतिहास।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

(I) राजनीतिक इतिहास से आप क्या समझते है?
(II) संवैधानिक इतिहास किसे कहते है?

1.5 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास से तात्पर्य प्रारंभ से 1200 ई॰ तक के काल के भारतीय इतिहास से है। इसकाल के प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण के लिए जिन तथ्यों और स्त्रोतों का उपयोग किया जाता है। उन्हें प्राचीन

भारतीय इतिहास के स्त्रोत कहते है। कतिपय पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों का मानना है कि, प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण के लिए स्त्रोतों का अभाव है, क्योंकि प्राचीन भारतीयों में इतिहास लेखन की समझ ही नहीं थी। ग्यारहवीं सदी का पर्यटक विद्वान अलबरूनी भी लिखता है कि, ‘हिन्दू घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम की ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे।’ प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० आर० सी० मजूमदार भी कहते है कि, ‘इतिहास लेखन के प्रति भारतीयों की विमुखता भारतीय संस्कृति का भारी दोष हैं।’ किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत प्रचूर मात्रा में पुरातात्विक साक्ष्यों के रूप में उपलब्ध है। प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य में तत्कालीन इतिहास एवं संस्कृति के साक्ष्य स्त्रोतों के रूप में उपलब्ध है। इसके साथ ही, गैर धार्मिक प्राचीन भारतीय साहित्य भी इतिहास की व्यापक जानकारी देता है।

1.5.1 पुरातात्विक स्त्रोत

पुरातत्व उन भौतिक वस्तुओं का अध्ययन करता है, जिनका निर्माण और उपयोग मनुष्य ने किया है। अतः वे समस्त भौतिक वस्तुएँ जो अतीत में मनुष्य द्वारा निर्मित एवं उपयोग की गयी है, पुरातत्व की परिधि में आती है। वे सभी वस्तुएँ पुरातत्व के अंतर्गत आती है, पुरातात्विक स्त्रोत कहलाती है। विद्वान पुरातात्विक स्त्रोतों को बहुत अधिक प्रामाणिक मानते हैं, क्योंकि पुरातात्विक स्त्रोतों में लेखक कोई गड़बड़ी नहीं कर सकता हैं। पुरातात्विक स्त्रोत सामग्री के अंतर्गत अभिलेख, मुद्राएँ, स्मारक भवन, मूर्तियाँ, तथा पुरातात्विक अवशेषों को रखा जाता है।

1.5.1.1 अभिलेख

अभिलेख, वह लेख होते है, जो किसी पत्थर (चट्टान), धातु, लकड़ी या हड्डी पर खोदकर लिखें होते हैं। प्राचीन अभिलेख अनेक जैसे, स्तम्भों, शिलाओं, गुहाओं, मूर्तियों , प्रकारों, ताम्रपत्रों, मुद्राओं पर मिलते हैं। अभिलेखों के अध्ययन को ’पुरालेखशास्त्र’ कहा जाता है। कतिपय विद्वान प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक स्त्रोत अभिलेखों को मानते हैं। देश में सर्वाधिक अभिलेख मैसूर (कर्नाटक) में सरंक्षित है। प्रसिद्ध इतिहासकार फ्लीट का मानना है कि, ‘प्राचीन भारतीय इतिहास का ज्ञान अभिलेखों के धैर्यपूर्ण अध्ययन से प्राप्त होता हैं।’ अभिलेखों एवं शिलालेखों से संबंधित शासकों के जीवन चरित्र, साम्राज्य - विस्तार, धर्म, शासन प्रबंध, कला तथा राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती हैं। अभिलेखों एवं शिलालेखों से भाषा के विकास की भी जानकारी प्राप्त होती है। मौर्यकाल और ई० पू० तृतीय शताब्दी के अधिकतर अभिलेखों में प्राकृत भाषा का प्रयोग मिलता है, वहीं दूसरी शताब्दी ई० से गुप्त - गुप्तेत्तर काल अधिकतर अभिलेखों में संस्कृत में भाषा का प्रयोग मिलता है। साथ ही, यह बात भी उल्लेखनीय हैं कि, अभिलेखों में नौवीं - दशवीं शताब्दी ई० से स्थानीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग किया जाने लगा

था। इसके साथ ही, यह बात भी उल्लेखनीय हैं कि, गुप्तकाल से पहले के अधिकतर अभिलेखों में ब्राह्मणेत्तर धर्मों का तथा गुप्त एवं गुप्तेत्तर काल के अधिकतर अभिलेखों ब्राह्मण धर्म का उल्लेख मिलता है।

पुराविदों का मानना है कि, भारत में अब तक मिला सबसे प्राचीन अभिलेख पाँचवीं शताब्दी ई० पू० का पिप्रावा कलश (जिला बस्ती) लेख हैं। इसके साथ ही, अजमेर से प्राप्त 'बडली - अभिलेख' अशोक के काल से पहले का माना जाता है।

अशोक के अभिलेख भारत में पढ़े जाने वाले सबसे प्राचीन अभिलेख है। अशोक के लेख ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरामाइक एवं ग्रीक, लिपि में मिलते हैं। साथ ही, अशोक के केवल चार अभिलेखों, मास्की (कर्नाटक), निठूर, उदेगोलम और गुज्जर्रा (जिला दतिया, म० प्र०) में अशोक का नाम मिलता है। अशोक के अभिलेखों में शिलालेख, स्तम्भलेख, गुहालेख सम्मिलित है। अशोक के चौदह बड़े शिलालेख, पंद्रह लघु शिलालेख, सात स्तम्भलेख, छः लघु स्तम्भलेख तथा चार गुहालेख प्राप्त है। देश में अशोक के अतिरिक्त अनेक शासकों अभिलेख प्राप्त है, जिनसे उनके व्यक्तिगत शासन एवं वंश की विविध जानकारी मिलती हैं, इनमें प्रमुख रूप से पुष्यमित्र शुंग का अयोध्या अभिलेख, कलिंगराज खारखेल का हाथीगुम्फा अभिलेख, गौतमी बलश्री का नासिक अभिलेख, रूद्रदामा का गिरनार अभिलेख, समुद्रगुप्त की 'प्रयाग -प्रशस्ति', चन्द्रगुप्त द्वितीय का महरौली स्तम्भ लेख, स्कंद गुप्त का भितरी एवं जूनागढ़ लेख, भोज - प्रतिहार की ग्वालियर प्रशस्ति, हर्षवर्धन के मधुवन, बाँसखेड़ा एवं सोनीपत अभिलेख, पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख, बंगाल के पाल शासकों में धर्मपाल का खालिमपुर तथा देवपाल का मुंगेर अभिलेख तथा सेन शासक विजय सेन का देवपाड़ा अभिलेख, परमार शासकों में भोज परमार (1010 - 55 ई०) की 'उदयपुर प्रशस्ति', राष्ट्रकूटों के बारे में गोविन्द तृतीय के राधनपुर, वनिदिन्दोरी तथा अमोघवर्ष प्रथम के संजन दानपत्रों से विशेष जानकारी मिलती हैं।

अभिलेखों के विशेष महत्व के बारे में यह कहा जा सकता है कि, सातवाहन इतिहास तो उनके अभिलेखों के आधार पर लिखा गया है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के पल्लव, चालुक्य, राष्ट्रकूट, पांडय और चोल वंशों का इतिहास लिखने में इन शासकों के अभिलेखों की महत्व भूमिका रही है।

गुहालेख, वे लेख है, जो गुफाओं में उत्कीर्ण है। अशोक के बराबर तथा दशरथ के नागार्जुनी गुहालेख एवं सातवाहनों के नासिक, नानाघाट और काले आदि गुहालेखों में इतिहास सामग्री का भंडार भरा पड़ा है। इसके अतिरिक्त अनेक अभिलेख मूर्तियों पर, मंदिरों एवं स्तूपों के प्राकारों पर, मिट्टी एवं धातु के पात्रों पर, ताँबे की चादरों पर (अधिकतर भूमि - अनुदान - पत्र), मुद्राओं एवं सीलों पर मिलते है, जिनमें महत्वपूर्ण इतिहास सामग्री उपलब्ध है।

1.5.1.2 मुद्राएँ

मुद्राएँ जारी करना किसी भी शासक की स्वतंत्र सत्ता का प्रतीक होता था। भारत में सबसे प्राचीन मुद्राएँ 'आहत' मुद्राएँ है, जो लगभग पाँचवीं शताब्दी ई॰ पू॰ में प्रचलित थीं। मुद्राओं के अध्ययन को 'न्यूमिस्मेटिक्स' (मुद्राशास्त्र) कहा जाता है। प्राचीन भारत में मुद्राएँ ताँबें, चाँदी, सोने, सीसे, पोटीन, मिट्टी की मिलती है। पुरातात्विक सामग्री में मुद्राओं का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि 206 ई॰ पू॰ - 300 ई॰ तक का भारतीय इतिहास मुखतः मुद्राओं की सहायता से ही लिख गया है। इसके साथ ही, हिन्द - यूनानी शासकों का तो सम्पूर्ण इतिहास मुद्राओं के द्वारा ही लिखा गया है। शक - क्षत्रप, इण्डो - बैक्ट्रियव तथा इण्डो - पर्शियन के इतिहास जानने के एकमात्र साधन सिक्के ही हैं। मुद्राओं के अध्ययन से अनेक प्रकार की सूचनाएँ मिलती है, जो प्राचीन भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्रोत है।

मुद्राओं से किसी भी शासक या साम्राज्य की आर्थिक स्थिति का पता चलता है। सोने की मुद्रा का किसी भी साम्राज्य में प्रचलन मजबूत आर्थिक स्थिति का प्रतीक होता माना जा सकता है और यह भी स्पष्ट है कि, आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर ही क्रमशः चाँदी व ताँबे अथवा मिश्रित धातु के सिक्कों का प्रचलन किया जाता होगा। मुद्राओं पर अंकित तिथि से किसी भी शासक या साम्राज्य की कालक्रम की जानकारी मिलती है, जिससे कालक्रम निर्धारण में मद्द मिलती है। मुद्राएँ नई जानकारी को भी सामने लाती करती है, गुप्त - शासक रामगुप्त और काच के बारे में जानकारी का स्रोत मुद्राएँ ही है। मुद्राओं से किसी भी शासक या साम्राज्य की विजय की जानकारी मिलती है। जोगलथम्बी मुद्राभाण्ड नहपान पर शातकर्णि की विजय और चंद्रगुप्त की चाँदी की मुद्राएँ शकों पर विजय की जानकारी देती हैं।

मुद्राओं से साम्राज्य की सीमा की भी जानकारी मिलती है। किसी स्थान विशेष से यदि बड़ी संख्या में मुद्राएँ मिलें तो यह अनुमान लगाया जाता है कि यह इस साम्राज्य के राज्य का हिस्सा हो सकता है। मुद्राओं से शासकों की व्यक्तिगत रूचियों की भी जानकारी मिलती है। मुद्राओं पर समुद्रगुप्त को वीणा बजाते दिखाया गया है, इससे प्रतीत होता है कि, समुद्रगुप्त की संगीत में विशेष रूचि थी। मुद्राओं से साम्राज्य की धार्मिक नीति और शासक के धर्म की जानकारी मिलती है। मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर मुख्यतः देवता की आकृति अंकित मिलती है, शासक की धार्मिक रूचि और साम्राज्य की धार्मिक नीति स्पष्ट होती है। मुद्राओं से तत्कालीन कला की भी जानकारी मिलती है। मुद्राओं पर उत्कीर्ण चित्रों, संगीत वाद्यों तथा मुद्राओं की बनावट से तात्कालिक कला के बारे में जानकारी मिलती है। मुद्राओं से तत्कालीन कला की भी जानकारी मिलती है।

मुद्राओं किसी भी शासक या साम्राज्य के विदेशी संबंधों की जानकारी मिलती है। विदेशों में भारतीय मुद्राओं एवं विदेशी मुद्राओं का भारत में मिलना। यह जानकारी देता है कि, दोनों देशों में संबंध थे। मुद्राओं

किसी भी शासक या साम्राज्य के व्यापार एवं वाणिज्य की भी जानकारी मिलती है। दूसरे देशों में किसी शासक की मुद्राओं का मिलना, यह दर्शाता है कि, उस शासक या साम्राज्य का व्यापार यहाँ तक चलता था। इसके साथ ही, शासकों से अनुमति लेकर व्यापारियों और स्वर्णकारों की श्रेणियों (व्यापारिक संघों) ने भी अपनी मुद्राएँ चलायी थीं। इससे व्यापार एवं वाणिज्य के उन्नत होने का पता चलता हैं।

1.5.1.3 स्मारक

स्मारक से तात्पर्य, प्राचीन भवन, मृतक स्मृति भवन और क्षत्रिय, धार्मिक भवन आदि आते है। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, तक्षशिला, नालंदा, रोपड़, हस्तिनापुर, बनावली आदि के स्मारकों से तत्कालीन वास्तुकला नगर नियोजन, सामाजिक स्थिति, धार्मिक स्थिति एवं साँस्कृतिक स्थिति का ज्ञान होता है। स्तूप, चैत्य, विहार, गुफाओं एवं मंदिरों से तत्कालीन धार्मिक एवं साँस्कृतिक स्थिति का ज्ञान होता है। स्मारकों से कला के विकास, काल निर्धारण, कला में प्रयुक्त सामग्री, स्तूप, चैत्य, विहार एवं मंदिरों में चित्रित और अंकित मूर्तियों की वेशभूषा, अलंकरणों एवं अंकनों से तत्कालीन सामाजिक स्थिति, धार्मिक स्थिति एवं साँस्कृतिक स्थिति का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही वैचारिक धारणा का भी पता चलता है।

विदेशी स्मारकों से भी भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। कम्बोडिया का अंगकोरबाट मंदिर, जावा का बोरोबुदुर मंदिर तथा मलाया व वाली द्वीप से प्राप्त अनेक प्रतिमा, बोर्नियों में मकरान से प्राप्त विष्णु की मूर्ति से ज्ञात होता है कि, वहाँ पर भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रसार था तथा भारतीय धर्म और संस्कृति के बारे में ये महत्वपूर्ण सूचनाएँ देते है।

1.5.1.4 मुहरें

मुहरें भी प्राचीन भारतीय इतिहास के मुख्य स्त्रोंतों में आती हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता से लगभग 2000 से भी अधिक मुहरें मिली हैं, जिनसे तत्कालीन जलवायु, पशु जगत्, भाषा, धर्म आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। बसाढ़ (बैशाली) से 274 मुहरों से चौथी शताब्दी ई० में एक व्यापारिक श्रेणी की जानकारी मिलती है। मुहरें तत्कालीन आर्थिक एवं प्रशासनिक कार्य व्यवहार की जानकारी देती है।

1.5.1.5 मूर्तियाँ

मूर्तियों से धार्मिक अवस्था एवं कला के विकास के बारे में जानकारी मिलती है। भारतीय इतिहास की सर्वप्रथम मूर्ति बेलन घाटी से बनी हड्डी की मातृदेवी की मूर्ति मिली है, जो उच्च पुरापाषाण कालीन (लगभग 35000 ई० पू०) है। सिन्धु घाटी से पत्थर, टैराकोट एवं धातु की मूतियाँ प्राप्त हुई हैं। कुषाण कालीन मूतियों से गांधार कला पर विशेष प्रकाश पड़ता है। गुप्तकालीन मूतियाँ अपने काल की कलात्मकता का बखान करती है। मौर्यकालीन लोक कला की यक्ष - यक्षणियाँ विशेष उल्लेखनीय है। चन्देल शासकों के काल की खजुराहों की

मूर्तियाँ तत्कालीन सामाजिक विचारधारा को प्रकट करती हैं। ये मूर्तियाँ कला एवं संस्कृति के विकास की जानकारी देने के साथ ही, प्राचीन भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण स्रोत भी है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. अशोक के अभिलेखों कितनी लिपियों में मिलते हैं?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पाँच (घ) दो

2. अशोक के कितने अभिलेखों में उसका नाम मिलता हैं?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पाँच (घ) दो

3. ‘प्रयाग -प्रशस्ति’ किस शासक की हैं?

   (क) अशोक (ख) रामगुप्त

   (ग) समुद्रगुप्त (घ) चंद्रगुप्त

4. किस वंश के शासकों का इतिहास मुद्राओं के आधार पर लिखा गया हैं?

   (क) हर्यंक शासकों का (ख) मौर्य शासकों का

   (ग) गुप्त शासकों का (घ) हिन्द - यूनानी शासकों का

5. कम्बोडिया का अंगकोरबाट का मंदिर कहा हैं?

   (क) भारत में (ख) कम्बोडिया में

   (ग) मलाया में (घ) बाली में

1.5.2 साहित्यिक स्त्रोत

साहित्यिक स्रोत, वे स्रोत है, जो साहित्य अर्थात् पुस्तकों के माध्यम से प्राप्त होती है। यह साहित्य धार्मिक, लौकिक एवं विदेशी लेखकों की लेखनी से प्राप्त है।

1.5.2.1 धार्मिक साहित्यिक स्त्रोत

धार्मिक साहित्यिक स्रोत के अंतर्गत ब्राह्मण अथवा वैदिक साहित्य, बौद्ध साहित्य एवं जैन साहित्य आता है।

1.5.2.1.1 ब्राहमण अथवा वैदिक साहित्य

ब्राह्मण ग्रंथों में वैदिक साहित्य प्रमुख है। वैदिक साहित्य भारतीय विद्वानों की अद्भुत सृजनशीलता का परिचायक है। वैदिक साहित्य का सृजन लगभग 1500 - 200 ई० पू० के मध्य किया गया। वैदिक साहित्य के अंतर्गत वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद, आरण्यक और सूत्र साहित्य आता हैं।

1.5.2.1.1.1 वेद

भारतीय साहित्य की प्राचीनतम कृति वेद हैं। वेद संख्या में चार हैं -

ऋग्वेद - सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद है। ऋग्वेद की रचना 1500 - 1000 ई० पू० के मध्य हुई। ऋग्वेद में 10 मण्डल, 1028 सूक्त तथा 10,580 ऋचाएँ हैं। ऋग्वेद के 2 - 9 तक के मंडल प्राचीन तथा 1 और 10 वाँ मण्डल नवीन हैं। ऋग्वेद से प्राचीन आर्यो के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन की विस्तृत जानकारी मिलती है।

सामवेद -सामवेद ऐसा वेद है, जिसके मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते हुए गाये जाते थे। यह ग्रंथ तत्कालीन भारत की गायन विद्या का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। सामवेद में 1549 ऋचाएँ हैं। सामवेद 75 ऋचाएँ ही मौलिक है, शेष ऋग्वेद से ली गई हैं।

यजुर्वेद - यजुः का अर्थ है, यज्ञ। इस वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ - विधियों का वर्णन किया गया हैं। इसीलिए इसे 'यजुर्वेद' कहा गया। यजुर्वेद में यज्ञों को करने की विधियाँ बतायी गयी है।

अथर्ववेद -इस वेद की रचना अथर्वा ऋषि ने की थी, इसीलिए इसे 'अथर्ववेद' कहते हैं। इसकी रचना लगभग 800 ई० पू० में हुई। 'अथर्ववेद' में 20 मण्डल, 731 सूक्त तथा 5849 ऋचाएँ हैं। 'अथर्ववेद' में 1200 ऋचाएँ ऋग्वेद से ली गई हैं। 'अथर्ववेद' से उत्तर वैदिक कालीन भारत की पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की विस्तृत जानकारी मिलती है।

1.5.2.1.1.2 ब्राहमण ग्रंथ

ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हमारे ऋषियों ने वैदिक मंत्रों के अर्थ बताने के लिए की गयी थी, ताकि यज्ञों को संपन्न करने में कठिनाई नहीं आये। ब्राह्मण ग्रंथ यज्ञों के मंत्रों का अर्थ बताते हुए उनके अनुष्ठान की विधि बताते हैं। प्रत्येक ब्राह्मण ग्रंथ एक संहिता (वेद) से संबंधित है। जैसे, ऋग्वेद से ऐतरेय और कौषीतकी ब्राह्मण, सामवेद से ताण्डस, जैमनीय ब्राह्मण, यजुर्वेद से शतपथ ब्राह्मण, अथर्ववेद से गोपथ ब्राह्मण संबंधित हैं। इन ब्राह्मण ग्रंथों से तत्कालीन लोगों की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन की जानकारी प्राप्त होती है।

1.5.2.1.1.3 आरण्यक ग्रंथ

आरण्यक शब्द की उत्पत्ति 'अरण्य' से हुई है, जिसका अर्थ 'वन' होता है। आरण्यक ऐसे ग्रंथों को कहा जाता है, जिनका अध्ययन वन में किया जा सके। आरण्यक ग्रंथों में हमारे ऋषियों ने महान् ज्ञान प्रधान विचारधारा का सृजन किया है। आरण्यक ग्रंथ सात बताये गये है - ऐतरेय, शांखायन् तैत्तरीय, मैत्रायणी, याध्यन्दिन एवं तल्वकार आरण्यक।

1.5.2.1.1.4 उपनिषद

'उप' का अर्थ 'समीप' तथा 'निषद्' का अर्थ बैठना होता हैं अर्थात् वह रहस्य विद्या जिसका ज्ञान गुरू के समीप बैठकर किया जाता था, उसे 'उपनिषद्' कहा जाता था। उपनिषदों में भारत की महान् दार्शनिक ज्ञान की संपदा निहित है। अधिकांश विद्वान उपनिषदों की संख्या 108 बताते हैं। इनमें बारह उपनिषद प्रमुख है, ईशावस्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वर, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कौशीतकी। उपनिषदों का रचना काल 800 - 500 ई० पू० माना गया है।

1.5.2.1.1.5 वेदांग

वेदांग की रचना वेदों के अर्थ और विषय को समझने के लिए की गई थी, इसलिए इन्हें 'वेदांग' कहते हैं। छः वेदांग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छंद, ज्योतिष है।

1.5.2.1.1.6 स्मृतियाँ

स्मृतियाँ वैदिक आर्यों के कानून संबंधी ग्रंथ है। वैदिक आर्यों के दैनिक जीवन के विषय में नियम व उपनियम आदि का वर्णन है। मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति प्रमुख है। नारद, पारासर आदि स्मृतियाँ भी वैदिक आर्यों के सामजिक एवं धार्मिक पक्ष कों प्रकट कर रही है।

1.5.2.1.1.7 महाकाव्य

महाकाव्यों के अंर्तगत रामायण और महाभारत आते हैं । रामायण के रचयिता बाल्मीकी हैं इसमें सातकाण्ड है। बाल्मीकि रामायण में मूलतः 6000 श्लोक थे जो बढ़कर 12000 और अन्ततः 24000 श्लोक हो गए। वास्तव में रामायण को आर्यो की अनार्यों पर विजय का प्रतीक मान सकते हैं। इस महाकाव्य में आर्य संस्कृति के सूदूर दक्षिण और श्रीलंका तक प्रसार का वर्णन मिलता है। महर्षि व्यास कृत महाभारत मूलरूप से भरत वंश के दो वंशजों कौरव और पाण्डवों के युद्ध का वर्णन है। महाभारत में एक लाख श्लोक है। इसीलिए इसे 'शतसाहस्री संहिता' कहते है।

1.5.2.1.1.8 पुराण

पुराण का शाब्दिक अर्थ 'प्राचीन' है। पुराण प्राचीन धर्म, संस्कृति एवं राजवंशो के बारे में विस्तृत सूचना देते है। पुराणों की संख्या 18 है, जिनमें ब्रह्म, मत्स्य, विष्णु, भागवत, मार्कण्डेय, गरूड़, शिव, अग्नि और ब्रह्माण्ड पुराण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पुराणों का वर्तमान रूप सम्भवतः तीसरी और चौथी शताब्दी ई॰ में आया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. उपनिषदों का रचना काल क्या माना गया है।

(क) 300 - 500 ई॰ पू॰ (ख) 800 - 500 ई॰ पू॰
(ग) 100 - 800 ई॰ पू॰ (घ) इनमें से कोई नहीं

2. पुराणों कितने हैं?

(क) 10 (ख) 12
(ग) 26 (घ) 18

3. वेदांगों की संख्या कितनी हैं?

(क) 5 (ख) 10
(ग) 6 (घ) 12

4. पुराण का शाब्दिक अर्थ हैं?

(क) नया (ख) प्राचीन
(ग) प्रशस्ति (घ) इनमें से कोई नहीं

5. सबसे प्राचीन वेद कौनसा हैं?

(क) ऋग्वेद (ख) सामवेद
(ग) यजुर्वेद (घ) अथर्ववेद

1.5.2.1 बौद्‌ध साहित्य

बौद्ध साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। बौद्ध साहित्य से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साँस्कृतिक पहलुओं पर व्यापक जानकारी प्राप्त होती है। बौद्ध साहित्य की प्रमुख रचनाएँ है, विनयपिटक - विनय पिटक में बौद्ध भिक्षुओं - भिक्षुणियों के आचरण संबंधित नियमों का वर्णन मिलता हैं। सुत्तपिटक - महात्मा बुद्ध के उपदेशों का सार संग्रहित हैं। अभिधम्मपिटक - इसमें महात्मा बुद्ध के

उपदेशों की दार्षनिक रूप में व्याख्या हैं। तीनों पिटक 'पाली' भाषा में लिखे गये है। जातक - जातक कथाओं में महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों का विवरण है। संख्या में 550 जातक कथाएँ उपलब्ध है। ये जातक 500 - 200 ई० पू० की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर बहुमूल्य प्रकाश डालती हैं। मिलिन्दपन्हों - इसमें यूनानी राजा मिनांडर और बौद्ध भिक्षु नागसेन का दार्शनिक वार्तालाप है। इसमें तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक एवं साँस्कृतिक प्रश्नों पर विचार किया गया है। महावंश एवं दीपवंश - महावंश एवं दीपवंश श्रीलंका की रचनाएँ है। किन्तु इनसे मौर्यकालीन राजनीतिक एवं साँस्कृतिक पहलुओं पर व्यापक जानकारी प्रदान करती है। इनके साथ ही, महावंश एवं दीपवंश श्रीलंका के राजवंशों पर व्यापक जानकारी प्रदान करती है। ये चौथी या पाँचवी शताब्दी ई० की रचना है। ललितविस्तर - इसमें महायान समुदाय की विचारधारा के अनुसार बुद्ध के जीवन की कथा का वर्णन है। गान्धार कला एवं जावा के बोरोबुदुर के मंदिर (इण्डोनेशिया) की अनेक स्थापत्य कृतियाँ ललितविस्तर पर आधारित है। बुद्धचरित एवं सौन्दरानन्द - अश्वघोष की रचनाएँ 'बुद्धचरित एवं सौन्दरानन्द', तत्कालीन धर्म और राजनीति पर व्यापक जानकारी प्रदान करती है। दिव्यावदान - दिव्यावदान मौर्य कालीन राजनीतिक पहलुओं पर व्यापक जानकारी प्रदान करती है। इसने अशोक के उत्तराधिकारियों का उल्लेख करते हुए, पुष्य मित्र शुंग तक का वर्णन किया है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. बौद्ध भिक्षुओं - भिक्षुणियों के आचरण संबंधित नियमों का वर्णन किस पिटक में मिलता हैं?

(क) विनय पिटक (ख) सुत्तपिटक

(ग) अभिधम्मपिटक (घ) इनमें से कोई नहीं

2. महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों का विवरण किस में मिलता हैं?

(क) अभिधम्मपिटक में (ख) दिव्यावदान में

(ग) जातक कथाओं में (घ) इनमें से कोई नहीं

3. महावंश एवं दीपवंश किस देश की रचनाएँ हैं?

(क) भारत (ख) श्रीलंका की

(ग) चीन (घ) इनमें से कोई नहीं

4. बुद्धचरित एवं सौन्दरानन्द किसकी रचनाएँ हैं?

(क) अश्वघोष की (ख) कौटिल्य की

(ग) सोमदेव की (घ) इनमें से कोई नहीं

5. ललितविस्तर किस समुदाय की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता हैं?

(क) महायान का (ख) हीनयान का

(ग) दोनों का (घ) इनमें से कोई नहीं

1.5.2.2 जैन साहित्य

जैन साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। जैन साहित्य से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साँस्कृतिक पहलुओं पर व्यापक जानकारी प्राप्त होती है। जैन साहित्य की प्रमुख रचनाएँ है, जैन साहित्य में आगम साहित्य का स्थान सर्वोपरि है, इसमें 12 अंग, 12 उपांग, 10 प्रकीर्ण, 6 छंदसूत्र, नन्दिसूत्र, अनुयोगद्वार और मूल सूत्र सम्मिलित हैं। वस्तुतः इसकी रचना 400 ई० पू० से 600 ई० के मध्य हुई। जिनको वर्तमान रूप 512 -13 ई० की बल्लभी में आयोजित संगीति में दिया गया। आगम साहित्य जैन धर्म से संबंधित सूचनाओं के महत्वपूर्ण स्रोत है। आचारांग सूत्र - आचारांग सूत्र में जैन भिक्षुओं के आचरण और नियमों का वर्णन है। भगवती सूत्र - महावीर स्वामी के जीवन के विषय में तथा छठी शताब्दी ई० पू० के उत्तर भारत के महाजनपदों का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विवरण देता है। औपपातिक सूत्र और आवश्यक सूत्र - औपपातिक सूत्र और आवश्यक सूत्र में अजातशत्रु के धार्मिक विचारों का विवरण मिलता हैं। भद्रबाहु चरित्र - भद्रबाहु चरित्र में चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल की घटनाओं का वर्णन मिलता है। टीकाएँ - जैन धर्म ग्रंथों के टीकाकारों की टीकाएँ धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनमें हरिभद्र सूरि (705 -77 ई०), शीलांक (832 ई० के लगभग), नेमिचन्द्र सूरि (11वीं शताब्दी), अभयदेव सूरि (11वीं शताब्दी), और मलयगिरि (13 वीं शताब्दी) की टीकाएँ अधिक महत्वपूर्ण है। ये टीकाएँ धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथा राजनीति पर प्रकाश डालती हैं।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. जैन भिक्षुओं के आचरण संबंधित नियमों का वर्णन किस ग्रंथ में मिलता हैं?

(क) आचारांग सूत्र में (ख) औपपातिक सूत्र

(ग) भगवती सूत्र (घ) इनमें से कोई नहीं

2. उत्तर भारत के महाजनपदों की सूचना मिलती हैं?

(क) आचारांग सूत्र में (ख) औपपातिक सूत्र

(ग) भगवती सूत्र (घ) इनमें से कोई नहीं

3. चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल की घटनाओं का वर्णन किस में मिलता हैं?

(क) भद्रबाहु चरित्र में (ख) औपपातिक सूत्र में
(ग) भगवती सूत्र में (घ) इनमें से कोई नहीं

4. अजातशत्रु के धार्मिक विचारों का विवरण किसमें मिलता हैं?
   (क) भद्रबाहु चरित्र में (ख) औपपातिक सूत्र और आवश्यक सूत्र में
   (ग) भगवती सूत्र में (घ) इनमें से कोई नहीं

1.5.3 लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक भारतीय साहित्यिक स्त्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत के रूप में लौकिक, समसामयिक तथा ऐतिहासिक साहित्यिक ग्रंथ प्रचूर मात्रा में स्त्रोत सामग्री उपलब्ध कराते है। ये ग्रंथ तत्कालीन जन - जीवन, भौतिक संस्कृति, प्रशासन एवं राजनीति पर व्यापक जानकारी देते है। अर्थशास्त्र - चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा लिखित अर्थशास्त्र मौर्यकालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं राजव्यवस्था का याथोचित ज्ञान करता हैं। नीतिसार - कामन्दक द्वारा लिखित इस ग्रन्थ से गुप्त कालीन राज्यतंत्र पर प्रकाश पड़ता हैं। मुद्राराक्षस – विशाखदत्त द्वारा लिखित इस नाटक से चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा नंद वंश के विनाश के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। मालविकाग्निमित्र - कालीदास द्वारा रचित इस नाटक से पुष्यमित्र, शुंग और यवनों के मध्य हुए युद्ध के विषय में जानकारी मिलती है। हर्षचरित - वाणभट्ट रचित इस ग्रन्थ से हर्षवर्धन की उपलब्धियों पर प्रकाश पड़ता है। अष्टाध्यायी - पाणिनी की अष्टाध्यायी से मौर्यकाल से पहले के भारत की राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक दशा की जानकारी मिलती है। गार्गी संहिता - इसमें यवन आक्रमणों का उल्लेख किया गया है। महाभाष्य - पतंजलि द्वारा लिखित महाभाष्य से शुंग - वंश के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। वृहत्कथामंजरी - क्षेमेन्द्र द्वारा लिखित वृहत्कथामंजरी से मौर्यकाल की घटनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। राजतरंगिणी: - कल्हण द्वारा 12 वीं शताब्दी में रचित इस ग्रन्थ से कश्मीर के इतिहास के बारे में सूचना मिलती है। गौडवहो - वाक्पति द्वारा लिखित इस ग्रंथ से कन्नौज के राजा यशोवर्मा की उपलब्धियों के विषय में जानकारी मिलती है। पृथ्वीराज विजय - जयानक के इस ग्रंथ से पृथ्वीराज चौहान की उपलब्धियों की जानकारी मिलती हैं। पृथ्वीराजरासों - चन्द्रवरदाई द्वारा लिखित इस ग्रंथ से पृथ्वीराज चौहान के विषय में जानकारी मिलती है। नवसाहसांक चरित - परिमलगुप्त द्वारा लिखित इस ग्रंथ से परमार वंश की घटनाओं की जानकारी मिलती है। विक्रमांकदेवचरित - विल्हण द्वारा लिखित इस ग्रंथ से चालुक्य वंश के इतिहास की जानकारी मिलती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. अर्थशास्त्र नामक ग्रंथ किसने लिखा हैं?

(क) कौटिल्य ने (ख) चन्द्रवरदाई ने

(ग) विल्हण ने (घ) कल्हण

2. पृथ्वीराजरासों नामक ग्रंथ किसने लिखा हैं?

(क) कौटिल्य ने (ख) चन्द्रवरदाई ने

(ग) विल्हण ने (घ) कल्हण

3. राजतरंगिणी नामक ग्रंथ किसने लिखा हैं?

(क) कौटिल्य ने (ख) चन्द्रवरदाई ने

(ग) विल्हण ने (घ) कल्हण

4. विक्रमांकदेवचरित नामक ग्रंथ किसने लिखा हैं?

(क) कौटिल्य ने (ख) चन्द्रवरदाई ने

(ग) विल्हण ने (घ) कल्हण

5. शुंग - वंश के इतिहास की जानकारी किससे मिलती हैं?

(क) विक्रमांकदेवचरित से (ख) राजतरंगिणी से

(ग) पृथ्वीराजरासों से (घ) महाभाष्य से

1.5.4 विदेशी लेखकों के ऐतिहासिक साहित्यिक स्त्रोत

भारतीय इतिहास के अनुशीलन से विदित है कि प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रयोजनों से प्रेरित होकर भारत भूमि के भ्रमण हेतु अनेक विदेशी यात्री आये, जिनमें से कई विदेशी आक्रान्ताओं के साथ, कई विदेशी राजदूतों के रुप में, कई व्यापारी के रुप में, कई पर्यटक के रुप में तथा कई अपनी ज्ञान पिपासा को मिटाने भारत यात्रा पर आये और उन्होंने अपने अनुभव एवं संस्मरणों को लिपिबद्ध किया, जोकि भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश डालते है।

1.5.5 यूनानी लेखकों का साहित्य

यूनानी लेखकों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत के रूप में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्यिक स्त्रोत सामग्री उपलब्ध करायी है। यूनानी लेखकों के लेखन से भारतीय इतिहास की तिथि निर्धारण में बहुत सहयोग मिला है। स्काईलैक्स (छठी शताब्दी ई० पू०) -

स्काईलैक्स यह पर्शिया (ईरान) नरेश दारा प्रथम (डेरियस प्रथम) का यूनानी सेनापति था। भारत के बारे में स्काईलैक्स की जानकारी सिन्धु - घाटी तक सीमित है। हेरोडोटस (पाँचवी शताब्दी ई० पू०) - 'इतिहास

का पिता' यूनानी विद्वान हेरोडोटस ने 476 ई० पू० के लगभग अपने ग्रंथ 'हिस्टोरिका' में भारत के उत्तर - पश्चिम क्षेत्र तथा पारसिक साम्राज्य के भारत में अधिकार, व्यापारिक संबंधों आदि के बारे में सूचना दी है। निआर्कस (327 - 26 ई० पू०) - यह सिकन्दर के जहाजी बेड़े का कप्तान था। स्ट्रैबो और एरियन की पुस्तकों में निआर्कस के लेखों की जानकारी संग्रहित है। एरिस्टीब्यूलस (327 - 26 ई० पू०) - सिकंदर के साथ भारत आए इस यूनानी विद्वान ने 'हिस्ट्री ऑफ द वार' में भारत का विवरण दिया। एरियन और प्लूटार्क की पुस्तकों में एरिस्टीब्यूलस के लेखों की जानकारी संग्रहित है। मेगास्थनीज (305 - 297 ई० पू०) - यूनानी सम्राट सेल्यूकस का राजदूत, चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में 9 वर्ष रहा। उसने अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन, राजनीति, तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं का महत्वपूर्ण विवरण दिया हैं।

डीमेकस या डाइमेकस (298-273 ई० पू०) - सीरिया नरेश अंतिओकस - प्रथम का राजदूत, बिन्दुसार के दरबार में कई बार आया। स्ट्रैबो के लेखों में डीमेकस या डाइमेकस द्वारा दी गयी सूचना मिलती है। डायोनिसियस (284-262 ई० पू०) - मिस्र नरेश टॉलमी फिलाडेल्फस का राजदूत, मौर्य सम्राट बिन्दुसार के दरबार में आया था। स्ट्रैबो आदि परिवर्ती यूनानी लेखकों ने तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं पर इसके उद्धरणों का प्रयोग किया हैं। स्ट्रैबो (ईसा की प्रथम शताब्दी) - यूनानी यात्री स्ट्रैबो ने अनेक देशों की यात्रा की जिसमें सम्भवतः भारत भी सम्मिलित था ने अपने ग्रंथ 'ज्योग्रॉफी' में मौर्यकालीन इतिहास पर प्रकाश डाला है। प्लिनी (77 - 78 ई०) ईसा की प्रथम शताब्दी में भारत का भ्रमण करने वाले इस यूनानी लेखकने अपनी पुस्तक 'नेचुरल हिस्ट्री' में भारत और रोम के समृद्ध व्यापार का वर्णन किया है। वह लिखता है कि ''भारत के साथ व्यापार में रोम का स्वर्ण भण्डार कम होता जा रहा है।''

पेरिप्लस का अज्ञात लेखक (लगभग 80 - 115 ई०) - 'पेरीप्लस ऑफ द इरिथ्रयन सी' का अज्ञात यूनानी लेखक, जो प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी के मध्य हिन्द महासागर की यात्रा पर निकला था। उसके ग्रंथ में भारत के बन्दरगाहों, भारत, रोम, चीन आदि के व्यापार का वर्णन मिलता है।टॉलमी (दूसरी शताब्दी ई०) - प्रसिद्ध रोमन भूगोलवेत्ता टॉलमी यद्यपि भारत नहीं आया था , तथापि उसकी 'ज्योग्रॉफी' में भारत विषयक महत्वपूर्ण भौगोलिक विवरण मिलता है। एरियन (दूसरी शताब्दी ई०) - यूनानी लेखक एरियन ने 'इण्डिका' और 'सिकन्दर का आक्रमण' में सिकंदर के समकालीन लेखकों और मेंगस्थनीज के विवरणों पर भारत का इतिहास लिखा।

1.5.6 चीनी लेखकों का साहित्य

चीनी लेखकों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत सामग्री उपलब्ध करायी है। चीनी लेखकों में बहुत सारे लेखकों ने धार्मिक ज्ञान पिपासा को मिटाने भारत यात्रा की

तथा भारत भूमि के भ्रमण किया। चीनी लेखकों ने धार्मिक ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद करके धार्मिक भारतीय ज्ञान को चिरस्थायी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। चीनी लेखकों का विवरण भारतीय इतिहास लेखन में बहुत महत्व रखता है। सुमाचीन -‘चीनी इतिहास का जन्मदाता’ सुमाचीन ने ई॰ पू॰ प्रथम शताब्दी में लिखें इतिहास ग्रंथ में भारतवर्ष के संबंध में उल्लेख किया हैं। फाह्यान (399 - 414 ई॰) - फाह्यान 399 ई॰ में चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में भारत आया और 15 - 16 वर्षों तक भारत में रहा। इसका विवरण तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि पर तत्कालीन भारत का चित्रण करता है। ह्वेनसांग (629 - 643 ई॰) - यह चीनी बौद्ध यात्री सम्राट हर्षवर्द्धन के काल में 629 ई॰ में आया और 13 वर्षो तक भारत भ्रमण किया। इसका विवरण तत्कालीन धार्मिक, राजनीति, समाज, दंड - विधान आदि पर प्रकाश डालता है। इत्सिंग (675 - 695 ई॰) - यह चीनी बौद्ध यात्री कई वर्षो तक नालन्दा एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय में अध्ययनरत् रहा। इसने भारत और मलाया द्वीपों में प्रचलित बौद्ध धर्म का विवरण अपने ग्रंथ में किया है। तारानाथ (बारहवीं शताब्दी ई॰) - तिब्बती लामा तारानाथ के ग्रंथ ‘तंग्यूर’ और ‘कंग्यूर’ भारत पर प्रकाश डालते

1.5.7 अरबी लेखकों का साहित्य

अरबी लेखकों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत सामग्री उपलब्ध करायी है। अरबी लेखकों में बहुत सारे लेखक आक्रणकारियों के भारत यात्रा पर आये और बहुत से बाद में भारत में ही वश गये। अरबी लेखकों का विवरण प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में बहुत महत्व रखता है। सुलेमान (नवीं शताब्दी ई॰) - इस अरबी यात्री ने फारस की खाड़ी से होकर भारत व चीन की यात्राएँ की थी। इसने अपने यात्रा वृत्तान्त में राष्ट्रकूट, पालवंश एवं प्रतिहार जैसे राजपूत राज्यों का वर्णन किया है। इब्ने खुर्दादब (नवीं शताब्दी ई॰) - इस अरबी यात्री ने अपने ग्रन्थ ‘किताबुल-मसालक-वल-मामलिक’ में तत्कालीन भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक दशा का विस्तार से वर्णन किया है। अलबिला दुरी (नवीं शताब्दी ई॰) - इस अरबी यात्री ने अपने ग्रन्थ ‘फुतूहल-बुल्दान’ में भारत पर अरब आक्रमण एवं उसके प्रभाव का वर्णन किया है। अलबरुनी (1000 - 1030 ई॰) -यह महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। ‘तहकीके-हिन्द’ में तत्कालीन भारत के विषय में व्यापक जानकारी दी है। अलबरुनी का सभी अरबी लेखकों में सबसे महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय है। अल इदरीसी (ग्यारहवीं शताब्दी ई॰) - यह अरब यात्री अपने भारत भ्रमण वृतान्त ‘नुज्हजुल-मुश्ताक’ में राष्ट्रकूट, चोल, चालुक्य राज्यों तथा भारत के चीन एवं फारस के साथ व्यापारिक संबंधों पर महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. ‘तंग्यूर’ और ‘कंग्यूर’ नामक ग्रंथ किसने लिखे हैं?

(क) अलबरुनी ने (ख) इत्सिंग ने

(ग) तारानाथ ने (घ) कल्हण

2. तहकीके-हिन्द नामक ग्रंथ किसने लिखा हैं?

(क) अलबरुनी ने (ख) अल इदरीसी ने

(ग) सुलेमान ने (घ) इब्ने खुर्दादब

3. ’इण्डिका’ नामक ग्रंथ किसने लिखा हैं?

(क) कौटिल्य ने (ख) एरियन ने

(ग) प्लूटार्क ने (घ) मेगास्थनीज ने

4. ’नेचुरल हिस्ट्री’ नामक ग्रंथ किसने लिखा हैं?

(क) मेगास्थनीज ने (ख) प्लिनी ने

(ग) एरियन ने (घ) प्लूटार्क ने

5. फाह्यान किसके काल में भारत आया था?

(क) चंद्रगुप्त मौर्य के (ख) बिन्दुसार के

(ग) चन्द्रगुप्त द्वितीय के (घ) हर्षवर्द्धन के

1.6 इतिहास का महत्व

इतिहास का मानव जाति के लिए बहुत महत्व हैं। मानव के अतीत के विकास की गाथा इतिहास के पृष्ठों पर अंकित होती हैं। मानव अपनी वर्तमान प्रगति के सोपानों की दास्तां इतिहास को जानकर प्राप्त कर सकता है और सुनहरे भविष्य का निर्माण कर सकता है। मानव जाति के सुरक्षित भविष्य के लिए अतीत की गलतियाँ और वर्तमान की चुनौतियों का विश्लेषण आवश्यक एक शर्त होती है। इतिहास यह बताता है कि, मानव ने किस प्रकार और किन चुनौतियों का सामना करके वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया है। मानव के भौतिक विकास के ताने - बाने के तंतू भी अतीत के गर्भ से प्रस्फूटित हुए हैं, अतः साँस्कृतिक तत्वों के स्वरूप की आधारशिला को जानने के लिए इतिहास का महत्व बढ़ जाता हैं। फिशर ने ठीक ही कहा है, ‘इतिहास के पृष्ठों मानव की प्रगति अंकित हैं।’

किसी भी राष्ट्र के सुरक्षित भविष्य के लिए भी इतिहास का बहुत महत्व है। जैसा कि, शेक अली कहते हैं कि, ‘इतिहास की उपेक्षा करने वाले राष्ट्र का कोई भविष्य नहीं होता है।’ एक राष्ट्र के लिए यह आवश्यक

होता है कि, अतीत की गलतियों से सबक ले और वर्तमान में उन गलतियों को सुधारकर भविष्य के लिए सुरक्षित राष्ट्र का निर्माण करें। ऐतिहासिक रूप से देखें तो हम पायेंगें कि, भारतीय राजाओं ने अपनी उत्तरी - पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिए चीन की दीवार की तरह पुख्ता इंतजाम नहीं किये थे, इसीलिए लगातार समय - समय पर उत्तरी - पश्चिमी सीमा पर आक्रमण होते रहे और आक्रांता हमें रौंदते रहे। तात्पर्य यह है कि, हमें अपने अतीत का खुले दिमाग से विश्लेषण करना होगा तथा अपनी कमजोरियों - कमियों को दूर करना होगा, तभी सुरक्षित और उज्जल भविष्य की हम कल्पना कर सकते हैं।

इतिहास न केवल राष्ट्र को अपितु मनुष्य के लिए भी एक पथ प्रदर्शक का कार्य करता हैं। इतिहास मनुष्य को यह शिक्षा देता है कि, किस रास्ते पर चलने का क्या परिणाम निकल सकता हैं? अतः गलत रास्ते या ऐसे कार्य की पुनरावृत्ति करने में मनुष्य सावधानी बरतता हैं, क्योंकि 'दूध का जला छाछ को भी फूंक - फूंक कर पीता' हैं।

इतिहास का महत्व दूसरे राष्ट्रों का समझने में भी हैं। इतिहास दूसरे राष्ट्रों की विचारधारा का ज्ञान कराता है, इससे दूसरे राष्ट्रों की वास्तविक मंशा को पहचाना जा सकता हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करना है। हमने चीन के इतिहास से ज्ञान प्राप्त नहीं किया। चीन का इतिहास सदैव सीमा विस्तारवादी नीति का रहा है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

(I) इतिहास के पृष्ठों पर मानव की प्रगति अंकित होती हैं। स्पष्ट कीजिये?

(II) किसी राष्ट्र के लिए इतिहास का ज्ञान क्यों आवश्यक है?

1.7 सारांश

इतिहास के अध्ययन से हमें विदित होता है कि, मानव सभ्यता के विकास की क्रमिक जानकारी हमें इतिहास से प्राप्त होती है। इतिहास अतीत का अध्ययन हैं, जो मनुष्य के सुखमय भविष्य के लिए रास्ता बताता है। इतिहास का ज्ञान मनुष्य को अतीत में की गयी गलतियों को वर्तमान में सुधारने का अवसर प्रदान करता है, जिससे सुरक्षित भविष्य का निर्माण संभव है। इतिहास न केवल मानव के लिए अपितु राष्ट्र के लिए भी एक पथ प्रदर्शक का कार्य करता हैं, क्योंकि इतिहास की उपेक्षा करने वाले राष्ट्र का कोई भविष्य नहीं होता है। देश के रूप हमें 1962 के चीनी आक्रमण को नहीं भूलना चाहिए। भारत ने चीन के इतिहास से कुछ नहीं सीखा। चीन का इतिहास सदैव सीमा विस्तारवादी रहा है। हमने अपने इतिहास से भी नहीं सीखा कि, भारत पर सदियों से

विदेशी आक्रमणा होते रहे और हम हारते रहे है, इसलिए आजादी के बाद ठोस सुरक्षा नीति बनायी जाने की शिक्षा हमें इतिहास देता हैं।

1.8 तकनीकी शब्दावली

यूनान:	यूरोप महाद्वीप का एक देश।
अतीत:	बीता हुआ कल या भूतकाल।
पुनर्जागरण:	किसी देश या समाज का राजनीतिक एवं साँस्कृतिक रूप से उदय।
उपनिवेश:	किसी स्वतंत्र देश पर आक्रमण करके दूसरे देश द्वारा गुलाम बनाना।
सार्क देश:	भारत, नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालद्वीप एवं अफगानिस्तान।

1.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.3

1. (क) देखिए 1.3 इतिहास की परिभाषा

(ख) देखिए 1.3.2 इतिहास ज्ञान है

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

(I) देखिए 1.3.6 भूत और वर्तमान की कड़ी है

(II) देखिए 1.3.1 इतिहास कहानी है

इकाई 1.4

1. (क) देखिए 1.4.13 सार्क देशों का इतिहास
   (ख) देखिए 1.4.15 विश्व इतिहास

2. (I) देखिए 1.4.1 राजनीतिक इतिहास
   (II) देखिए 1.4.6 संवैधानिक इतिहास

इकाई 1.5 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(I) देखिए 1.5 इतिहास का महत्व

(II) देखिए 1.5 इतिहास का महत्व

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बुद्ध प्रकाश - इतिहास दर्शन, प्रयाग, 1999

2. चौबे, झारखण्डे - इतिहास दर्शन, वाराणसी, 1999
3. कार, ई० एच० - इतिहास क्या है, नई दिल्ली, 1993
4. क्लार्क, जी० एन० - द क्रिटिकल हिस्टोरियन, लंदन, 1970
5. राउल, ए० एल० - द यूज ऑफ हिस्ट्री, लंदन, 1963
6. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र - इतिहास: स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1999

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अली, मुबारक - इतिहास का मतान्तर, नई दिल्ली, 2002
2. दुबे, जगदीश नारायण - इतिहास विज्ञान, वाराणसी, 1982
3. थापर, रोमिला (संपा०) - इतिहास की पुनर्व्याख्या, नई दिल्ली, 1991
4. शर्मा, रामविलास - इतिहास दर्शन, नई दिल्ली, 1995
5. सरकार, सुमित - सामाजिक इतिहास लेखन की चुनौतियाँ, दिल्ली, 2001
6. श्रीवास्तव, ब्रजेश कुमार - इतिहास लेखन, आगरा, 2009

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. इतिहास क्या इतिहास है? अपने विचार व्यक्त कीजिये?

प्रश्न 2. इतिहास के क्षेत्रों का उल्लेख कीजिये?

प्रश्न 3. इतिहास के महत्व पर अपने विचार प्रगट कीजिये?

इकाई दो – पाषाण युग: पुरापाषाण युग, मध्यपाषाण युग, एवं नवपाषाण युग

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 परिचय

2.4 मानव प्रजाति के पूर्वज और उनका विकास

2.5 पुरापाषाण काल (600,000 ई.पू. से 10,000 ई.पू. तक)

2.5.1 उपकरणों का भौगोलिक वितरण

2.5.2 औजार बनाने की तकनीक

2.5.3 औजार

2.5.4 जीवनयापन का तरीका एवं संस्कृति

2.5.6 पुरापाषाण समाज में लिंग आधारित श्रम विभाजन पर एक विचार

2.6 मध्यपाषाण काल (10,000 ई.पू. से 6000 ई.पू. तक)

2.6.1 भौगोलिक वितरण

2.6.2 सूक्ष्म पाषाण उपकरण

2.6.3 जीवनयापन और संस्कृति

2.7 पाषाणयुगीन चित्रकला

2.8 नवपाषाण काल (6000 ई.पू. 2000 से ई. पू. तक)

2. 8.1 औजार

2. 8.2 भौगोलिक वितरण

2. 8.3 जीवनयापन और संस्कृति

2.9 सारांश

2.10 तकनीकी शब्दावली

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

हमारी पृथ्वी की आयु लगभग 4.6 अरब वर्ष से अधिक है। पृथ्वी की उत्पत्ति के समय इसका वातावरण अत्यंत कठोर और विषम था। इस पर चारों और बर्फ की परत बिछी हुई थी। कालांतर में मौसम में बदलाव होने के साथ-साथ बर्फ की मात्रा में कमी आयी और संसार के विभिन्न हिस्सों में मानव प्रजाति का प्रादुर्भाव हुआ।

पृथ्वी के प्रारंभ में कई करोड़ वर्षों तक जीवन केवल पौधों और पशुओं तक ही सीमित रहा। मनुष्य की उत्पति नूतन महाकल्प के दौरान हुई। पृथ्वी की परत के विकास की अवस्थाओं को पाँचकल्पों में विभाजित किया जाता है और फिर पुनः ये कल्प कई युगों में विभाजित किये गए हैं। ये कल्प हैं नामतः- आद्य कल्प, पुराजीवी महाकल्प, मध्यजीवी महाकल्प, नवजीवी महाकल्प, और नूतन महाकल्प।इसी नूतन महाकल्प को चतुर्थक युग भी कहा जाता है। इसे प्लाइस्टोसीन (अतिनूतन) और होलोसीन (अद्यतन) के रूप में विभाजित किया गया है। प्लाइस्टोसीन की समय सीमा 20 लाख ईसा पूर्व से 12,000 ई० पू० के बीच आँकलित की गई है (इस काल के दौरान यूरोप में चार हिम युग देखे गए थे – गुंज, मिन्डेल, रिस और वुर्म।) तथा होलोसीन की समय सीमा 12,000 ई० पू० से शुरू होकर वर्तमान तक जारी है। मानव की उत्पत्ति भी इस धरा पर इसी प्लाइस्टोसीन काल में हुई थी।

2.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य आपको, भारत के प्रारंभिक निवासी कौन थे? इन्होंने भारत के किस क्षेत्र में अपने अधिवासों को स्थापित किया था? इनकी सभ्यता का स्वरुप क्या था? मानव विकास की शुरुआत कैसे हुई? आदि विषयों को विस्तार-पूर्वक समझाना है। इस अध्याय के माध्यम से आप इन सभी प्रश्नों के उत्तर समझ सकेंगे।

2.3 परिचय

भारत के प्रारंभिक निवासी कौन थे? यह तय कर पाना थोड़ा कठिन कार्य है। भूगर्भ-शास्त्रियों के अनुसार भारत का दक्षिणी भाग अधिक प्राचीन है, और उत्तरी भाग का निर्माण इसके बाद तथा सबसे अंत में हिमालय पर्वत श्रृंखला का निर्माण हुआ है। अतः हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि भारतीय भूमि के प्राचीनतम निवासी भारत की दक्षिण भूमि में ही निवास करते रहे होंगे।हालाँकि हमें इस बात की कोई ठोस जानकारी उपलब्ध नहीं है कि यह प्राचीन आदि निवासी लोग कौन थे और वे किस प्रकार की वस्तुओं को उपयोग में लाते थे; संभवतः काल के क्रम में उनके द्वारा प्रयुक्त सामाग्री भूगर्भ में ही लुप्त हो गई। उनके द्वारा प्रयोग में लाई

गयी वस्तुओं का पुरातत्ववेत्तावों तथा भूगर्भ-शास्त्रियों द्वारा अध्ययन कर उसका अन्वेषण कर तर्क पूर्णअनुमान से इस सभ्यता के क्रमिक विकास की कल्पना की गई है।

जैसा कि डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी कहते हैं“ सभी संकेत इसी तथ्य की और इंगित करते हैं कि आदिम मनुष्य अज्ञानता तथा बर्बरता के अन्धकार में अंतर्लीन था और उसने सभ्यता के प्रकाश की ओर शनैः-शनैः प्रगति की है।” प्राचीन सभ्यता के इस क्रमिक विकास की परिणीती से मनुष्य आज सुकुमार बन विज्ञान के इस युग तक पहुँच सका है। इस अति प्राचीन सभ्यता को हम ***पाषाण युग*** के नाम से जानते हैं जिसे हम अध्ययन की दृष्टि से सरलतापूर्वक समझने के लिए इसका पुनः तीन भागों में विभाजन करते हैं अर्थात **पुरापाषाण युग, मध्य पाषाण युग, एवं नवपाषाण युग।** यह विभाजन साल १९६१ में कामसन तथा ब्रेडवुड द्वारा आदिम मानव द्वारा अपनाये जाने वाले भोजन संग्रहण के तरीकों पर आधारित है। उन्होंने बताया कि प्रथम काल के मानव की भोजन के लिए शिकार पर निर्भरता, द्वितीय काल में शिकार तथा भोजन संग्रहण की व्यवस्था तथा तीसरे और अंतिम नवपाषाण काल का सम्बन्ध भोजन के उत्पादन से है। वस्तुतः इन तीन युगों के विभाजन का मुख्य आधार (i) पत्थरों के उपकरण तथा साक्ष्य (ii) जलवायु परिवर्तन और (iii) जीवनयापन का तरीका है। आगे के पृष्ठों पर इनका विस्तार पूर्वक अध्ययन कर लेने से पूर्व हम संक्षेप में एक दृष्टि मानव के विकास पर डाल लेते हैं।

2.4 मानव प्रजाति के पूर्वज और उनका विकास

आज से करीब 60 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका के दक्षिणी और पूर्वी हिस्सों में आदिम मानव का जिसे हम मानवसम (होमिनिड) भी कहते हैं, अस्तित्व में आए थे। अदिमानव जिसे हम बन्दर के समतुल्य मान सकते हैं लगभग 3 करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर उत्पन्न हुए और यह घने जंगलों में वृक्षों पर निवास करते थे। समय के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन और अन्य प्राकृतिक कारणों के चलते इन प्रारंभिक कपि-समूहों का मैदानों की और पलायन हुआ और समय के साथ साथ यह आदिम कपि समूह मैदान की जलवायु के प्रति अनुकूलित होते चले गए। समय के साथ साथ मनुष्य के आकारिकी सरंचना में परिवर्तन हुए जैसे खोपड़ी चौड़ी हो गई, मेरुदंड सीधा हो गया, उनकी थूथन छोटी हो गई तथा इन सब का संयुक्त प्रभाव उसकी बोली, मस्तिष्क, ज्ञान भण्डार तथा उसकी अन्य क्रियाओं पर भी पड़ा, जिसने जंगलों की ख़ाक छानने वाले कपि को उठाकर आज मंगल ग्रह की यात्रा करने वाले व्यक्ति के रूप में परिणत कर दिया है। मानव विकास की इन अवस्थाओं तथा उनकी विशेषताओं को संक्षेप में इस तरह व्यक्त किया जा सकता है।

रामापिथेकस

इनकी पहचान इनके पाए गए जबड़े के टूटे हुए अवशेषों से की गई है, जिसमें दांत भी दिखाई पड़ते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप की शिवालिक पहाड़ियों से इनके साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। इनमें होमिनिड की विशेषताएं अवश्य पायी गई हैं परन्तु ये मूलतः वानरों का ही प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं।

ऑस्ट्रेलोपिथेकस

मानव इतिहास के विकास में **ऑस्ट्रेलोपिथेकस** का उदभव एक महत्त्वपूर्ण घटना को इंगित करती है। वस्तुतः यह एक लैटिन भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ दक्षिणी वानर से संदर्भित है। इसकी उत्त्पति आज से लगभग 55 लाख वर्ष पूर्व से 15 लाख वर्ष पूर्व हुई थी। इसकी ऊँचाई 42 से 55 इंच तक और वजन 40 से 70 पोंड के बीच था। इसकी पीठ हल्की झुकाव लिए थी और यह अपने दो पैरों पर सीधा चलता था। इसका चेहरा कपि समान परन्तु इसकी खोपड़ी मानव मस्तिष्क से मिलती जुलती थी। इसमें कुछ ऐसे लक्षण दृष्टिगत थे जो कि मानव के समान थे, इसीलिए इसे आद्यमानव अथवा प्रोटो-मानव की भी संज्ञा दी जाती है।

होमो इरेक्टस

इस कपि-मानव की उत्पत्ति आज से कोई 15 लाख वर्ष पूर्व से 7.5 लाख वर्ष पूर्व के बीच मानी जाती है। इस कपि मानव ने लम्बी दूरी की यात्राएं की और इसके अवशेष अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के साथ साथ चीन के समशीतोष्ण क्षेत्रों, दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्वी एशिया तक पाए जाते हैं। अग्नि की खोज का श्रेय भी इसी को दिया जाता है।

निएंडरथल

यह एक बड़े सिर वाला मानव था जिसकी मस्तिष्क क्षमता आधुनिक मानव के समान थी। यह गर्दन झुकाकर और सीधा चला करता था।

होमो सेपीयंस

इसका उद्भव पृथ्वी पर लगभग 2.3 लाख से 30 हजार वर्ष पूर्व तक माना जाता है। इसे पहले बुद्धिमान मानव की भी संज्ञा दी जाती है। विश्व की वर्तमान मानव प्रजाति का उद्भव इसी होमो सेपियंस से हुआ था। इस प्रजाति में कुछ ऐसे लक्षण विद्यमान थे जिन्हें पहले कभी नहीं देखा गया, जैसे उभरी हुई ठोडी का विकास, खोपड़ी में गोलाकार उत्तल अग्र भाग का निर्माण, छोटा शरीर तथा मस्तिष्क का बड़ा आकार (1200-1800cc) इत्यादि।

चित्र सं ०१: मानव विकास की श्रृंखला

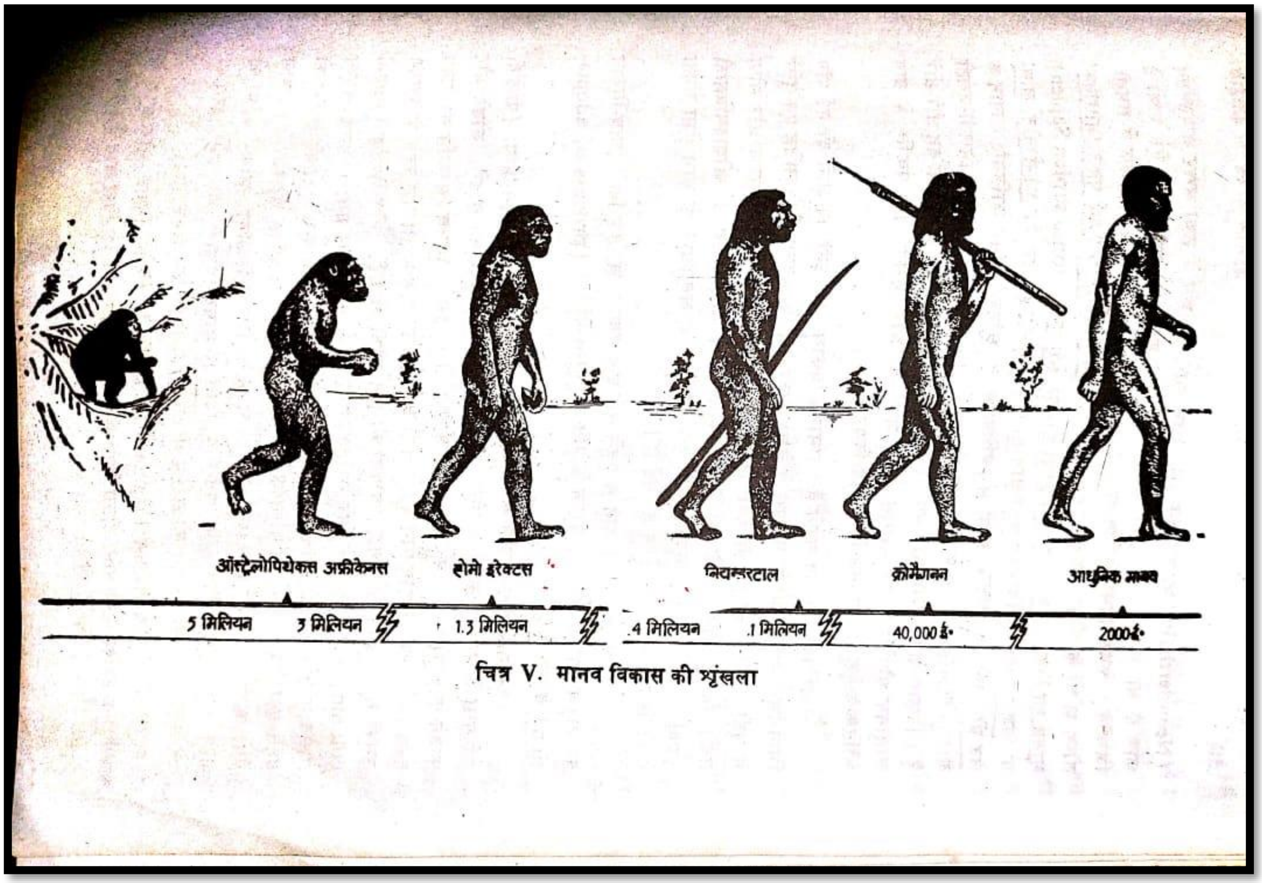
ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस
होमो इरेक्टस
नियन्डरटाल
क्रोमैगनन
आधुनिक मानव
5 मिलियन
3 मिलियन
1.3 मिलियन
.4 मिलियन
.1 मिलियन
40,000 ई॰
2000 ई॰
चित्र V. मानव विकास की श्रृंखला

स्रोत: द्विजेन्द्रनारायण झा और कृष्णमोहन श्रीमाली, संस्करण 2002

2.5 पुरापाषाण काल (600,000 ई.पू. से 10,000 ई.पू. तक)

पुरापाषाण शब्द के लिए अंग्रेजी भाषा में *Paleolithic* शब्द का प्रयोग किया जाता है जो कि एक यूनानी शब्द है। इसमें पहले शब्द *palaios* का अर्थ है पुराना और *lithos* का अर्थ है पत्थर, इस शब्द का प्रयोग प्रागैतिहासिक काल के सन्दर्भ में किया जाता है जब मानव पत्थर से बने औजारों का प्रयोग किया करता था। प्रागैतिहासिक काल से सम्बंधित संस्कृतियों के बारे में सर्वप्रथम जानकारी इसी युग से प्राप्त की जाती है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वर्ष 1865 में पुरात्तत्ववेत्ता जॉन लुब्बाक द्वारा किया गया था। इनकी पुस्तक का नाम 'प्रीहिस्टारिका टाइम्स' है। पुरापाषाण काल को इतिहासकारों द्वारा तीन भागों में विभाजित किया गया है। यह विभाजन उक्त काल में प्रयोग में लाये जाने वाले उपकरणों तथा जलवायु परिवर्तन के साक्ष्यों पर आधारित है। इसकी तीन अवस्थाएँ निम्नवत हैं-

- निम्न पुरापाषाण काल (600,000 ई.पू. से 150,000 ई.पू. तक)
- मध्य पुरापाषाण काल (150,000 ई.पू. से 35,000 ई.पू.तक)
- ऊपरी पुरापाषाण काल (35,000 ई.पू. से 10,000 ई.पू.तक)

साक्ष्य इस बात की तरफ इशारा करते हैं कि पुरापाषाण काल का अधिकाँश हिस्सा हिमयुग के अंतर्गत गुजरा है। संभवतः आज से कोई 20 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका में पुरापाषाण काल की शुरुआत हुई होगी, परन्तु भारत के सन्दर्भ में यह युग 6 लाख वर्ष पूर्व से अधिक पुराना नहीं प्रतीत होता। दरअसल इस तिथि का निर्धारण महाराष्ट्र के बोरी नामक स्थान से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर किया गया है जो कि भारत से खोजे सबसे प्राचीन पुरापाषाण कालीन स्थलों में से एक है। इस स्थल से हस्तकुठार (हैंडएक्स), क्लीवर (विदारणी), चौपर (खंडक), स्क्रेपर्स (खुरचनी), आदि उपकरणों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

2.5.1 उपकरणों का भौगोलिक वितरण

इस काल के प्राचीनतम उपकरणों के साक्ष्य हमें अफ्रीका महाद्वीप के ओल्डूवई गर्ज से प्राप्त हुए हैं। इस के साथ ही यह मोरक्को तथा लगभग पूरे यूरोपीय महाद्वीप पर पाए गए हैं ।इनमें फ्रांस के सोम घाटी में स्थित अब्बेविल (Abbeville) जहां से हस्तकुल्हाड़ियों की प्राप्ति हुई। इंग्लैंड में थेमस नदी पर स्थित स्वान्सकोम्ब (Swanscombe) फ्रांस का अमीन्स (Amiens), जर्मनी का स्टेनहीम (Steinheim), हंगरी के वर्टिजोलुस गुफा प्रमुख हैं। एशिया महाद्वीप में साइबेरियायी क्षेत्र को छोड़कर लगभग सभी प्रदेशों से इन उपकरणों की प्राप्ति हुई है। चीन में बीजिंग के समीप झाऊ तेन गुफा में तो उस काल के मानव के उपकरण तथा आग के प्रमाण भी मिले हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के अलग-अलग भागों से पुरापाषाण युगीन उपकरणों के साक्ष्य मिले हैं जैसे- पाकिस्तान के सोहन नदी घाटी क्षेत्र में अडियाल, बड़वाल, चौन्थरा, जैसे स्थलों का साक्ष्य प्राप्त हुआ है। कश्मीर में पहलगांव से हस्तकुठार के साक्ष्य, मध्यप्रदेश में भीमबेटका से, महाराष्ट्र में प्रवरा नदी घाटी क्षेत्र, ओडिशा की वैतरणी, ब्रह्माणी और महानदी का डेल्टाई क्षेत्र, दक्षिण भारत में तमिलनाडू के साथ-साथ समस्त भारत से इस प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए हैं। दक्षिण-पूर्वी ऐशिया के जावा प्रदेश से इस काल के मानव अवशेष प्राप्त भी हुए हैं। वस्तुतः देखा जाए तो पुरापाषाण कालीन समस्त साक्ष्य नदी घाटियों से ही प्राप्त होते हैं इसके पीछे संभवतः यह कारण रहा होगा कि तत्कालीन समाज में जीवन जीने के लिए पानी और पत्थर दोनों आवश्यक थे और पत्थर मैदानी क्षेत्रों में आसानी से सुलभ थे।

2.5.2 औजार बनाने की तकनीक

आदिम मानव ने अपनी आवश्यकता के अनुसार पत्थरों तथा हड्डियों को मनचाहा आकार देकर अपने जीवन निर्वाह हेतु औजारों का निर्माण किया होगा। प्राचीनतम औजारों को पैबल (Pebble) कहते हैं जिसके एक तरफ के फलक को उतार कर चापर औजार बनाए गए थे। कालांतर में प्रौद्योगिक के विस्तार के साथ-साथ इसमें सुधार आया। इस काल का मानव भोजन के लिए शिकार पर निर्भर था। आगे मानव ने चापर औजारों का निर्माण किया, जिसमें पत्थर के एक हिस्से का फलक उतार कर उपकरणों का निर्माण किया गया। इन्हीं औजारों से बाद में हस्तकुठारों का निर्माण किया गया और कालान्तर में इन्हीं से हस्त कुल्हाडियां निर्मित हुई।

- **Block-on-Anvil Technique:** इस विधि में औजारों का निर्माण करते समय जिस पत्थर का औजार के रूप में निर्माण करना होता था उसे किसी अन्य चट्टान पर प्रहार कर उसके फलक को उतार लिया जाता था। इस तकनीक के माध्यम से बड़े और अपरिष्कृत हथियारों का निर्माण ही संभव था।

- **Stone Hammer Technique or Block-on-Block Technique:** औजार निर्माण तकनीक में पाषाणकालीन मानव द्वारा प्रयोग की जाने वाली सर्वाधिक लोकप्रिय तकनीक थी। इस तकनीक के माध्यम से मानव द्वारा द्विधारी औजारों का निर्माण किया जाने लगा था। इसमें जिस पत्थर को एक स्थान पर रखकर दूसरे पत्थर से प्रहार कर पत्थर को धारदार रूप प्रदान किया जाता था।

- **Step Flacking Technique:** इस तकनीक में औजार का निर्माण करते समय सर्वप्रथम हथियार बनाये जाने वाले पत्थर को चिन्हित कर लिया जाता था उसके उपरांत चिन्हित हिस्से पर चोट कर हथियार को मनचाह आकार प्रदान किया जाता था। इस विधि द्वारा हस्तकुठारों का निर्माण किया जाता था।

- **Cylinderical Hammer Technique:** इस तकनीक में हथियार निर्माण के लिए सिलेंडरनुमा हथौडे का प्रयोग किया जाता था। इनसे सुन्दर एशुलियन प्रकार की हस्त कुल्हाड़िया बनाई जाती थी।

2.5.3 औजार

निम्नपुरापाषाण काल से पाए गए उपकरण कोर या मूल पत्थरों से निर्मित थे। अधिकांशतः उपकणों का जो साक्ष्य मिला है वह, क्वार्टजाइट और बेसाल्ट जैसे कठोर पत्थरों से निर्मित है। उपकरणों के निर्माण के लिए ‘प्रत्यक्ष प्रहार तकनीक’ का सहारा लिया गया है। उदहारण- हैंडएक्स, क्लीवर, चौपर, स्क्रेपर्स। वहीं मध्य्पुरापाषाण काल में बने उपकरणों में अपेक्षाकृत कम कठोर पत्थरों जैसे चर्ट, फ्लिंट आदि का प्रयोग किया गया है। इस काल में बने उपकरणों का आकार अपेक्षाकृत छोटा और सुडौल हो गया साथ ही अब औजारों के निर्माण में फ्लैक (फलकों) का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा। अब उपकरणों के निर्माण में प्य्ताक्ष प्रहार तकनीक के साथ-साथ अप्रत्यक्ष तकनीक का भी प्रयोग किया जाने लगा। इस काल के प्रमुख उपकरणों में शामिल हैं- ब्लेड, बोरे, पॉइंट, स्क्रपेर आदि।

ऊपरी पुरापाषाण काल आते-आते उपकरणों के निर्माण में तकनीकी विकास दृष्टिगोचर होता है और इस चरण में दबाव के द्वारा उपकरणों को मनचाहा आकार दिया जाने लगा। इस काल के निर्मित उपकरणों में ब्लेड, ब्यूरिन चोपर, हस्त कुल्हाड़ियो, विदारणी, खुरचनी इत्यादि प्रमुख थे। इन औजारों का प्रयोग मानव अपने शिकार और पौधों को काटने या छिलने में लाता था। इसके अलावा खाल साफ करने, मिट्टी से जड़ और कन्दमूल एकत्रित करने आदि कार्यों को भी इन उपकरणों ने आसान बना दिया था।

2.5.4 जीवनयापन का तरीका एवं संस्कृति

यह काल विषम भौगोलिक परिस्थितियों के चलते मानव के लिए कठिन था, यह वही काल था जब मानव ने बर्बर जीवन जिया और वह पूर्णतः प्रकृति पर आश्रित था। इस काल का मानव जीवनयापन के लिए मूलतः शिकार और खाद्यसंग्रह पर आश्रित था। दुसरे शब्दों में कहा जाए तो तत्कालीन मानव उत्पादक न होकर केवल उपभोक्ता था। तत्कालीन समय में जनसँख्या के सीमित होने के कारण प्रकृति की देन से ही शायद उसकी आवश्यकताओं की पूर्ती भी हो जाती रही होगी। इस काल के मिले साक्ष्यों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तब मानव लंबे-लंबे केश वाले और बड़े खुरों वाले जानवरों का शिकार करता रहा होगा। कुल मिलकर कहा जाए तो वन्य पशुओं का शिकार करना ही उस समय का प्रमुख उद्यम रहा होगा। इसी के चलते कई आर्थिक इतिहासकारों ने इस युग को 'आखेट युग' की संज्ञा भी प्रदान की है।

ऊपरी पुरापाषाण काल से हमें जानवरों की हड्डियों के स्पष्ट प्रमाण मिलने लगते हैं, जिन क्षेत्रों में यह हड्डियां बहुतायत रूप में पायी गई है वहाँ हम अनुमान लगा सकते हैं कि उस क्षेत्र-विशेष में पशुओं की संख्या अधिक रही होगी। उपकरणों के साक्ष्यों को आधार मानकर कई विद्वानों का यह भी मानना है कि इनका प्रयोग न केवल शिकार वरन मानव-पशु संघर्ष के समय सुरक्षा के मद्देनजर भी किया जाता होगा। इस युग का मानव अग्नि के प्रयोग को लेकर विज्ञ था या नहीं, इस बात को लेकर विद्वानों के मध्य बड़ा मतभेद है।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार ये अग्नि के प्रयोग से भिज्ञ ये थे परन्तु अधिकाँश विद्वानों का मानना यही है कि इस युग का मानव अग्नि के प्रयोग से अनभिज्ञ ही था। यदि दूसरी धारणा को सच माना जाये तो इस युग का मानव कंदमूल फल, कच्चा शिकार खाकर और नदियों, सरोवरों आदि का पानी पीकर ही अपना जीवन व्यतीत करता रहा होगा। क्योंकि इस युग का मानव कृषि कार्य और पशुपालन से पूर्णतः अनभिज्ञ था। इस समय से प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह अनुमान भी लगया जा सकता है कि इस समय का मानव किसी एक स्थान पर लंबे समय तक टिककर नहीं रहता होगा, उसे संसाधनों की प्राप्ति के लिए स्थान परिवर्तन करना पड़ता रहा होगा। फिर भी यह अनुमान लगया जा सकता है कि इनकी उपस्थिति नदी-घाटियों की तलहटी में देखी जा सकती है। इसके पीछे यह तर्क दिया जा सकता है कि उसे सुरक्षा और शिकार के लिए पत्थरों की

आवश्यकता थी जो इन इलाकों में आसानी से उपलब्ध थे। इस युग के मानव का आवास खुला नील-आकाश और प्राकृतिक गुफाएं तथा शिलाश्रय हुआ करती थी।

स्टुअर्ट पिग्गट के अनुसार इस युग के मानव के जीवन का आधार शिकार करना तथा भोजन एकत्रित करना था। इसकी पुष्टि पुरापाषाण युग की बस्तियों से पाए जाने वाले जानवरों के अवशेषों के आधार पर भी की जा सकती है। इन जानवरों के जीवाश्म में भारतीय मूल तथा विदेशी मूल दोनों प्रकार के जानवरों के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। गाय, भैंसा, सुंवर, बकरी, जिराफ, हिरन, आदि स्वदेशी मूल के जानवर प्रतीत होते हैं वहीं ऊंट, घोड़ा, दरियायी घोड़ा, हाथी, आदि जानवर संभवतः उत्तरी अमेरिका और अफ्रीका के क्षेत्र से भारत की पश्चिमी सीमा से भारत पहुंचे होंगे।

इस युग के मानवीय समाज में हम विज्ञान और तकनीक में भी उन्नति देख सकते हैं। यथा निम्न पुरापाषाण से उच्च पुरापाषाण काल तक हम उपकरणों के निर्माण में निरंतर तकनीक विकास को देख सकते हैं। यह तकनीक विकास मानव के बौद्धिक विकास को भी इंगित करता है। इसके अलावा कई विद्वानों का मत है कि विज्ञान और तकनीक की अवधारणा का बीजारोपण मानवीय समाज के इसी इसी युग में हुआ था। इसके पीछे का तर्क वह बताते हैं कि तत्कालीन समाज में मनुष्य का प्रमुख उद्यम आखेट करना था, और स्वभाविक ही है कि इसके लिए मानव ने पशु व्यवहार का अध्ययन भी किया होगा ताकि वे सरलता से पशुओं का वध कर सकें। साथ ही तत्कालीन मनुष्य ने जलवायु और ऋतुओं सम्बंधित ज्ञान भी अवश्य अर्जित किया होगा। पाषाणकालीन मानव के जीवन में बात करते हुए गार्डनर चाइल्ड कहते हैं कि- "वन विद्या में वनस्पति तथा जीव विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान तथा जलवायु विज्ञान का मूल अन्तर्निहित है।"(In jungle lore lie the roots of Botany and zoology, of Astronomy and Climatology" Gordan child.) भारतीय पुरापाषाण काल के सन्दर्भ में उनकी यह बात सत्य ही प्रतीत होती है।

2.5.6 पुरापाषाण समाज में लिंग आधारित श्रम विभाजन पर एक विचार

पुरापाषाण कालीन मानव और समाज के बारे में काफी लंबे समय तक यह धारणा बनी रही की तत्कालीन परिस्थितियों में आखेट करना जीवन जीने का एक प्रमुख तरीका रहा होगा और इस गतिविधि को पुरुष प्रधान कार्य के रूप में मान्यता दी गई थी। वस्तुतः इस मान्यता के पीछे एक वजह यह भी थी कि इतिहासकारों ने इस शिकारी व्यवस्था को आर्थिक प्रयास के रूप में चित्रित करने की कोशिश करी। माना यह जाता था की पुरुष प्रधान या प्रभारी की भूमिका में रहते थे और उनका महिलाओं और बच्चों पर पूर्ण अधिकार होने के साथ ही उनका मुख्य कार्य भोजन की व्यवस्था करना और उसे आपस में बांटना था। महिलाओं के बारे में यह सोचना था कि महिलाएं चूंकि नैसर्गिक रूप से प्रजनन क्षमता से युक्त होती हैं तो उनका कार्य सिर्फ वंश को आगे

बढ़ाना और मातृत्व कार्य के साथ-साथ बच्चों की देखभाल करने तक सीमित था। यह अवधारणा रिचर्ड बी ली और आई देवोर (1968) ने एक संगोष्ठी में 'मैन द हहंटर' नाम से प्रस्तुत की थी और आगे चलकर यही उनकी पुस्तक का शीर्षक भी बना।

इसी कड़ी में लैंगिक ध्रुवीकरण पर आधारित इन सिद्धांतों की नैन्सी टैनर ए जिलमैन और अन्य विद्वानों ने कड़े शब्दों में आलोचना की और साथ ही प्रागैतिहासिक कालीन समाजों में इस प्रकार के लैंगिक श्रम विभाजन का विरोध कर खंडन किया है। उनके अनुसार जानवरों के शिकार पर जाना एक अवसरवादिता थी और चूंकि प्रारंभिक समाज उपभोक्ता था न कि उत्पादक, इसलिए यह स्पष्ट है तब के समाज में स्त्री और पुरुष दोनों इन औजारों के माध्यम से अवश्यकतानुरूप शिकार करते रहे होंगे। इस विचारधारा के विद्वान इस बात पर तर्क करते हैं कि क्या समाज में सभी महिलायें माँ थी? और यदि नहीं तो फिर यह श्रम विभाजन की धारणा भ्रामक है।

नारीवादी पुरातत्वविदों में से एक प्रमुख लेखिका जोआन मेरो (कैथ्रीन डब्ल्यू आर्थर, 2010 में उद्धृत) का तर्क है कि प्रागैतिहासिक महिलायें अवश्य ही औजार-निर्माता रही होंगी क्योंकि उन्हें कई तरह के कार्यों को करने के लिए फलक औजारों की आवश्यकता होती थी। इसके अलावा भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि अधिकांशतः इन संग्राहक समाजों में महिलाऐं खाद्य संग्रहण की प्रक्रियाओं में अपना विशेष योगदान देती थी। और खुद आगे बढ़कर पुरुषों के साथ या फिर अकेले शिकार के लिए जाती थी। इस प्रकार संग्रहण व्यवस्था लिंग आधारित श्रम विभाजन को चुनौती प्रस्तुत करती है। ए जिहलमैन (1978) जैसे विद्वानों का मानना है कि मानव जीवन का तरीका श्रम के लिंग विभाजन पर आधारित नहीं था, बल्कि एक ऐसी प्रणाली पर आधारित था जहां पुरुष और महिलाएं एक शिकारकर्ता के रूप में व्यवहारिक लोचकता के साथ एकत्रण और शिकार कार्य में सलग्न होते थे जो प्रारंभिक मानव (होमिनिडों) के अस्तित्व का प्रमुख कारक था।

2.6 मध्यपाषाण काल (10,000 ई. पू. से 6,000 ई. पू. तक)

यह काल पुरापाषाण काल और नव पाषाण काल के बीच; संक्रमण काल के रूप में भी जाना जाता है। यही एक कारण है कि इस युग के दौरान हमें इसके पूर्ववर्ती तथा पश्चवर्ती दोनों ही कालों की कुछ न कुछ विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इस काल की शुरुआत पुरापाषाण काल के अंत के साथ ही लगभग 10,000 ई. पू. से मानी जाती है। वस्तुतः 10,000 ई. पू. के आस-पास जलवायु में व्यापक परिवर्तन हुए, जिससे हिमयुग की समाप्ति हुई और जलवायु पहले की अपेक्षाकृत अधिक गर्म हो गई। इसके परिणामस्वरुप वातावरण में नए

प्रकार के पेड़-पौंधों एवं जीव-जंतुओं का उदय होने के साथ-साथ नयी-नयी नदी जलधाराओं का विकास भी हुआ।

स्वभाविक तौर पर वातावरण में हुए इन परिवर्तनों का प्रभाव सीधे तौर पर मध्यपाषाण युगीन मानव के जीवन में भी परिलक्षित होना ही था, इसी के परिणाम स्वरुप जहाँ मध्यपाषाण युग में नए जानवरों का प्रवेश हुआ वहीं इसी अनुपात में मनुष्य की जनसँख्या में भी वृद्धि देखने को मिलती है। जनसँख्या में वृद्धि के चलते मानव इस युग में नए भौतिक प्रदेशों या क्षेत्रों की और अग्रसर हुआ।

2.6.1 भौगोलिक वितरण

आजादी के पश्चात मध्यपाषाण कालीन संस्कृति के स्थल को अनेक क्षेत्रों में खोजा जा चुका है। इस संस्कृति के अवशेष और साक्ष्य लगभग पूरे भारत से पाए गए हैं। इस संस्कृति के कुछ प्रमुख क्षेत्रों की सूची नीचे दी जा रही है ताकि आप लोग इस युग के कुछ स्थलों के बारे में परिचित हो सकें।

- उत्तरप्रदेश के प्रयागराज जिले में अवस्थित चौपानीमांडा (इस स्थल से बर्तन के प्राचीनतम साक्ष्य प्राप्त होते हैं।), प्रतापगढ़ स्थित सराय नहर (इस स्थल से हत्या या युद्ध का प्राचीनतम साक्ष्य प्राप्त होता है इस स्थल पर एक शवाधान के कपाल में सूक्ष्मपाषाण जड़ा हुआ पाया गया है।), मेहदहा (यहाँ से युगल शवाधान का साक्ष्य और पत्थर एवं हड्डियों के आभूषण का साक्ष्य मिलता है।), इसके अलावा दमदमा तथा कैमूर पर्वत श्रृंखला में मोरहाना पहाड़ तथा लेखहीय प्रमुख स्थल हैं।
- मध्यप्रदेश में भीमबेटका (पाषाणकालीन चित्रकला के साक्ष्य), होशंगाबाद स्तित आदमगढ़ (यहाँ से पशुपालन का साक्ष्य)
- राजस्थान के भीलवाड़ा में स्थित बागोर (पशुपालन के प्राचीनतम साक्ष्य)
- गुजरात में नर्मदा, तापी और साबरमती नदियों के आसपास स्थित लंघनाज, बलसाना, हीरपुर
- पश्चिमबंगाल में दामोर के पास वीरभानपुर
- कर्नाटक के बेल्लारी जिले में संगनकल्लू
- तमिलनाडु में टेरी समूह

2.6.2 सूक्ष्म पाषाण उपकरण

इस काल में बने पाषाण औजार माइक्रोलिथ या सूक्ष्म-पाषाण कहलाते थे। इस समय के उपकरणों का निर्माण हल्के तथा मुलायम पत्थरों जैसे चर्ट, जस्पर इत्यादि से किया जाता था। ये उपकरण आकार में छोटे, धारदार और अत्यधिक उपयोगी थे, इन उपकरणों को अधिकांशतः ज्यामितीय रूप में बनाया जाता था जैसे-

त्रिकोणीय, विषमबाहु, चंद्राकार इत्यादि। इस युग में पाए गए प्रमुख उपकरण थे- ब्लेड, पॉइंट, ल्युनेट, ट्रेपीज, त्रिकोण आदि। ध्यातव्य रहे की इसके अलावा अभी भी तक्षणी, खुरचनी जैसी पुरापाषाण कालीन उपकरण उपयोग में लाये जा रहे थे।

इस युग में नए पाए गए इन उपकरणों की लम्बाई अधिकांशतः १ से ५ सेंटीमीटर तक होती थी और इनका प्रयोग लकड़ी के डंडे में फंसाकर, फेंककर मारने आदि के लिए भी किया जाने लगा था। इसी युग के दौरान तीर-कमान एवं प्रक्षेपास्त्र जैसी अवधारणा का विकास भी पाषाणकालीन मानवों के बीच दृष्टिगत होता है।

2.6.3 जीवनयापन और संस्कृति

इस युग का मानव भी पुरापाषाण काल के मानव की तरह ही जीवनयापन के लिए आखेट और खाद्यसंग्रह पर निर्भर था। इस युग का मानव गाय, बैल, बकरी, भैंसा आदि का शिकार कर अपनी क्षुधा को शांत करता था, पशुओं के मांस के अतिरिक्त वह तालाबों नदियों आदि से मछली का भी शिकार करने लगा था इसका साक्ष्य हम भीमबेटका से प्राप्त चित्रकला के माध्यम से पाते हैं। लेकिन फिर भी उसके जीवनयापन के तौर-तरीकों में कई तरह के महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों को देखा जा सकता है जैसे इस युग के मानव ने आग की खोज कर ली थी और वह अग्नि के उपयोग से भी परिचित हो चुका था अब आग की खोज के कारण मनुष्य ने भोजन को पकाकर खाना शुरू कर दिया। इस काल के अंत में हम पाते हैं कि मानव ने पशुपालन का कार्य भी प्रारंभ कर दिया था यह निश्चित रूप से मानव के बढ़ते हुए आजीविका के साधनों की ओर संकेत करता है। मध्यकालीन उपकरणों के आधार पर यह अनुमान भी स्पष्ट तरीके से लगया जा सकता है कि तत्कालीन मानव द्वारा छोटे- छोटे जानवरों का शिकार अब बहुतायत में किया जाने लगा। पुरापाषाण काल की अपेक्षा अब इस काल में आवास से सम्बंधित साक्ष्य कुछ अधिक मात्र में मिलना प्रारंभ होते हैं साक्ष्य बताते हैं कि इस काल के लोग भारत में पहाड़ियों पर निवास करने लगे थे साथ ही वे झोपड़ीनुमा ढांचों का निर्माण कर उनमें रहना सीख गए थे। कुछ एक स्थलों से हमें खम्बों को गाड़ने के साक्ष्य भी प्राप्त होते हैं (बागोर) इससे इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि वे झोपड़ी निर्माण में पेड़-पौधों का विशेष रूप से प्रयोग करने लगे थे।

साक्ष्यों के आधार पर इस बात का पता चलता है कि किसी न किसी रूप में इस काल में सामाजिक गतिविधियों की शुरुआत हो चुकी थी भीमबेटका से प्राप्त चित्रों के आधार पर यह अनुमान लगया जा सकता है कि किसी न किसी प्रकार की परिवार प्रथा का विकास इस युग में होने लगा था। इसके साथ ही शव-विसर्जन में दाह-क्रिया आरम्भ हो गई थी उत्खनन से जो अस्थि-पिंजर प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर वर्ग भेद का अनुमान भी लगाया जा सकता है जैसे कुछ शवों को पत्थर एवं हड्डियों के उपकरणों व आभूषणों के साथ दफनाया गया है तो कहीं स्त्री-पुरुष को एक साथ दफ़नाने के साक्ष्य (मेहदहा) प्राप्त हुए हैं। इन सब साक्ष्यों के आधार पर

यह अनुमान लगया जा सकता है कि संभवतः लोक जीवन के विषय में भी किसी न किसी प्रकार की भावना का उदय हो चुका था। उपरोक्त परिवर्तनों के बाद भी मध्यपाषाण काल का मानव अभी भी खाद्य संग्राहक की भूमिका में ही था न की खाद्य उत्पादक की। लेकिन बहुत जल्दी ही वह मानव समुदाय के उस काल-क्रम में प्रवेश कर जाता है जहाँ अर्थव्यवस्था का आधार खाद्य–उत्पादन अर्थात कृषि होने वाली थी।

चित्र सं 02: पाषाणकालीन उपकरण

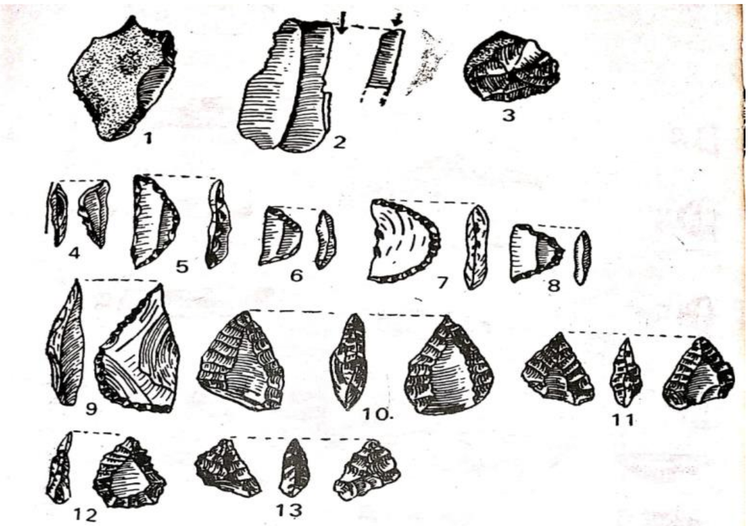

चित्र IX: पाषाण युग
1. वेधक; 2. तक्षणी; 3. अंगूठे के नाखून जैसी खुरचनी; 4 से 9. चंद्राकार क़िस्में; 10 से 13. दोमुखी नोकें

स्त्रोत: द्विजेन्द्रनारायण झा और कृष्णमोहन श्रीमाली, संस्करण 2002

2.7 पाषाणयुगीन चित्रकला

शैल-चित्रकला के प्रारंभिक साक्ष्य ऊपरी पुरापाषाण काल से ही मिलने प्रारंभ हो जाते हैं, लेकिन मध्यपाषाण और नवपाषाण स्थलों से चित्रकला के व्यापक स्तर पर साक्ष्य प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम इसका साक्ष्य मिर्जापुर से प्राप्त हुआ। धीरे-2 भारतीय उपमहाद्वीप के कई स्थलों से चित्रकला के प्रमाण मिले हैं। लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रमाण भीमबेटका से प्राप्त हुए हैं। प्रारंभिक चित्रों में (उच्च पुरापाषाण काल) भोजन संग्रह और शिकार से संबंधित अत्याधिक चित्र मिलते हैं, मध्यपाषाकालीन चित्रों में इन्हीं विषयों की प्रधानता रही है। लेकिन नवपाषाणकालीन चित्रों में, "कृषि और पशुपालन" से संबंधित चित्रों को महत्व प्रदान किया गया है। चित्रों के लिए जिन रंगों का प्रयोग किया गया है, उनमें मुख्य रंग हैं - हरा एवं लाल रंग, संभवत: खनिज पदार्थों से इन रंगों को प्राप्त किया जाता था। तथा पशुओं की चर्बी और प्राकृतिक गौद में मिलाकर इसे गाढा

बनाया जाता था, ब्रश के तौर पर जानवारों के बालों एवं लकड़ीयों का संभवत: प्रयोग किया जाता था। समकालीन चित्र तात्कालीन सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों को समझने में विशेष योगदान देते हैं, जैसे, आजीविका का आधार, शिकार, शिकार की योजना, अंतिमसंस्कार, मनोरंजन, परिवारप्रथा इत्यादि।

हालाँकि चित्र निर्माण के उद्देश्यों को लेकर विद्वानों के बीच सहमति नहीं है कुछ विद्वानों का मानना है की इन चित्रों का धार्मिक महत्व रहा होगा। क्योंकि जहाँ से चित्रकला के साक्ष्य मिले हैं, वहाँ से आवास के साक्ष्य नहीं मिले हैं। वहीं कुछ का मानना है कि चित्रों को बनाने के पीछे का उद्देश्य आने वाली पीढ़ी को चित्रों के माध्यम से प्रशिक्षित करना रहा होगा।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

- ❖ प्रश्न: मध्यपाषाण संस्कृति की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं बताइए।
- ❖ प्रश्न: पुरापाषाण और मध्यपाषाण कालीन संस्कृतियों के बीच अंतरों को रेखांकित कीजिये।
- ❖ प्रश्न: पाषाणकालीन चित्रकला के बारे में एक लेख लिखिए।
- ❖ प्रश्न: पाषाणकालीन उपकरणों के विकास पर निबंध लिखिए।

2.8 नवपाषाण काल (6000 ई.पू. 2000 से ई. पू. तक)

मनुष्य को एक विवेकशील और तार्किक प्राणी की संज्ञा दी जाती है इसके पीछे मुख्य वजह यह रही है कि अपनी उत्पत्ति के समय से ही मानव अपने विकास के लिए केवल प्रकृति पर निर्भर नहीं रहा वरन उसने स्वयं आगे बढ़कर अपने विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। दरअसल अगर सूक्ष्मता से मानव इतिहास का निरीक्षण किया जाए तो हम पाएंगे की सभ्यता के विकास की कहानी मनुष्य तथा प्रकृति के बीच चलने वाले संघर्ष की अनवरत कहानी है। मनुष्य ने प्राचीन काल से ही प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को एक चुनौती के रूप में लिया और उन्हें पूरी शिद्दत से सुलझाने का प्रयत्न किया है। मानव की इसी जिद से कालांतर में मानव सभ्यता का क्रमिक विकास हुआ और वह पुरापाषाण की अवस्था से होता हुआ नवपाषाण काल में प्रवेश कर गया। नवपाषाण काल के तिथिक्रम को लेकर इतिहासकार एकमत नहीं हैं। जहाँ तक भारतीय उपमहाद्वीप में कालक्रम संबंधी अंतर दिखायी पड़ते हैं, इस अंतर की व्याख्या निश्चित तौर पर करना मुश्किल है, लेकिन मध्यपाषाण संस्कृति के विकास क्रम तथा स्वभाविक विकास केन्द्र के रूप में नवपाषाण युगीन स्थलो को देखा जाता है।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार पूर्वपाषाण और नवपाषाण के बीच शताब्दियों का अंतर था। इस मत का खंडन करते हुए इतिहासकार स्मिथ कहते हैं कि प्रकृति में इस प्रकार की विभिन्नता नहीं हुआ करती और मानव जीवन के क्रमिक विकास में इस प्रकार की विच्छिनता की संभावना करना तर्कयुक्त प्रतीत नहीं होता।

2. 8.1 औजार

नवपाषाण काल की मुख्य विशेषता कृषि-कर्म तथा पशुपालन रहा है। वस्तुतः इस काल तक आते-आते पाषाणकालीन उपकरणों में गुणात्मक परिवर्तन दर्ज किये गए। अब मानव के औजार और अधिक परिष्कृत तथा सुन्दर हो गए थे। उपकरणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण औजार था बसूला या कुल्हाड़ी। इसका प्रयोग मूलतः जंगलों की कटाई तथा जमीन को कृषि योग्य बनाने के लिए किया जाता था। इस काल से हमें हार्वेस्टर के भी साक्ष्य मिलने लगते हैं।

नवपाषाणकालीन उपकरणों की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका पॉलिशदार होना था, अर्थात इन उपकरणों की धार समाप्त होने के बाद इन्हें पुनः रगडकर या घिसकर दुबारा उपयोग में लाया जा सकता था। इससे एक और जहाँ कच्चे माल की कम जरूरत पड़ती वहीं उपकरणों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता था। इसके साथ ही नवपाषाण कालीन मानव ने पहिये तथा घिर्री का आविष्कार भी कर लिया था जिसके चलते अब औजारों को आसानी से एक स्थान से दुसरे स्थान तक पहुँचाया जाना संभव हो गया था।

2.8.2 भौगोलिक वितरण

❖ **उत्तर पश्चिम भारत:** वर्तमान पाकिस्तान में अवस्थित बलूचिस्तान प्रांत के **मेहरगढ़** नामक स्थान से कृषि का प्राचीनतम साक्ष्य मिलता है। यहाँ से आरंभिक चरण में गेहूँ और जौ के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। आगे चलकर कपास की खेती के साक्ष्य भी मिलते हैं। संभवतः हड़प्पा के लोगों ने भी इन फसलों को उपजाने की कला मेहरगढ़ के लोगों से ही सीखी होगी।

❖ **कश्मीर क्षेत्र:** यहाँ के दो प्रमुख स्थल हैं **बुर्जहोम तथा गुफ्रकाल**। यहाँ की विशेषता में शामिल था- गर्तवास और हड्डी के उपकरणों का अधिकाधिक साक्ष्य। बुर्जहोम से मानव को कुत्ते के साथ दफनाने का साक्ष्य भी मिलता है।

❖ **विंध्यक्षेत्र:** यहाँ के कोल्डीहवा क्षेत्र से चावल की खेती का प्राचीनतम साक्ष्य प्राप्त होता है। इसके अलावा सौहगोरा, इमलीडीह, नरहन जैसे स्थान।

❖ **बिहार क्षेत्र:** सारण जिले के चिरांद क्षेत्र से हड्डियों के उपकरण बड़ी मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा मिट्टी से निर्मित कूबड़ वाले बैल और पक्षियों की मूर्तियाँ भी यहाँ से पायी गई हैं। इसके अलावा चेचर (वैशाली), सेनुआर (सासाराम- इस क्षेत्र से चना एवं मूंग की खेती का प्रथम साक्ष्य), तारादिव (गया) आदि प्रमुख क्षेत्र हैं।

- **दक्षिण भारत क्षेत्र:** आंध्र प्रदेश में नागार्जुनकोंडा, फलवाय और उतनूर, कर्नाटक में मस्की, ब्रह्मगिरी, पिकलीहल, संगेनकल्लु, टी. नरसीपुर, आदि। तथा तमिलनाडु से पायम्पल्ली। इसके अलावा भारत के अन्य राज्यों में प्रमुख स्थाल उड़ीसा से कुचई, झारखंड से बरुडीह, असम से देवजाली हार्डिंग, सारातारु और मरकंडाला आदि प्रमुख क्षेत्र हैं।

2.8.3 जीवनयापन और संस्कृति

पुरापाषाण और मध्यपाषाण काल की अपेक्षाकृत नवपाषाण काल को समझने के लिए इतिहास में अधिकाधिक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। साक्ष्यों के आधार पर इस काल में विभिन्न विविधताएँ दिखायी पड़ती हैं। जैसे- सभी क्षेत्रों में एकसमान फसलों का न पाया जाना, आवास निर्माण को लेकर क्षेत्रों के मध्य विविधताओं का पाया जाना, विकास क्रम में अंतर इत्यादि। उदहारण स्वरुप बिहार और कश्मीर से पत्थरों की अपेक्षा हड्डियों के उपकरण अधिक पाए गए हैं। वहीं फसलों के क्षेत्र में उत्तरी भारत में गेहूँ, बिहार में चना और मूँग, दक्षिणी भारत में रागी और कुल्थी, उत्तरप्रदेश में चावल आदि प्रमुख फसलें थी। इसके बावजूद सभी क्षेत्रों में कुछ सामान्य विशेषताएँ भी देखी जा सकती हैं। जैसे कृषि और पशुपालन पर निर्भरता, स्थायी निवास, बर्तनों का नियमित उपयोग आदि। इन विविधताओं का मुख्य कारण भौगोलिक परिस्थितयां रही होंगी। इस युग में जीवनयापन के तौर तरीके में क्रांतिकारी परिवर्तन देखा गया कृषि तथा पशुपालन जैसी विशेषता जीवन के आधार के रूप में स्थापित हुयी।

मानव ने हल तथा बैल की सहयता से कृषि- कार्य करने की शुरुआत कर दी थी इसका प्रमाण एक शिला पर दो बैलों की सहायता से हल चलते हुए कृषि करता कृषक का चित्र है लेकिन दुर्भाग्यवश अब तक उत्खनन में ऐसे किसी अवशेष की प्राप्ति नहीं हो सकी है। शायद इसका कारण संभवतः काष्ठ का बना हल हो। इस युग के मानव ने अनाज के पीसने के लिए चक्की का भी अविष्कार कर लिया था। निश्चित रूप से इसने खान-पान की संस्कृति को प्रभावित किया। अब केवल शिकार व खाद्य संग्रह पर मानव की निर्भरता नहीं रह गई बल्कि वह कृषि व पशुपालन में हाथ आजमाकर उन्होंने इस क्षेत्र में भी गुणात्मक और क्रांतिकारी परिवर्तन किये। मानव अब केवल उपभोक्ता नहीं बल्कि उत्पादक के तौर पर भी जाना जाने लगा, कृषि ने अर्थव्यवस्था एवं जीवन से संबधित अन्य पहलूओं को भी प्रभावित किया। इन सभी परिवर्तनों के कारण मानवीय गतिविधियों का भौगोलिक दायरा भी बढ़ने लगा; अब मानव नदी घाटियों से दूर बसावट करने लगा साथ अपेक्षाकृत अधिक दूरी के क्षेत्रों पर भी शिकार एवं कृषि की जाने लगी।

कृषि ने शिल्प को भी प्रभावित किया, उपकरणों के अतिरिक्त बर्तनों का प्रयोग इस युग की एक नियमित विशेषता के रूप में दिखायी पड़ता है। प्रारंभ में हाथ से बर्तनों का निर्माण किया जाता था आगे चलकर इन

बर्तनों का निर्माण संभवतः चॉक से भी किया जाने लगा। अर्थात इस समय का मनुष्य मृत्तिका-भांड-निर्माण से पूर्णतः परिचित हो गया था। वस्तुतः कृषि से खाद्य-सामाग्री में वृद्धि होने लगी थी और अब इसके संग्रहण के लिए बर्तनों की आवश्यकता महसूस होने लगी थी इसी कारण मानव ने मिट्टी के बर्तनों के निर्माण की कला को सृजित किया। इन परिवर्तनों का गहरा संबंध आवास एवं स्थायी आवास से भी था। साक्ष्यों से स्पष्ट है की लोग एक स्थान पर अपेक्षाकृत अधिक समय व्यतीत करते थे । लगभग सभी नवपाषाणकालीन स्थलों से आवास, चूल्हा, बर्तन एवं अनाज के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। यह सभी स्थायी जीवन का सूचक है। विभिन्न स्थलों के बीच वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था कि नहीं, यह बताना थोड़ा कठिन कार्य है। लेकिन कश्मीर और मेहरगढ़ में कीमती पत्थरों की उपलब्धता तथा कश्मीरी संस्कृति पर चीनी नवपाषाण संस्कृति का प्रभाव उभरते आपसी संपर्क की तरफ संकेत करता है। इसके अलावा श्रम-विभाजन के कारण भी व्यापार में वृद्धि हुई होगी।

विनिमय में मुद्रा का प्रचालन नहीं था इसके विपरीत लोग अनावश्यक वस्तुएं दूसरे को देकर अपनी आवश्यकता की वस्तुएं अर्जित कर लेते होंगे। साक्ष्यों से परिवार प्रथा, कार्यों का विभाजन, सामुदायिक विभाजन इत्यादि के संकेत भी मिलते हैं। धार्मिक गतिविधियों के संदर्भ में दावे से कुछ भी कहना पाना थोड़ा मुश्किल प्रतीत होता है। फिर भी अंतिम संस्कार से संबधित साक्ष्य, कूबड़ वाले बैल की उपस्थिती राख के टीलों का प्रमाण जैसी गतिविधियाँ धार्मिक संस्कारों की तरफ संकेत करती हैं।

2.9 सारांश

अब तक हमने उपर्युक्त अध्याय में पूरे पाषाणकाल का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर लिया है। और अब हम जानते हैं कि किस प्रकार मानव और उसकी सभ्यता का क्रमिक विकास हुआ है। इसके साथ ही हमने उपरोक्त अध्याय में मानव द्वारा की जाने वाली प्रगति के बारे में भी जानकारी हासिल करी है। उपरोक्त अध्याय का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि इस पूरे काल के दौरान मानव सभ्यता ने कई क्रांतिकारी परिवर्तनों को दर्ज किया और नए-नए अविष्कारों के माध्यम से मानव सभ्यता को उन्नति के मार्ग पर प्रशस्त किया। तब से अब तक क्रमिक विकास के क्रम में मानव ने सभ्यता के सोपान पर नित्य नयी ऊँचाइयों को छुआ है जिसके परिणामस्वरुप आज का मानव चाँद पर अपनी बस्ती बसाने की सोच रहा है।

चित्र सं 03: प्रागैतिहासिक महत्त्व के कुछ प्रमुख स्थल और क्षेत्र

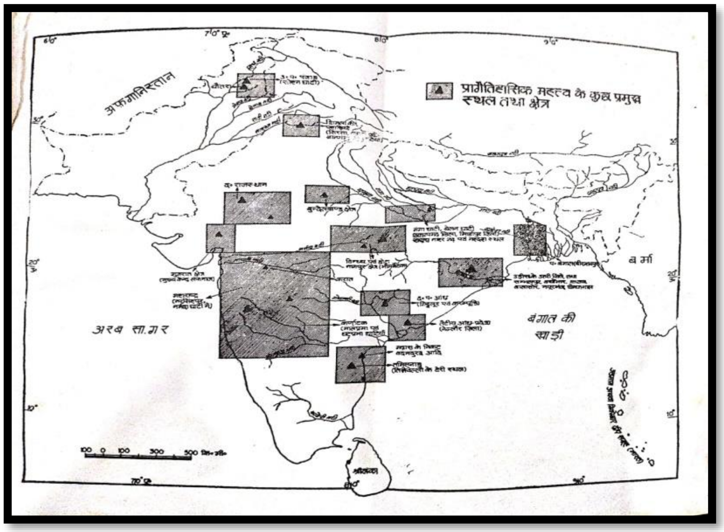
प्रागैतिहासिक महत्त्व के कुछ प्रमुख स्थल तथा क्षेत्र
अफगानिस्तान
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
बर्मा
श्रीलंका
100 0 100 300 500 कि॰ मी॰
70° पू॰
80°
90°
30°
20°
10°

स्त्रोत: द्विजेन्द्रनारायण झा और कृष्णमोहन श्रीमाली, संस्करण 2002

चित्र सं 03: आध्य -ऐतिहासिक भारत के कुछ महत्वपूर्ण स्थल

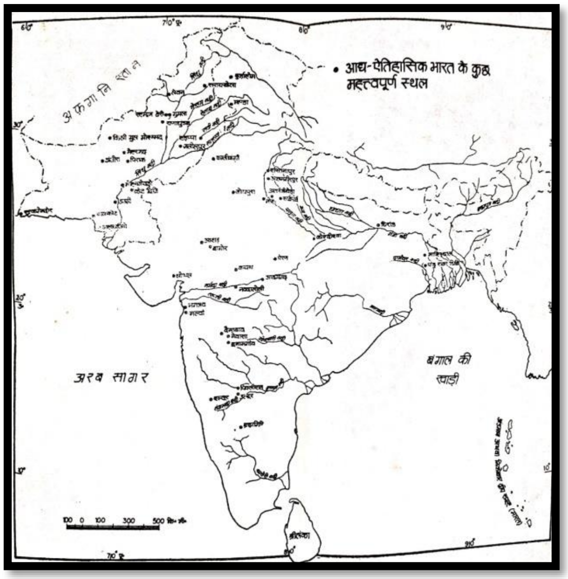
आद्य-ऐतिहासिक भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण स्थल
अफगानिस्तान
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
श्रीलंका
100 0 100 300 500 कि॰ मी॰
70° पू॰
80°
90°
30°
20°
10°

स्त्रोत: द्विजेन्द्रनारायण झा और कृष्णमोहन श्रीमाली, संस्करण 2002

2.10 तकनीकी शब्दावली

माइक्रोलिथ - सूक्ष्म-पाषाण (छोटे-छोटे पत्थर के हथियार)

होलोसीन - (अद्यतन) होलोसीन की समय सीमा 12,000 ई० पू० से शुरू होकर वर्तमान तक जारी है।

शैल-चित्रकला- पत्थर की शिलाओं पर की गयी चित्रकारी

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- प्राचीन भारत का इतिहास, द्विजेन्द्रनारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली, संस्करण-2002
- प्राचीन भारत का इतिहास, श्रीनेत्र पांडे, संस्करण-2009
- प्रारंभिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, संस्करण-2010
- प्राचीन भारत का इतिहास, आर. के. परुथी और डॉ० दीपा भंडारी, संस्करण-2009
- https://mdu.ac.in/UpFiles/UpPdfFiles/2020/Jan/Ancient%20Society-final.pdf
- https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/64970/2/Unit3.pdf

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पुरा पाषाणयुग की विशेषताओं पर चर्चा कीजिए।
2. नव पाषाणयुग की विशेषताओं पर चर्चा कीजिए।

इकाई तीन- सिन्धु सभ्यता, विस्तार, क्षेत्र, कालक्रम तथा उत्पत्ति एवं विकास

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 सिन्धु सभ्यता का परिचय
3.4 सिन्धु सभ्यता की जानकारी के स्रोत
3.5 सिन्धु सभ्यता का विस्तार तथा क्षेत्र
3.6 सिन्धु सभ्यता का कालक्रम
  3.6.1 जान मार्शल का सुझाया कालक्रम
  3.6.2 मार्टिमर व्हीलर का सुझाया कालक्रम
  3.6.3 सी.एल. फैब्री का सुझाया कालक्रम
  3.6.4 फादर हेरास का सुझाया कालक्रम
  3.6.5 डी.पी. अग्रवाल का सुझाया कालक्रम
3.7 सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति तथा विकास
  3.7.1 प्रथम विचारधारा
  3.7.2 द्वितीय विचारधारा
  3.7.3 तृतीय विचारधारा
  3.7.4 चतुर्थ विचारधारा
  3.7.5 पंचम विचारधारा
3.8 साराशं
3.9 तकनीकी शब्दावली
3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सिन्धु सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है।इस सभ्यता की सर्वप्रथम जानकारी 20वीं सदी के तीसरे दसक में तब हुई जब श्री दयाराम साहनी ने हड़प्पा नामक स्थान पर खुदाई की और श्री राखालदास बनर्जी ने मोहनजोदड़ो नामक स्थान का उत्खनन किया। शीघ्र ही जो साक्ष्य प्रकाश में आये , उनके आधार पर पुराविदों ने भारत में एक अत्यंत प्राचीन सभ्यता होने की पुष्टि की। इस इकाई में हम इस सब पर चर्चा करेंगे।

सिन्धु सभ्यता को उद्घटित हुए आज प्रायः नौ दसक बीत चुके हैं,और अब भी सिन्धु सभ्यता के नये-नये स्थल प्रकाश में आ रहे हैं तथा सिन्धु सभ्यता का विस्तार निरंतर फैल रहा है।इस सभ्यता के अधिकतर लगभग 250 स्थल सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों के मैदानों में स्थित हैं और यही क्षेत्र सिन्धु सभ्यता का केन्द्र स्थल है।हमें उत्खनन में अनेक सूदूरवर्ती क्षेत्रों में भी इस सभ्यता के स्थल मिले हैं,यह संभवतः सिन्धु नागरिकों की बढ़ती हुई आर्थिक आवश्यकताओं एवं जनसंख्या वृद्धि का परिणाम रहा होगा। इस इकाई में इन सभी स्थलों से आपका परिचय कराया जायेगा।

सिन्धु सभ्यता एक अत्यंत प्राचीन सभ्यता है , हमें इस सभ्यता के लोगों द्वारा प्रयुक्त लिपि के साक्ष्य उपलब्ध हैं लेकिन इसे पढ़ने में अभी तक कोई भी पुरालिपिशास्त्री सफल नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में इस सभ्यता के सही कालक्रम को जानने के लिए हमारे पास विभिन्न पुराविदों द्वारा प्रस्तुत अध्ययनों का ही सहारा है। इन अध्ययनों में से कुछ समकालीन सभ्यताओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित हैं तो कुछ सिन्धुघाटी से प्राप्त अवशेषों का वैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा विश्लेषण पर।इन सब पर भी इस इकाईपर विचार किया जायेगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य सिन्धु सभ्यता के प्रारंभिक ज्ञान का परिचय देना है, साथ ही सिन्धु सभ्यता के विस्तार , क्षेत्र तथा कालक्रम की जानकारी उपलब्ध कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- सिन्धु सभ्यता का सामान्य परिचय
2- सिन्धु सभ्यता का विस्तार-क्षेत्र
3- सिन्धु सभ्यता का कालक्रम

1.3 सिन्धु सभ्यता का परिचय

सिन्धु सभ्यता की जानकारी से पूर्व विद्वानों का यह मानना था कि भारत में मानव सभ्यता आर्यों के साथ ही प्रारंभ हुई थी, लेकिन सिन्धु घाटी के उत्खनन के उपरांत यह भ्रम दूर हो गया और भारत में मानव सभ्यता का प्रारंभ आर्यों के आगमन से भी अनेक शताब्दियों पूर्व स्वीकार्य हो गया। सन् 1875 में अलैक्जैण्डर कनिंघम को हड़प्पा सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए जिनमें लिपियुक्त मुहर और भवन के अवशेष सम्मिलित थे। सन 1921 में दयाराम साहनी ने हड़प्पा की खुदाई की और इस सभ्यता के अवशेषों को पुराविदों के समक्ष रखा, लगभग इसी समय सन् 1922 में राखालदास बनजी ने मोहनजोदड़ो की खुदाई की और हड़प्पा से मिलते जुलते साक्ष्य प्रकाशित किये। यद्यपि दोनों स्थलों की दूरी लगभग 485 किलोमीटर है तथापि दोनों स्थलों से प्राप्त सामग्री में अद्भुत समानता है। सन् 1928 एवं 1933 में माधोस्वरूप वत्स ने हड़प्पा में, 1946 में व्हीलरने मोहनजोदड़ो में उत्खनन किया और इस सभ्यता से संबंधित अनेक जानकारियां उद्घाटित कीं। आगे चलकर एन. जी. मजूमदार, मैके , एस. आर. राव, डेल्स, फेयरसर्विस इत्यादि पुराविदों ने सिन्धु सभ्यता के विभिन्न स्थलों में उत्खनन कार्य करवाये और हड़प्पा सभ्यता की अनेक जानकारियां प्रस्तुत कीं। क्योंकि यह सभ्यता सर्वप्रथम हड़प्पा में खोजी गयी थी, अतः कुछ विद्वान इसे हड़प्पा सभ्यता के नाम से पुकारना पसंद करते हैं जबकि कुछ विद्वान सभ्यता के अधिकांश लगभग 250 स्थलों का सिन्धु घाटी में सकेन्द्रण के कारण इसे सिन्धु सभ्यता पुकारना अधिक सही मानते हैं।दोनों ही नाम प्रचलित हैं और एक ही सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं। सिन्धु सभ्यता को प्राचीनता के आधार पर मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताओं के समकक्ष रखा जा सकता है।

3.4 सिन्धु सभ्यता की जानकारी के स्रोत

इस अत्यधिक विस्तृत संस्कृति के विषय में जानकारी के स्रोत ,पुराविदों द्वारा किये गये उत्खनन एवं उनसे प्राप्त तत्संबंधित अवशेष तथा साक्ष्य हैं,जिनका विश्लेषण कर पुराविदों एवं अन्य विद्वानों ने इस सभ्यता के संबंध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध करायी है। सिन्धु सभ्यता से भारी मात्रा में , मृण्मूर्तियां ,धातु की मूर्तियां ,मुद्राऐं ,विभिन्न उपकरण,आभूषण,दैनिक जीवन की वस्तुऐं इत्यादि प्रकाश में आये हैं, और इनके आधार पर सिन्धु संस्कृति के विषय में अध्ययन किया जा सकता है।

हम यह जानते हैं कि सिन्धु सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी और हमें उत्खनन से ऐसे विभिन्न नगर प्रकाश में आये हैं । इन नगरों में मोहनजोदड़ो , हड़प्पा , कालीबंगन ,सूरकोटडा ,बनावली ,लोथल ,रंगपुर ,धौलावीरा इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है।इन नगरों का नगर-विन्यास हमें तत्कालीन जीवन के विषय में अनेकानेक महत्वपूर्ण सूचनाऐं प्रस्तुत करता है, जैसे, उस काल के नागरिकों द्वारा उपयोग की जाने वाली भौतिक सुविधाऐं, उनका रहन-सहन ,नगरों में निर्मित सार्वजनिक महत्व के स्थल, उनका प्रयोजन इत्यादि। नगरों में निर्मित भवन भी इस दिशा में यथेष्ठ प्रकाश डालते हैं। हमें जानकारी होती है कि सिन्धु

निवासियों के भवनों में प्रयुक्त निर्माण सामग्री क्या थी , उनके भवनों में कक्ष योजना किस प्रकार निर्धारित की गयी थी ,भवनों में स्थान की योजना किस प्रकार बनायी गयी थी,विभिन्न भवनों में प्राप्त अंतर उनके सामाजिक ढांचे में भी प्रकाश डालते हैं,सफाई-व्यवस्था के संदर्भ में सिन्धु नागरिक कितने जागरूक थे ,उन्होंने नगर में सफाई व्यवस्था के लिए सुनियोजित नालियों एवं कूड़ा करकट डालने के लिए मिट्टी के बढ़े बरतनों का उपयोग किया था , नगर में जल वितरण का भी उत्कृष्ट प्रबन्ध दिखता है, मोहनजोदड़ो के प्रायः प्रत्येक भवन में कूओं का प्रावधान मिलता है, इसी प्रकार चौड़ी-चौड़ी सड़कें तथा सुनियोजित गलियां भी यहां के नागरिक जीवन का अच्छा परिचय देती हैं । उत्खनन में नगर तथा भवनों से प्राप्त साक्ष्यों का अध्ययन कर पुराविदों ने इस सभ्यता के विषय में व्यापक जानकारी उपलब्ध करायी है।

उत्खनन से जो साक्ष्य मिले हैं उनके आधार पर हम सिन्धु नागरिकों के भोजन के विषय में भी निश्चित रूप से कह सकते हैं। सिन्धु नागरिक सामिष और निरामिष दोनों ही प्रकार का भोजन करते थे, उनके भोजन में दुग्ध पदार्थों के अलावा खाद्यान्न के रूप में मुख्यतः गेहूं और जौ सम्मिलित था यद्यपि रंगपुर से धान की प्राप्ति भी हुई है , अवशेषों, मुद्राओं तथा मृण्मूर्तियों में अंकित चित्रों के आधार पर सिन्धु सभ्यता में गाय ,भैंस ,हाथी, ऊँट, भेड़ ,बकरी, सूअर ,कुत्ता, हिरण, चूहा ,नेवला, सांड, खरगोश, बन्दर, शेर , रीछ, गैंडा, कछुआ, मछली इत्यादि के साक्ष्य मिले हैं, इनमें से अनेक जानवरों का मांस भोजन हेतु भी प्रयुक्त किया जाता रहा होगा।

सिन्धु सभ्यता कांस्ययुगीन सभ्यता है और कांस्य युग की अनेक कलाकृतियां यहां से प्राप्त हुई हैं। उत्खनन से जो धातुऐं प्रकाश में आयीं हैं उनमें सोना ,चांदी , सीसा , तांबा ,कांसा प्रमुख हैं, यहां लोहे के प्रयोग की कोई जानकारी नहीं मिलती है । अन्य सामग्री में हमें सीपियों, हाथी दांत तथा विभिन्न जानवरों की हड्डियों का प्रयोग मिलता है।वस्त्र के लिए सिन्धु नागरिक कपास और ऊन का प्रयोग करते थे। मुद्राओं एवं मृण्मूर्तियों में अंकित चित्र उनके वस्त्र विन्यास, केश विन्यास आदि पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।सिन्धु घाटी के उत्खनन से पर्याप्त मात्रा में आभूषण भी मिले हैं, हम कह सकते हें कि सिन्धु सभ्यता में स्त्रियां एवं पुरूष दोनों ही आभूषणों के शौकीन थे और दोनों ही हार , कंगन ,अंगूठी का प्रयोग करते थे जबकि कमरबन्द ,नाक के कांटे ,बुंदे ओर नूपुर का प्रयोग केवल स्त्रियां करती थीं। अमीर वर्ग के आभूषण सोने , चांदी ,मोतियों और हाथी दांत के होते थे जबकि निर्धन और गरीब लोगों के आभूषण सीपियों , हड्डियों ,तांबे और कम कीमत के पत्थरों से निर्मित होते थे। सौन्दर्य प्रसाधन के भी अनेक उपकरण प्रकाश में आये हैं। सिन्धु नगरों से प्राप्त संरचनाओं, मुहरों एवं मृण्मूर्तियों के अध्ययन से सिन्धुकालीन सामाजिक जीवन ,धार्मिक जीवन एवे आर्थिक जीवन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है, इनके विषय में अन्य इकाइयों में विस्तार से चर्चा की जायेगी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. सिन्धु सभ्यता एक ग्रामीण सभ्यता थी।

2. सिन्धु सभ्यता में लोगों की प्रमुख वेषभूषा जानवरों की खाल से बने कपड़े थे।

3. सिन्धु नागरिक सफाई व्यवस्था के प्रति अत्यधिक जागरूक थे।

3.5 सिन्धु सभ्यता का विस्तार तथा क्षेत्र

जैसे-जैसे पुराविद नवीन स्थलों का उत्खनन कर रहे हैं ,वैसे-वैसे सिन्धु सभ्यता का विस्तार एवं प्रसार क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में यह सभ्यता आधुनिक पाकिस्तान से भी आगे तक विस्तृत हो चुकी है। सिन्धु सभ्यता पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा तक लगभग 1500 किलोमीटर तथा उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा तक लगभग 1200 किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तृत है।बीसवीं सदी के सातवें दसक के प्रारंभ तक लगभग 250 स्थलों की गिनती की गयी थी किन्तु हाल के एक अनुमान के अनुसार सिन्धु सभ्यता के उत्खनित स्थलों की संख्या अब 1000 को पार कर गयी है और उल्लेखनीय है कि इनमें से अधिकांश लगभग दो-तिहाई स्थल वर्तमान भारतीय क्षेत्र में स्थित हैं।सिन्धु सभ्यता के स्थलों का संकेन्द्रण सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों के मैदानों में है और इस क्षेत्र में हमें लगभग 250 स्थल विद्यमान मिलते हैं।

पिछले दसकों में हुए उत्खनन से अनेक महत्वपूर्ण स्थलों की जानकारी प्रकाश में आयी है। इनमें से एक स्थल उत्तरी-पूर्व अफगानिस्तान में ओक्सस के दक्षिणी मैदानों में स्थित शौर्टूघई है, इस स्थल में शायद बद्ख्शाँ की खानों से प्राप्त लेपिस लजुली का व्यापार और अन्य चीजों जैसे तांबे आदि का व्यापार भी होता था।इसी प्रकार सौराष्ट्र में रोजदी तथा कच्छ क्षेत्र में देसालपुर को उत्खनित किया गया है। दक्षिणी सिन्ध तथा बलूचिस्तान में अल्लाहदीनों एवं लासबेला के निकट बालाकोट की खोज भी महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। इनमें से अनेक स्थलों की प्राप्तियां इन्हैं परिपक्व हड़प्पा सभ्यता के अंतर्गत रखती हैं। रोपड़ और आलमगीरपुर के अवशेष इस सभ्यता का पूर्व दिशा में दोआब क्षेत्र की ओर विस्तार को बतलाते हैं

सिन्धु सभ्यता के दो प्रमुख नगरों मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के अलावा वर्तमान में अनेक छोटे-छोटे स्थलों का उत्खनन भी हुआ है। ऐसे स्थलों को शासन के प्रांतीय केन्द्रों के रूप में माना जा सकता है। ऐसा ही एक स्थल कालीबंगन है, जिसका नगर-विन्यास बिल्कुल हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसा ही है ।लोथल नामक स्थल भी महत्वपूर्ण है, यह गुजरात में खंबात की खाड़ी पर स्थित है। मोहनजोदड़ो से लगभग 130 किलोमीटर दक्षिण में विद्यमान चन्हुदाड़ो भी महत्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा। इसी प्रकार बनवाली का उल्लेख भी किया जा सकता है। हाल ही के वर्षों की एक महत्वपूर्ण खोज धौलावीरा नामक स्थल है, जो सिन्धु संस्कृति के तीसरे

बढ़े केन्द्र के रूप में प्रकाश में आया है।कुछ अन्य महत्वपूर्ण स्थलों के अंतर्गत कोटदीजी, रोजदी, देसालपुर,रंगपुर,डाबरकोट, बालाकोट इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है।

सिन्धु सभ्यता के कुछ स्थल पश्चिम दिशा में बलूचिस्तान में मकरान समुद्र तट के पास प्राप्त होते हैं, इनमें सबसे दूर स्थित स्थल आधुनिक पाकिस्तान-ईरान सीमाप्रांत में स्थित सुत्कजैंडोर है, यह स्थल एक व्यापारिक चौकी या बंदरगाह रहा होगा। सिन्धु के पूर्व में कच्छ के समीप समुद्रतट के आसपास भी स्थल मिलते हैं, इनमें सबसे महत्वपूर्ण केम्बे की खाड़ी में विद्यमान लोथल नामक स्थल है।

पूर्व दिशा में भी सिन्धु सभ्यता का व्यापक प्रसार दिखता है। यहां हमें मेरठ जिले के आलमगीरपुर नामक स्थान में सिन्धु सभ्यता के अवशेष मिले हैं।इस संदर्भ में शाहजहाँपुर जनपद का हुलास नामक स्थल भी महत्वपूर्ण है , यहां हुआ उत्खनन भी सिन्धु सभ्यता के यहां तक के प्रसार को दर्शाता है।उत्तर दिशा में भी सिन्धु संस्कृति पर्याप्त विस्तृत थी, उत्तर दिशा में पहले इस सभ्यता की सीमा पंजाब में स्थित रोपड़ नामक स्थल तक मानी थी परंतु अब जम्मू-काश्मीर राज्य में स्थित मांड तक इस सभ्यता के स्थल मिल चुके हैं।दक्षिण दिशा में भी सिन्धु सभ्यता का व्यापक प्रसार हुआ था।पूर्व की खोजों के अनुसार पहले इस सभ्यता की दक्षिणी सीमा गुजरात प्रांत में स्थित एक छोटी सी नदी किम के समीप स्थित भगत्रव नामक स्थल तक मानी जाती थी लेकिन बाद के उत्खनन ने सभ्यता की सीमा महाराष्ट्र राज्य के अहमदनगर जिले में स्थित दैमाबाद तक विस्तृत कर दी है।

इस प्रकार सिन्धु सभ्यता का सम्पूर्ण क्षेत्र एक विशाल त्रिभुज की भांति है और लगभग 13 लाख वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र समेटे हुए है। यह क्षेत्रफल आधुनिक पाकिस्तान से तो बढ़ा है ही प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया के संयुक्त क्षेत्रफल से भी बढ़ा है।

सिन्धु सभ्यता के इस विस्तृत विस्तार को देखने के बाद भी लिपि की अनभिज्ञता हमें सिन्धु-संस्कृति के प्रारम्भिक ज्ञान तक ही सीमित कर देती है। यह जानान अत्यंत कठिन है कि सिन्धु सभ्यता की कौन-कौन सी बस्तियां एक निश्चित समय में समकालीन थीं।रेडियो कार्बन परीक्षण से पता चलता है कि कच्छ,सौराष्ट्र और दोआब क्षेत्र की बस्तियां सिन्धु घाटी से लोगों के बाद के आवागमन को बतलाती हैं। शायद सिन्धु नागरिकों का पूर्व दिशा और दक्षिण दिशा की ओर प्रथम प्रसरण का कारण उनकी बढ़ती जनता की आर्थिक आवश्यकताऐं थीं जबकि द्वितीय प्रसरण के पीछे सिन्ध क्षेत्र में आर्थिक समस्याऐं और सांस्कृतिक अध:पतन, मिट्टी की उर्वरता में कमी तथा सिन्धु क्षेत्र में नये लोगों का आगमन था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. सिन्धु सभ्यता का क्षेत्रफल लगभग कितना है?

2. सिन्धु सभ्यता के सुदूरतम पश्चिम में स्थित स्थल का नाम बताइये।

3.6 सिन्धु सभ्यता का कालक्रम

सिन्धु सभ्यता की तिथि के संबंध में व्यापक विवाद रहा था, लेकिन वैज्ञानिक प्रविधियों के प्रयोग के उपरांत पुराविद् सिन्धु सभ्यता का सही कालक्रम निर्धारित करने में सफल हुए हैं। सिन्धु सभ्यता की तिथि के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विचारों का संक्षिप्त परिचय जानना ठीक होगा।

3.6.1 जान मार्शल का सुझाया कालक्रम

जान मार्शल जैसे विद्वानों के अनुसार सिन्धु सभ्यता तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व की सभ्यता है।इन विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता का प्राचीन मेसोपोटामिया के नगरों के साथ संबंधों और इन संबंधों के फलस्वरूप आदान-प्रदान की गयी वस्तुओं के आधार पर तिथि निर्धारण का प्रयास किया है।

3.6.2 मार्टिमर व्हीलर का सुझाया कालक्रम

मार्टिमर व्हीलर ने भी सिन्धु नगरों से पाये गये पुरावशेषों का पश्चिम के पुरावशेषों के साथ तुलनात्मक अध्ययन द्वारा काल निर्धारण का प्रयास किया और 2500 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व सिन्धु सभ्यता का काल निर्धारित किया।

3.6.3 सी.एल. फैब्री का सुझाया कालक्रम

सी.एल. फैब्री नामक पुरातत्ववेत्ता ने मोहनजोदड़ो में पाये गये एक बरतन पर अंकित सुमेरो-बेबिलोनियन लेख के आधार पर सिन्धु सभ्यता का काल 2800 ईसा पूर्व से 2500 ईसा पूर्व में निर्धारित किया है।

3.6.4 फादर हेरास का सुझाया कालक्रम

फादर हेरास नामक विद्वान ने नक्षत्रीय गणना के आधार पर सिन्धु घाटी की सभ्यता का काल 5600 ईसा पूर्व तक बतलाया है।

3.6.5 डी.पी. अग्रवाल का सुझाया कालक्रम

वर्तमान में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रविधियों का प्रयोग करते हुए डी.पी. अग्रवाल ने कार्बन-14 तिथि निर्धारण केआधार पर सिन्धु सभ्यता का कालक्रम 2300 ईसा पूर्व से 1750 ईसा पूर्व निर्धारित किया है, वर्तमान में डॉ. अग्रवाल द्वारा निर्दिष्ट तिथिक्रम को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है।

यह सत्य है कि 1750 ईसा पूर्व तक सिन्धु सभ्यता के प्रमुख नगरों में सभ्यता का अवसान हो गया था, लेकिन अन्य स्थलों में सभ्यता विद्यमान थी यद्यपि वह ह्रासोन्मुख हो चुकी थी। गुजरात में स्थित सिन्धु सभ्यता का एक प्रमुख नगर रंगपुर अभी भी विकास कर रहा था और इस स्थल में हमें निरेतर लगभग 800

ईसा पूर्व तक सभ्यता के साक्ष्य मिलते हैं। यदि समग्र रूप में सिन्धु सभ्यता के कालक्रम को देखा जाय और विभिन्न उत्खननों ,विद्वानों ,पुराविदों एवं आधुनिक अनुसंधानों का अनुशीलन किया जाय तो सिन्धु संस्कृति के संम्पूर्ण काल को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

क- सिन्धु सभ्यता का आरंभिक काल -2500 ईसा पूर्व से 2250 ईसा पूर्व
ख- सिन्धु सभ्यता का विकसित काल -2250 ईसा पूर्व से 1950 ईसा पूर्व
ग- सिन्धु सभ्यता का ह्रासोन्मुख काल -1950 ईसा पूर्व से 1750 ईसा पूर्व

3.7 सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति तथा विकास

सिन्धु सभ्यता के उद्गम के विषय में पुरावशेषों की अपूर्णता और लिपि सम्बन्धित अज्ञानता के कारण किसी निश्चित विचार को ग्रहण करना अभी संभव नहीं है , फिर भी सभ्यता के उद्गम के विषय में कुछ विचारधाराऐं महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं।

3.7.1 प्रथम विचारधारा

एक विचारधारा के अनुसार, सिन्धु संस्कृति और कुल्ली-नाल तथा झोब संस्कृतियों के मध्य निश्चित सम्बन्ध हैं। दक्षिण-मध्य बलूचिस्तान तथा लासबेला में नाल तथा प्रारंभिक कुल्ली संस्कृति के अवशेष प्राप्त होते हैं। झोब संस्कृति, सुलेमान पहाड़ियों के पश्चिम में फली-फूली थीं। ये संस्कृतियां चतुर्थ या तृतीय सहस्राब्दी ईसा पूर्व में अस्तित्व में थीं। इन संस्कृतियों के मध्य सम्बन्ध बैठाने के लिए कुछ निश्चित प्रमाण दिये जाते हैं,जैसे- सिन्ध में बाद के काल में कृषि का होना यह दर्शाता है कि बलूचिस्तान और दक्षिणी अफगानिस्तान की कुछ खेतिहर जनजातियां सिन्ध तक प्रवेश कर गयीं थीं। इसके अलावा उत्तर-पूर्वी सिन्ध से प्राप्त कुछ प्रमाण यह दर्शाते हैं कि प्रारंभिक हड़प्पा सभ्यता की स्थानीय शैली, उत्तरी तथा मध्य बलूचिस्तान से प्राप्त की गयी थी। ये सभी सभ्यताऐं नदियों के किनारे पल्लवित हुयीं थी और सभी कृषि पर आधारित थीं, इसके अलावा इस बात के भी प्रमाण हैं कि प्रारंभिक हड़प्पा बस्तियों ने बलूचिस्तान तथा झोब की संस्कृति के साथ एक लम्बे काल तक स्थिर संबंध रखे थे।दक्षिण-पश्चिम ईरान तथा कुल्ली सभ्यता के मृणभाण्डों तथा अन्य तथ्यों में समानताऐं हैं, इसके अलावा ईरानी तथा कुल्ली दोनों ही प्रकार के साक्ष्य सूरकोटडा से प्राप्त हुए हैं, धातुकार्मिक दक्षता भी कुल्ली-नाल तथा हड़प्पा सभ्यता में समानता रखती हैं। झोब संस्कृति में मातृदेवी तथा लिंग के अवशेष भी प्राप्त होते हैं तथा साथ ही सांड आकृति जोकि सिन्धु सभ्यता में दिखाई देती है, झोब संस्कृति में एक प्रिय विषय या चिह्न के रूप में प्राप्त होती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निश्चित नहीं किया जा सकता है कि हड़प्पा सभ्यता का उद्गम बलूचिस्तान की सभ्यता से है।कोटदीजी से प्राप्त प्रारंभिक मृणभाण्ड, बलूचिस्तान के कृषक समुदाय के

मृणभाण्ड तथा हड़प्पा से प्राप्त मृणभाण्डों से साम्यता रखते हैं जबकि कोटदीजी से ही प्राप्त बाद के मृणभाण्ड हड़प्पा के मृणभाण्डों से साम्यता रखते हैं इसी प्रकार कालीबंगन की खुदाई दर्शाती है कि वहां हड़प्पा काल से भी पूर्व बस्तियां थीं और उनके मृणभाण्ड आमरी और कोटदीजी से प्राप्त मृणभाण्डों से साम्यता रखते हैं जबकि कालीबंगन के बाद के भवन निश्चिततः हड़प्पा सभ्यता के ही अंग थे ।उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह मानना कठिन हो जाता है कि कि हड़प्पा सभ्यता, कुल्ली-नाल या झोब संस्कृतियों से विकसित हुई थी।

3.7.2 द्वितीय विचारधारा

उद्गम के संबंध में एक दूसरे विचार के अनुसार हड़प्पा सभ्यता को आमरी सभ्यता की प्रच्छाया बताया गया है। इस विचार के अनुसार आमरी में पहले शहरी सभ्यता उत्पन्न हुई और फिर मानव धीरे-धीरे अन्य बस्तियों की खोज करते आगे बढ़ा। इस संदर्भ में पुराविद् कासल ने पूर्व हड़प्पा काल से बाद के हड़प्पा काल तक भौगोलिक स्तरीकरण निश्चित किया हैं।आमरी बस्तियों में मृणभाण्ड बिना चाक की सहायता के हाथ से बने हुए तथा धातु चिह्न अत्यल्प हैं।,किंतु बाद के स्तर में अलंकृत भाण्ड तथा बिना पकी हुयी मिट्टी की ईंटों से बने भवन मिलते हैं , इसके अलावा खुदाई से पता चलता है कि आमरी सभ्यता की कुछ विशिष्ठ परंपराऐं, हड़प्पा सभ्यता की परंपराओं से मेल खाती हैं। उपरोक्त ज्ञान के बावजूद भी हड़प्पा सभ्यता और प्रारंभिक आमरी सभ्यता के बीच संबंध नहीं बैठाया जा सकता है, हांलाकि आमरी के मृणभाण्ड हड़प्पा के नगर प्राचीर के चारों तरफ पाये गये हैं ।मोहनजोदड़ो के निचले स्तर में अवश्य बलूचिस्तान की सभ्यता का प्रभाव मिलता है ना कि आमरी सभ्यता का, अतः ताथ्यिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि आमरी सभ्यता से हड़प्पा सभ्यता का विकास नहीं हुआ था।

3.7.3 तृतीय विचारधारा

उद्गम से संबधित एक अन्य विचार के अनुसार , हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त संरचनाओं का संबंध ईसा पूर्व सातवीं सहस्राब्दी में अनातोलिया के कैटल हुयुक तथा बलूचिस्तान के जैरिको और साथ ही सुमेरिया के उदाहरणों के साथ संबंधित किया जा सकता है। अनातोलिया नगर में घुसपैठियों से रक्षा के लिए नगर के चारों ओर सीड़ियों की श्रृंखला सी उठा दी गयी है। इस नगर के लोग मृणभाण्डों का प्रयोग जानते थे तथा प्रस्तर प्रतिमाओं की पूजा करते थे।जेरिको में एक अति विशिष्ठ प्रस्तर प्राचीर से घिरा नगर मिला है। हांलाकि कैटल हुयुक और जैरिको के लोग प्रारंभिक कृषक समुदाय से संबंधित थे फिर भी उन्होंने नागरिक जीवन के कुछ निश्चित अंग विकसित कर लिए थे। सुमेरियाइयों ने मंदिर तथा मिट्टी की ईंटों से बने जिग्गुरात बनाये जो कि कृत्रिम पर्वतों की भांति दिखते थे। इसी प्रकार सिन्धु सभ्यता के स्थलों के भी दो भाग हैं , एक

शहर का उठा हुआ भाग तथा दूसरा निचले स्तर में स्थित नगर। लेकिन इन समानताओं के बावजूद भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि हड़प्पा सभ्यता किसी निश्चित नगरीय सभ्यता से प्रभावित रही हो।

3.7.4 चतुर्थ विचारधारा

उद्गम से संबधित एक अन्य विचार के अनुसार, सिन्धु सभ्यता सुमेर सभ्यता की ऋणी है। सुमेर सभ्यता और सिन्धु सभ्यता के मध्य निश्चित संबंधों की जानकारी है। गिल्गामेश आकृति , एनकिडु, सांड-मानव ,मुद्राओं और मृण्मूर्तियों में गोदीबाड़े के चिह्न , भारतीय तट को मेसोपोटामिया में मैलुह्ह की संज्ञा का मिलना आदि मेल हमें प्राप्त होते हैं। लेकिन हमें मालूम है कि इन संबंधों के बावजूद भी सिन्धु नागरिकों ने सुमेरियाइयों से अपने विकास तथा उत्तरजीविता के संबंध में कुछ विशिष्ठता नहीं प्राप्त की या कुछ खास नहीं सीखा।उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि सुमेरियाइयों की उत्कृष्ठ सिंचाई व्यवस्था तथा उच्चकोटि की कलाकृतियों को जानने या अपनाने के प्रमाण हमें नहीं मिलते हैं । इन सबसे प्रमुख यह बात है कि सिन्धु लिपि की , पश्चिम एशिया की किसी भी लिपि से संबंधता नहीं मिलती है अर्थात यह सुमेर की लिपि से बिल्कुल भिन्न है। हम केवल यह मान सकते हैं कि पश्चिम एशियाइयों और सिन्धु सभ्यता के मध्य संबंध थे ,लेकिन यह संबंध सैन्धव सभ्यता के मूल में नही थे, इसके अतिरिक्त सिन्धु सभ्यता एक स्टैटाइट सभ्यता थी जबकि सुमेर की सभ्यता में स्टैटाइट के कुछ ही दाने मिले हैं।

3.7.5 पंचम विचारधारा

उद्गम से संबधित एक अन्य महत्वपूर्ण विचार के अनुसार, हड़प्पा सभ्यता, सिन्धु घाटी के अंदर चलने वाली एक दीर्घकालीन विकास प्रक्रिया का परिणाम है।सिन्धु सभ्यता के अनेक लक्षणों का मूल हमें वहीं प्राप्त आरंभिक स्तर की ग्रामीण संस्कृतियों मे मिलता है। सिन्धु सभ्यता का निचला स्तर निश्चत रूप से हड़प्पा सभ्यता की प्रस्तावना के रूप में एक लम्बे काल से चलने वाली स्थानीय कृषि और तकनीकी का प्रमाण प्रस्तुत करता है।इस विचार के पीछे अन्य तथ्य भी हैं। उस काल में नगर की समकोणीय संरचना की योजना पश्चिम एशिया की किसी भी स्थान में नहीं मिलती है। पश्चिम एशिया के साथ व्यापार भी यह इंगित करता है कि हड़प्पा सभ्यता में अत्यंत उच्चकोटि का विकसित माल बनता होगा और अवश्य ही विकास के इस स्तर को प्राप्त करने में दीर्घकालीन समय लगा होगा। इसके अलावा हाल की पुरातात्विक खुदाइयां भी बहुत सी पुरा-हड़प्पीय और विकसित -हड़प्पीय बस्तियों के मध्य निरंतरता को बतलाती हैं। इस संदर्भ में चन्हूदाड़ो का उदाहरण दिया जा सकता है, जो मनके बनाने वालों का केन्द्र रहा था,यहां हमैं संस्कृति की निरंतरता प्राप्त होती है। यद्यपि बलूचिस्तान में अनेक स्थलों और कालीबंगन में हड़प्पा-पूर्व बस्तियों के

अवशेष मिले हैं तथापि उनमें और हड़प्पा संस्कृतियों के स्थलों में कोई बहुत स्पष्ट संबंध दिखाई नहीं देता , यद्यपि संभव है कि हड़प्पा सभ्यता का विकास इन्ही देशज बस्तियों से हुआ हो।

सिन्धु सभ्यता के निर्माता किस समुदाय से संबंधित थे, इसे निश्चित करना वर्तमान में टेढ़ी खीर है,फिर भी प्राचीन नर कंकालों का अध्ययन कर पुराविदों ने इस सभ्यता में प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड , भूमध्य सागरीय, मगोल तथा अल्पाइन प्रजातियों के मानव जन के निवास करने को प्रमाणित किया है।

3.8 सारांश

सिंधु सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी और हमें उत्खनन से ऐसे विभिन्न नगर प्रकाश में आये हैं। इन नगरों में मोहनजोदड़ो , हड़प्पा , कालीबंगन ,सूरकोटडा ,बनावली ,लोथल ,रंगपुर ,धौलावीरा इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है।इन नगरों का नगर-विन्यास हमें तत्कालीन जीवन के विषय में अनेकानेक महत्वपूर्ण सूचनाऐं प्रस्तुत करता है, हम सिन्धु नागरिकों के भोजन के विषय में भी निश्चित रूप से कह सकते हैं। सिन्धु नागरिक सामिष और निरामिष दोनों ही प्रकार का भोजन करते थे। मुद्राओं एवं मृण्मूर्तियों में अंकित चित्र उनके वस्त्र विन्यास, केश विन्यास आदि पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।सिन्धु घाटी के उत्खनन से पर्याप्त मात्रा में आभूषण भी मिले हैं। हम कह सकते हैं कि सिन्धु सभ्यता में स्त्रियां एवं पुरूष दोनों ही आभूषणों के शौकीन थे। सौन्दर्य प्रसाधन के भी अनेक उपकरण प्रकाश में आये हैं। सिन्धु नगरों से प्राप्त संरचनाओं, मुहरों एवं मृण्मूर्तियों के अध्ययन से सिन्धुकालीन सामाजिक जीवन ,धार्मिक जीवन एवं आर्थिक जीवन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है

वर्तमान में यह सभ्यता आधुनिक पाकिस्तान से भी आगे तक विस्तृत हो चुकी है। सिन्धु सभ्यता पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा तक लगभग 1500 किलोमीटर तथा उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा तक लगभग 1200 किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तृत है। सिन्धु सभ्यता का सम्पूर्ण क्षेत्र एक विशाल त्रिभुज की भांति है और लगभग 13 लाख वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र समेटे हुए है। यह क्षेत्रफल आधुनिक पाकिस्तान से तो बढ़ा है ही प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया के संयुक्त क्षेत्रफल से भी बढ़ा है। सिन्धु सभ्यता की तिथि के संबंध में व्यापक विवाद रहा था, लेकिन वैज्ञानिक प्रविधियों के प्रयोग के उपरांत पुराविद् सिन्धु सभ्यता का सही कालक्रम निर्धारित करने में सफल हुए हैं।

सिन्धु सभ्यता के उद्गम के विषय में पुरावशेषों की अपूर्णता और लिपि सम्बन्धित अज्ञानता के कारण किसी निश्चित विचार को ग्रहण करना अभी संभव नहीं है , फिर भी सभ्यता के उद्गम के विषय में उपरोक्त कुछ विचारधाराऐं महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं।इनमें से सर्वाधिक रोचक विचार तो यही प्रतीत होता है कि सिन्धु सभ्यता के विकास का आधार स्थानीय स्तर की ग्रामीण थीं। सिन्धु संस्कृति की निरंतरता भारतीय

सभ्यता के धार्मिक ,सामाजिक या सार्वजनिक तथा आर्थिक जीवन में दिखाई देती है। आर्यों की पाचन शक्ति अत्यधिक थी , उन्होंने आगे चलकर अनेक विदेशी समूहों को आत्मसात कर लिया था,स्वंय अनार्यों को भी उन्होंने अपनी जाति व्यवस्था में स्थान दे दिया था,सिन्धु सभ्यता का परम पुरूष जो शिव का पूर्व रूप प्रतीत होता है, आर्यों द्वारा महादेव के रूप् में स्वीकार किया गया। अतः यह असंभव नहीं कि आर्यों ने सिन्धु सभ्यता से पर्याप्त मात्रा में विचार ग्रहण किये हों। सिन्धु सभ्यता नगरीय और व्यापार प्रधान है। इसके अंतर्गत सिन्धु नागरिकों ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी। उन्हें नागरीय जीवन की अगणित सुविधाऐं प्राप्त थीं।

3.9 तकनीकी शब्दावली

सहस्राब्दी - एक सहस्त्र वर्ष अथवा हजार वर्ष

उत्खनन - योजनानुसार की गयी खुदाई

नगर-विन्यास - नगर की बनावट

सामिष - मांसयुक्त भोजन

बंदरगाह - पानी के जहाजों के ठहरने का स्थान

मृण्मूर्तियां - मिट्टी की मूर्तियां

बस्तियां - मानव समूह का निवास स्थान

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 3.4 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर -असत्य

इकाई 3.4 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - असत्य

इकाई 3.4 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - सत्य

इकाई 3.5 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - लगभग 13 लाख वर्ग किलोमीटर

इकाई 3.5 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - सुत्कजैंण्डोर

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा: प्राचीन भारतीय संस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनू पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद,1984

ए.एल बाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

www.mohenjodaro.net/

3.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90,pp. 71-82

Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram Manoharlal,New Delhi,1990

Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995

Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3rd edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सिन्धु सभ्यता के विस्तार को उद्घाटित कीजिए।
2. सिन्धु सभ्यता के कालक्रम के संबंध में विभिन्न पुराविदों द्वारा सुझायी गये तिथिक्रम का वर्णन कीजिए।

इकाई चार -सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे, धार्मिक,आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन,विदेशी व्यापार एवं सम्पर्क

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे
    4.3.1 मोहनजोदड़ो
    4.3.2 हड़प्पा
    4.3.3 चन्हूदाड़ो
    4.3.4 कालीबंगन
    4.3.5 लोथल
    4.3.6 सूरकोटडा
    4.3.7 बनवाली
    4.3.8 धौलावीरा
4.4 सिन्धु सभ्यता में राजनीतिक जीवन
4.5 सिन्धु सभ्यता में धार्मिक जीवन
    4.5.1 परमपुरूष की उपासना
    4.5.2 मातृदेवी की पूजा
    4.5.3 वृक्ष पूजा
    4.5.4 जल पूजा
    4.5.5 पशु-पक्षी एवं नाग पूजा
    4.5.6 अग्नि तथा बलि पूजा
    4.5.7 मृतक संस्कार
    4.5.8 अन्य तथ्य
4.6 सिन्धु सभ्यता में आर्थिक जीवन

4.6.1 कृषि
4.6.2 व्यापार तथा वाणिज्य
4.6.3 वस्त्र निर्माण
4.6.4 अन्य उद्योग
4.6.5 विनिमय माध्यम
4.6.6 धातुकर्म
4.7 सिन्धु सभ्यता में व्यापार एवं सम्पर्क
4.8 साराशं
4.9 तकनीकी शब्दावली
4.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.13 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपको सिन्धु सभ्यता से संबंधित विभिन्न तथ्यों के विषय में जानकारी दी गयी । इस इकाई में सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन, विदेशी व्यापार एवं सम्पर्क पर विस्तार से चर्चा की गयी है। सिन्धु सभ्यता के विषय में हमारी जानकारी पुरातात्विक अवशेषों पर आधारित है। यद्यपि हमें इस सभ्यता की लिखित सामग्री मिली है तथापि उसे पढ़ने में हम अभी तक सक्षम नहीं हो पाये हैं।

इस सभ्यता में मिलने वाले स्थलों की संख्या 1000 को पार कर गयी है फिर भी अनेक स्थल अपनी भव्यता के कारण बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। इस सभ्यता का आम नागरिक जिस स्तर की भौतिक सुविधाओं का उपभोग करता था उसकी तत्कालीन विश्व की अन्य सभ्यताओं में जानकारी नहीं थी। जैसा कि

पिछली इकाइयों में बतलाया गया है,कि यह सभ्यता नगरीय सभ्यता थी अतः इस इकाई में हम आपको इसके प्रमुख नगरों की जानकारी देंगे।

पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर पुराविदों ने सिन्धु सभ्यता के नागरिकों के धार्मिक जीवन, आर्थिक जीवन तथा राजनीतिक जीवन को जानने का प्रयास भी किया है और इनके आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार एवं सम्पर्क का भी र्प्याप्त परिचय देने का प्रयास किया है।इस इकाई में हम इन्हीं सब तथ्यों पर चर्चा करेंगे।

4.2 उद्देश्य

सिन्धु सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए प्रथम ब्लाक की पिछली इकाइयों में आपको सिन्धु सभ्यता के विषय में सामान्य जानकारी के अलावा सभ्यता का विस्तार-क्षेत्र तथा कालक्रम सिन्धु सभ्यता की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न विचारधाराऐं,आगामी कालखण्डों में सिन्धु सभ्यता की निरंतरता सिन्धु सभ्यता की प्रमुख विशेषताऐं के विषय में जानकारी प्रदान की गयी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी।इस इकाई का उद्देश्य आपको सभ्यता से संबंधित अन्य तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे
2. सिन्धु सभ्यता में राजनीतिक जीवन
3. सिन्धु सभ्यता में धार्मिक जीवन
4. सिन्धु सभ्यता में आर्थिक जीवन
5. सिन्धु सभ्यता में व्यापार एवं सम्पर्क

4.3 सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे

इस अत्यधिक विस्तृत संस्कृति में अत्यल्प परिवर्तन मिलता है। इस सभ्यता की प्रमुख विशेषता इसका नगर विन्यास है , जो समकोणीय संरचना पर आधारित है।भवन पकी मिट्टी की ईंटों से बनाये गये हैं , सड़कें तथा गलियां सुनियोजित हैं। अधिकतर भवनों में उत्कृष्ट भूमिगत जल-निकास व्यवस्था मिलती है। सिन्धु सभ्यता के लगभग एक हजार से अधिक स्थलों में से आठ नगरों को प्रमुख माना गया है। इन नगरों की प्रमुख विशेषताओं का परिचय आपको दिया जा रहा है-

4.3.1 मोहनजोदड़ो

यह नगर सिन्ध के लरकाना जिले अब पाकिस्तानमें सिन्धु नदी के तट पर स्थित है । इसका नगर-विन्यास समकोणीय संरचना पर आधारित है। गढ़ी एक टीले पर स्थित है जिसके नीचे नगर विस्तृत है । नगर की मुख्य

सड़कें 33 फीट तक चौड़ी हैं और एक-दूसरे को समकोण पर काटती हुई नगर को आयताकार खण्डों में विभाजित करती हैं। इस प्रकार की योजना प्रणाली समकालीन मिस्र या मेसोपोटामिया में अज्ञात थीं। नगर में सुनियोजित गलियों की व्यवस्था मिलती है। सड़कों तथा भवनों में पकी ईंटों से निर्मित उत्कृष्ट भूमिगत जल निकास व्यवस्था मिलती है।भवनों में कूड़ेदान या कूड़ापात्र तथा स्नानागार भी मिले हैं, स्नानागारों को नालियों की सहायता से सड़कों में बनी मुख्य जल निकास व्यवस्था से जोड़ा गया है। यहां भवन निर्माण में निश्चित माप की ईंटों का प्रयोग किया गया है लेकिन पत्थर के भवन का कोई चिह्न नहीं मिलता है। अधिकतर भवनों में दो या अधिक मंजिल मिलती हैं किन्तु सामान्यतः योजना एक सी ही है-एक वर्गाकार आंगन उसके चारों ओर कमरे, प्रवेश-द्वार पिछले हिस्से से, सड़क की ओर खिड़कियों का ना होना , भवन में स्नानागार तथा कूऐं का प्रावधान होना। मोहनजोदड़ो में दो कमरे के भवन भी मिले हैं ये संभवतः समाज के गरीब वर्ग से संबंधित थे।मोहनजोदड़ो का मुख्य आकर्षणयहां स्थित वृहत स्नानागार है, यह ईंटों से निर्मित है और इसमें जल भरने तथा निकासी का प्रावधान मिलता है। वृहत स्नानागार के समीप ही एक विशाल अन्नागार मिला है जो उस समय का प्रमुख भण्डारगृह रहा होगा। अन्नागार के पास ही एकल कक्षों की बैरक प्रकार कतारें मिलती हैं ,ये संभवतः दासों के आवास रहे होंगे।खुदाई से पता चला है कि मोहनजोदड़ो कम से कम सात बार बाढ़ से क्षतिग्रस्त और पुनर्निमित हुआ था।यहां से कांस्य औजारों के विभिन्न प्रकार प्राप्त हुए हैं और छोटे आकार की ग्यारह प्रस्तर प्रतिमाऐं भी मिली हैं। संदिग्ध स्तर से घोड़े के प्रमाण भी मिले हैं।मोहनजोदड़ो से बुना हुआ सूत का टुकड़ा तथा कपड़े की छाप अनेक वस्तुओं में मिली है।मोहनजोदड़ो में असुरक्षा के कुछ चिह्न मिलते हैं जिनमें विभिन्न स्थानों में आभूषणों का दबाया जाना , एक स्थान में कटे हुए मुंडों का प्राप्त होना और नये प्रकार के हथियारों का मिलना शामिल हैं , यहां बाद के काल के आधे दर्जन से अधिक अस्थिपंजर इंगित करते हैं कि मोहनजोदड़ो में संभवतः आक्रमण हुआ था। झुंड में पड़े अस्थिपंजर तथा कूऐं की सीढ़ियों में पड़ी एक स्त्री का अस्थिपंजर स्पष्ट करता है कि इन मौतों के पीछे आक्रमणकारी थे।

4.3.2 हड़प्पा

यह नगर पंजाब प्रांत अब पाकिस्तानके मोण्टगोमरी जिले में रावी नदी के किनारे स्थित है। है।मोहनजोदड़ो की भांति इसका नगर-विन्यास भी समकोणीय संरचना पर आधारित है।गढ़ी एक टीले पर स्थित है जिसके नीचे नगर विस्तृत है। नगर की मुख्य सड़कें 33 फीट तक चौड़ी हैं और एक-दूसरे को समकोण पर काटती हुई नगर को आयताकार खण्डों में विभाजित करती हैं। इस प्रकार की योजना प्रणाली समकालीन मिस्र या मेसोपोटामिया में अज्ञात थीं। नगर में सुनियोजित गलियों की व्यवस्था मिलती है। सड़कों तथा भवनों में पकी ईंटों से निर्मित उत्कृष्ट भूमिगत जल निकास व्यवस्था मिलती है।भवनों में कूड़ेदान या कूड़ापात्र तथा स्नानागार

भी मिले हैं, स्नानागारों को नालियों की सहायता से सड़कों में बनी मुख्य जल निकास व्यवस्था से जोड़ा गया है। यहां भवन निर्माण में निश्चित माप की ईंटों का प्रयोग किया गया है लेकिन पत्थर के भवन का कोई चिह्न नहीं मिलता है। अधिकतर भवनों में दो या अधिक मंजिल मिलती हैं किन्तु सामान्यतः योजना एक सी ही है। हड़प्पा के अन्नागार की कतारें उल्लेखनीय हैं यहां छह-छह अन्नागारों की दो कतारें मिली हैं , और यहां भी मोहनजोदड़ो की भांति समीप ही छोटे कक्ष निर्मित मिलते हैं। गढ़ी के दक्षिण-पश्चिम में स्थित कब्रिस्तान इंगित करता है कि एक विदेशी समूह ने हड़प्पा को नष्ट किया था।

4.3.3 चन्हूदाड़ो

यह नगर मोहनजोदड़ो से 80 मील दक्षिण में स्थित है। यहां गढ़ी नहीं मिली है। चन्हूदाड़ो मनके बनानेवालों की कला का केन्द्र था यहां सोने ,चांदी , तांबे ,स्टेटाइट तथा शैल के मनके बनाये जाते थे जिनका उपयोग सिन्धु नागरिक तो करते ही थे संभवतः ये व्यापार की भी महत्वपूर्ण सामग्री थे। पुरातात्विक प्रमाणों से पता चलता है कि चन्हूदाड़ो में दो बार भीषण बाढ़ आयी थी जिसने नगर को काफी क्षति पहुचायी थी।चन्हूदाड़ो के उत्खनन से एक छोटी दवात मिली है जिसे पुराविदों ने स्याहीदान से समीकृत किया है। मोर की आकृति वाले मृणभाण्ड भी चनहूदाड़ो की विशेषता रही है।

4.3.4 कालीबंगन

यह नगर राजस्थान में वर्तमान में सूखी हुई घगगर नदी के किनारे स्थित था। कालीबंगन में गढ़ी तथा निचला नगर दोनों ही प्राचीरयुक्त हैं। गढ़ी में स्थित एक प्लेटफॉर्म में मिट्टी के गढ्ढे या अग्निवेदी की कतारें हैं जिनमें राख तथा कोयला भरा है जबकि दूसरे प्लेटफॉर्म में पकी मिट्टी की ईंटों से निर्मित गढ्ढे में हड्डियां मिलती हैं। ये उदाहरण सिन्धु सभ्यता में अग्निपूजा तथा बलिप्रथा की ओर संकेत करते हैं। कालीबंगन सिन्धु सभ्यता का एक प्रमुख नगर था ,नगरीय जीवन की सभी सुविधाऐं यहां मिलती हैं अनेक भवनों में अपने कूऐं थे। कालीबंगन का पूर्व-हड़प्पीय चरण, हड़प्पाकाल के विपरीत राजस्थान में खेत की जुताई को दर्शाता है।

4.3.5 लोथल

लोथल नामक नगर गुजरात में कैम्बे की खाड़ी के समीप स्थित है। लोथल सिन्धु सभ्यता का एकमात्र नगर है जहां हमें बन्दरगाह या गोदीबाड़ा मिला है। इस बन्दरगाह की प्राप्ति से सिन्धु नागरिकों की सामुद्रिक गतिविधियों एवं विदेशी व्यापार की पुष्टि होती है। धान भी केवल रंगपुर और लोथल में ही मिला है अतः प्रमाणित होता है कि कम से कम 1800 ईसा पूर्व से चावल का प्रयोग करते थे। और रंगपुर के साथ एक अन्य समानता यह भी है कि लोथल भी मनके बनानेवालों का केन्द्र था , यहां सोने ,चांदी , तांबे , स्टेटाइट ,शैल

आदि के बनाये जाते थे।लोथल के एक संदिग्ध स्तर से घोड़े की मृण्मूर्ति के प्रमाण भी मिले हैं। लोथल से हमें कालीबंगन की भांति अग्निपूजा के संकेत भी मिले हैं।

4.3.6 सूरकोटडा

गुजरात में अहमदाबाद से लगभग 270 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित था। यहां की गढ़ी तथा निचला नगर दोनों ही कालीबंगन की भांति प्राचीर से घिरे हुए हैं। नगरीय जीवन की सुविधाऐं यहां भी दिखाई देती हैं।उत्खननकर्ताओं ने यहां से घोड़े के अस्थि-अवशेष प्राप्त किये हैं।हांलाकि हम जानते हैं कि घोड़ा सिन्धु नागरिकों को अज्ञात था पुराविदों का मानना है कि कि यह एक अपवाद था और यह किस तरह यहां आया इस बात में अटकलें हैं।

4.3.7 बनवाली

बनवाली नामक नगर वर्तमान में सूखी हुई सरस्वती घाटी में स्थित है। बनवाली में भी कालीबंगन, कोटदीजी और हड़प्पा की भांति ही दो सांस्कृतिक चरण-पूर्व हड़प्पीय और हड़प्पीय मिलते हैं। बनवाली में सड़क तथा जल निकास प्रणाली के भी प्रमाण मिले हैं। यहां से पर्याप्त मात्रा में जौ की प्राप्ति हुई है तथा सरसों के प्रमाण भी मिले हैं।

4.3.8 धौलावीरा

धौलावीरा नामक स्थल की खोज आर.एस.बिष्ट द्वारा 1988-89 में की गयी थी। यह स्थल गुजरात में भुज से लगभग 250 किलोमीटर दूर स्थित है।इस नगर का नगर विन्यास सिन्धु सभ्यता के अन्य नगरों से थोड़ा अलग है। यहां मध्य में गढ़ी निर्मित मिलती है जिसके बाद मध्य का नगर और फिर निचला नगर मिलते हैं। ये सभी पृथक-पृथक रूप् से प्राचीरयुक्त हैं। गढ़ी से बाहर की ओर योजनानुसार गलियां निकली हैं। धौलावीरा की प्रमुख विशेषता यह है कि यहां विश्व की प्राचीनतम जल संरक्षण प्रणाली के दर्शन होते हैं। उपग्रह से प्राप्त तस्वीरों से पता चलता है कि यहां एक विशाल भूमिगत जलाशय था जिसमें वर्षा का पानी इकठ्ठा होता था,हमें नगर की प्राचीरों में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि पानी यहां से इकठ्ठा होकर इस जलाशय में चला जाता था।धौलावीरा की एक अन्य विशेषता यह है कि यहां से 10 विशाल प्रस्तर अभिलेख मिले हैं, संभवतः ये नगर की विभिन्न सड़कों को इंगित करने वाले साइनबोर्ड रहे हों।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. मोहनजोदड़ो पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. हड़प्पा सभ्यता के नगर विन्यास पर चर्चा कीजिए।

4.4 सिन्धु सभ्यता में राजनीतिक जीवन

सिन्धु सभ्यता के भवनों, सार्वजनिक इमारतों, स्नानागारों, विस्तृत सड़कों ,गलियों आदि का नियोजन एवं निर्माण तथा व्यवस्था को देखकर कोई भी कल्पना कर सकता है कि यहां नागरिक प्रशासन जैसी कोई प्रणाली रही होगी और दीर्घकाल तक सिन्धु सभ्यता में कोई परिवर्तन न आना इस तथ्य को इंगित करता है कि यहां का प्रशासन विकसित , सुसंगठित तथा प्रभावकारी रहा होगा। हमें लिखित सामग्री मिली है लेकिन पुराविद अभी तक उसे पढ़ नहीं पाये हैं अतः हम सिन्धु घाटी के प्रशासनिक स्वरूप को जानने के लिए केवल मात्र भौतिक अवशेषों पर आश्रित हैं। इन अप्रत्यक्ष प्रमाणों के अनुशीलन के आधार पर हम कह सकते हैं कि यहां के नागरिकों का जीवन सुरक्षित ,शांतिपूर्ण और व्यवस्थित था। इन्हीं अवशेषों के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता के राजनीतिक जीवन से संबंधित विविध विचार व्यक्त किये हैं-

पश्चिमी विद्वान हंटर तथा मैके के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि सिन्धु संस्कृति का प्रशासन जनतांत्रिक प्रणाली के अनुसार चलता था जबकि रूस के पुराविद स्टूवे का मानना है कि सिन्धु सभ्यता का प्रशासन गुलामों के आधार पर चलता था। स्टूअर्ट पिगट नामक पुराविद का मानना है कि हडप्पा साम्राज्य पर दो राजधानियों द्वारा शासन चलाया जाता था , जो एक-दूसरे से 350 मील की दूरी पर स्थित थीं किन्तु ये दोनों नगर नदियों द्वारा जुड़े हुए थे।

व्हीलर नामक पुराविद के अनुसार , हड़प्पा के के स्वामी अपने नगरों का शासन लगभग उसी प्रकार करते थे जैसे सुमेर तथा अक्काद के पुरोहित राजा, सुमेर में नगर का अनुशासन तथा धन मुख्य देवता के हाथों में रहता था। यह देवता पुरोहित राजा कहलाता था तथा यहां मंदिर सार्वजनिक जीवन का केन्द्र था। इसका प्रबन्ध अलौकिक शक्तियों द्वारा होता था। इस प्रकार के राज्य को वास्तव में नौकरशाही राज्य कहा जा सकता है जिससे तत्कालीन संगठन , अतिरिक्त धन का वितरण तथा रक्षा आदि के कार्य संपन्न होते थे ।इस प्रकार के राज्य में साधारण व्यक्ति को अधिकार प्राप्त नहीं थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न पुराविदों ने भिन्न- भिन्न शासन प्रणाली का होना सिन्धु सभ्यता में बताया है अतः जब तक सिन्धु लिपि को पढ़ने में सफलता नहीं मिलती तब तक हम किसी ठोस निष्कर्ष में नहीं पहुंच सकते हैं।

4.5 सिन्धु सभ्यता में धार्मिक जीवन

सिन्धु घाटी की खुदाई से जो साक्ष्य मिले हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इस सभ्यता में धार्मिक जीवन और विश्वास की एक दीर्घ परंपरा थी। इस धर्म में बाहरी विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी विशेषताऐं भी पायी जाती हैं जो आज भी हिन्दू धर्म में मौजूद हैं, इनके अंतर्गत शिव- शक्ति पूजा , नाग पूजा, वृक्ष पूजा

,पाषाण पूजा ,लिंग-योनि पूजा तथा योग को सम्मिलित किया जा सकता है। इन सबका शीर्षकवार अध्ययन किया जा सकता है-

4.5.1 परमपुरूष की उपासना

सिन्धु घाटी की एक मुद्रा में शिव के पूर्व रूप अर्थात परम पुरूष की आकृति अंकित मिलती है, इस आकृति के तीन मुख है तथा तीन आंखें हैं। चौकी पर विराजमान इस आकृति के दाहिनी ओर हाथी तथा बाघ और बांयी ओर गैंडा एवं भैंसा अंकित हैं , चौकी के नीचे हिरण के समान सींगों वाला पशु अंकित है। राधाकुमुद मुखर्जी ने इसे पशुपति माना है।एक अन्य मुद्रा में नागों से घिरे योगासीन पुरूष की आकृति अंकित मिलती है जबकि एक अन्य मुद्रा में धनुषधारी पुरूष का आखेटक रूप में अंकन किया गया है। सिंन्धु घाटी से अनेक लिंगाकारों की प्राप्ति हुई है अतः कहा जा सकता है कि यहां शिव की लिंग रूप में भी पूजा होती थी। सिन्धु सभ्यता में कुछ इस प्रकार के छल्ले मिले हैं जिन्हें पुराविदों ने योनिपूजा से समीकृत किया है ,लिंग पूजा तथा योनि पूजा का घनिष्ठ संबंध है ये दोनों सृष्टिकर्ता के सृजनात्मक रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं । ये सभी प्रतीक एवं संकेत हमें बताते हैं कि उस काल में परमपिता परमेश्वर के पुरूषरूप तथा प्रतीक चिह्नों के रूप में सिन्धु सभ्यता में शिवोपासना प्रचलित थी। मार्शल नामक पुराविद तो सिन्धुघाटी को शैव धर्म की उत्पति का क्षेत्र मानते हुए उसे विश्व का प्राचीनतम धर्म मानता है।

4.5.2 मातृदेवी की पूजा

मोहनजोदड़ो ,चन्हूदाड़ो तथा हड़प्पा से प्राप्त मातृदेवी की प्रतिमाओं तथा इन प्रतिमाओं में अंकित विविध आभूषण इत्यादि मातृदेवी के विविध रूपों तथा प्रतीकों के परिचायक हैं। मातृदेवी के इन अंकनों में उसके वनस्पति के रूप में उपास्य , जगत जननी के रूप में पूज्य तथा पशु जगत की अधीश्वरी का आभास मिलता है। विद्वानों की यह धारणा है कि मातृदेवी के ये विविध रूप उसकी विविध शक्तियों के परिचायक हैं।मार्शल नामक पुराविद के अनुसार सिन्धु प्रदेश में मातृदेवी को आद्य शक्ति के रूप में पूजा जाता था।

4.5.3 वृक्ष पूजा

सिन्धु घाटी की मुद्राओं तथा मृणभाण्डों में एसे अनेक वृक्षों का अंकन मिलता है जो विशिष्ट प्रतीत होते हैं और जिन्हें सिन्धु नागरिकों के धार्मिक विश्वास से जोड़ा जा सकता है। यहां से प्राप्त एक मुद्रा में मानव आकृति पीपल की पत्तियां पकड़े हुए प्रदर्शित है,जबकि दूसरी मुद्रा में जुड़वां पशु के सिर पर पीपल की पत्तियों का अंकन मिलता है , कुछ मुद्राओं में देवताओं को वृक्ष की रक्षा करते हुए प्रदर्शित किया गया है । चित्रों में जिन धार्मिक महत्व के वृक्षों को पहचाना गया है उनमें पीपल के अलावा नीम, बबूल ,शीशम ,खजूर के वृक्ष उल्लेखनीय हैं।

4.5.4 जल पूजा

मोहनजोदड़ो से प्राप्त विशाल स्नानागार तथा अनेक अन्य स्नानागारों की प्राप्ति सिन्धु सभ्यता में जल पूजा पर प्रकाश डालती हैं। कुछ विद्वानों ने तो मोहनजोदड़ो के विशाल स्नानागार को जल देवता का मंदिर भी बताया है। जल पूजा बाद के हिन्दू धर्म में महत्वपूर्ण रही है अतः संभव है कि सिन्धु सभ्यता में जल पूजा की जाती रही हो।

4.5.5 पशु-पक्षी एवं नाग पूजा

हमें मालूम है कि विश्व की सभी सभ्यताओं में पशु-पक्षी पूजा प्रचलित रही है। सिन्धु घाटी के कुछ पशु-पक्षी भी विशिष्ठ प्रतीत होते हैं, इनमें बैल और विशेषकर कूबड़वाला बैल प्रमुख है जो बाद के काल में शिव के वाहन के रूप में आराध्य रहा है। इसके अतिरिक्त बत्तख भी सिन्धु नागरिको की आस्था का केन्द्र प्रतीत होती है।एक मुद्रा में नाग की पूजा करते हुए व्यक्ति का अंकन मिला है। अतः इनत थ्यों के आधार पर सिन्धु घाटी में पशु-पक्षी एवं नाग पूजा की कल्पना भी की जाकती है।

4.5.6 अग्नि तथा बलि पूजा

कालीबंगन ,लोथल आदि स्थानों में कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जो सिन्धु सभ्यता में अग्नि तथा बलि पूजा की ओर इशारा करते हैं। मोहनजोदड़ो में एक धारदार हथियार के समीप एक पशु का अंकन,कालीबंगन की अग्निशालाऐं एवं पशुओं की हड्डी से भरे गड्डे इत्यादि सिन्धु सभ्यता में अग्नि तथा बलि पूजा की ओर संकेत करते हैं यद्यपि इस संबंध में प्रामाणिकता के साथ कहना संभव नहीं है।

4.5.7 मृतक संस्कार

प्रमाणों से लगता है कि सिन्धु निवासी अपने मृतकों को भूमि पर दफनाकर ,चिता में जलाकर तथा शव को जंगलों में खुला छोड़कर मृतक संस्कार करते थे। विभिन्न स्थलों से अनेक घड़ों की प्राप्ति हुई है जिनमें मानव अस्थियां तथा भस्म मिली है। वे मृतकों की कब्रों में मरणेत्तर जीवन पर विश्वास रखते हुए शव के साथ अनेक जीवनोपयोगी सामग्री भी रख देते थे।

4.5.8 अन्य तथ्य

सिन्धु घाटी से भारी मात्रा में ताबीजों की प्राप्ति भी हुई है जो उनके जादू-टोने इत्यादि में अतिरेक विश्वास को दर्शाते हैं।सिन्धु नागरिक मूर्तिपूजक थे और ऐसा प्रतीत होता है कि वे चिन्तन की अपेक्षा साकार उपासना पर बल देते हुए मूर्ति पूजा करते थे।उन्होंने अपने देवी-देवताओं का मानवीयकरण किया था और उनकी मूर्तियां निर्मित की थीं।उत्खनन में दीपक भी मिले हैं और कुछ स्तंभों के शीर्ष भाग में दीपक तथा नीचे अग्नि जलाने के

प्रमाण भी मिले हैं।अभी तक जो प्रमाण मिले हैं उनके आधार पर हम उनके धर्म दर्शन पर अधिक नहीं कह सकते पर इतना तो निश्चित है कि सिन्धु निवासी बहुदेववाद में आस्था रखने के साथ-साथ एकेश्वरवादी भी थे।

4.6 सिन्धु सभ्यता में आर्थिक जीवन

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त साक्ष्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वहां अर्थव्यवस्था पर्याप्त उन्नत थी , मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के वैभवशाली और विलासमय जीवन के प्रमाण वहां किसी सुसंगठित आर्थिक व्यवस्था का होना बतलाती है।सिन्धु सभ्यता के आर्थिक जीवन का अध्ययन हम विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं-

4.6.1 कृषि

प्राप्त साक्ष्यों के अध्ययन से पता चलता है कि सिन्धु सभ्यता में कृषि का प्रमुख स्थान था। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाये गये विशाल अन्नागार इस तथ्य को उजागर करते हैं कि इस सभ्यता में खाद्य अतिरेक होता था और उसके भण्डारण की इन्होंने समुचित व्यवस्था की थी।वे कृषि कार्यों से भली-भांति परिचित थे और सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों की उर्वर भूमि में वे खेती करते थे।अवशेषों के अध्ययन से पता चलता है कि वे गेहूं ,जौ ,तिल , कपास , धान ,सरसों आदि की खेती करते थे ।

4.6.2 व्यापार तथा वाणिज्य

सिन्धु सभ्यता में व्यापार एवं वाणिज्य भी पर्याप्त विकसित अवस्था में था,इसका सविस्तार विवरण आगे दिया जायेगा।

4.6.3 वस्त्र निर्माण

सिन्धु निवासी कपास की खेती भी करते थे। खुदाई में बहुत से तकुए एवं सूत की नलियां प्राप्त हुई हैं,जो इस बात के परिचायक हैं कि कताई साधारण जनता में लोकप्रिय थी।कपास को कात कर सूत बनाया जाता था तथा इसके द्वारा अनेक प्रकार के कपड़े बनाये जाते थे। वस्त्र बनाने के लिए सिन्धु निवासी ऊन का प्रयोग भी करते थे। रंगाई के अनेक हौजों की प्राप्ति से वस्त्रों की रंगाई पर भी प्रकाश पड़ता है।उत्खनन में हड्डियों तथा सीपों के बटन तथा धातु की सूइयां भी मिली हैं जिनसे पता चलता है कि उन्हें वस्त्रों की सिलाई-कढ़ाई का भी ज्ञान था। सिन्धु सभ्यता में निर्मित वस्त्रों का निर्यात सुदूर देशों को किया जाता था।

4.6.4 अन्य उद्योग

सिन्धु सभ्यता के अध्ययन से यह तथ्य उजागर होता है कि इस सभ्यता में बहुत अधिक औद्योगिक विशिष्टीकरण एवं श्रम-विभाजन था। जीवन की विविध आवश्यकताओं की पूर्तिविभिन्न उद्योंगों द्वारा की

जाती थी। सिन्धु घाटी से कैंची, कुल्हाड़ी, हंसिया ,हथौड़ा, सुई, विभिन्न प्रकार के बर्तन, मूर्तियां मुद्राऐं ,अनेक प्रकार के खिलौने, ताबीज, विविध आकार-प्रकार की ईटें ,आभूषण इत्यादि भारी मात्रा में प्राप्त हुए हैं।इनके अतिरिक्त जीवनोपयोगी सामग्रियां, प्रसाधन सामग्रियां इत्यादि का भी यहां के नागरिकों में पर्याप्त प्रचलन था। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि सिन्धु सभ्यता में बढ़ई , सुनार ,जौहरी ,मूर्तिकार ,कुंभकार ,रंगरेज एवं धातुकारों के उद्योग खूब फलफूल रहे थे।

4.6.5 विनिमय माध्यम

इस अत्यधिक विकसित अर्थ व्यवस्था में हमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है जिसके आधार पर हम किसी सांकेतिक मुद्रा की कल्पना कर सकें । बहुत संभव है कि आंतरिक व्यापार-वाणिज्य में वे वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रयोग करते रहे हों और विदेशी व्यापार के अंतर्गत वे अपने माल की बिक्री के बदले बहुमूल्य धातऐं ,मणि-रत्नों-कीमती पत्थरों अथवा सिन्धु घाटी में अप्राप्य वस्तुओं का विनिमय करते हों।

4.6.6 धातुकर्म

खुदाई से प्राप्त वस्तुओं के निरीक्षण से पता चलता है कि सिन्धु निवासियों को अनेक धातुओं की जानकारी थी। अनेक ऐसी धातु भी मिली हैं जो सिन्धु घाटी क्षेत्र में नहीं पायी जाती हैं अवश्य ही ऐसी धातुऐं व्यापार के माध्यम से प्राप्त की गयी होंगी। जिन धातुओं की सिन्धु निवासियों को जानकारी थी उनमें तांबा , सोना ,चांदी ,टिन ,कांसा ,सीसा प्रमुख थे। धातुकर्म विकसित था और धातुकारों की भट्टियां इस बात के प्रमाण हैं कि विविध प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। हमें खुदाई में धातु के उपकरण , अस्त्र-शस्त्र ,मूर्तियां ,बरतन इत्यादि प्राप्त हुए हैं।

4.7 सिन्धु सभ्यता में व्यापार एवं सम्पर्क

सिन्धु सभ्यता में आंतरिक व्यापार समृद्ध था। नाप के लिए ये सीप की पटरियों का प्रयोग करते थे। मैके के अनुसार पटरियों का लम्बाई 13.2 इंच थी। उनके अनेक बांट-बटखरे मिले हैं, अधिकांश बांट 16 अथवा उसके गुणज भार के हैं। अपनी लिपि होने के कारण वे संभवतः व्यापार का लेखा-जोखा भी रखते हों। सिन्धु सभ्यता के नगरों में निर्मित होने वाली अनेक वस्तुओं के लिए जरूरा कच्चा माल वहां उपलब्ध नहीं था। वे धातु की मुद्रा का प्रयोग नहीं करते थे। बहुत संभव है कि व्यापार वस्तु-विनिमय के माध्यम से चलता हो। निर्मित वस्तुओं और संभवतः अनाज के बदले वे पड़ोसी प्रदेशों से धातुएं प्राप्त करते थे और उन्हें नौकाओं तथा बैलगाड़ियों में ढोकर लाते थे। अरब सागर में तट के पास उनकी नौकाऐं चलती थीं, वे पहिये का उपयोग जानते थे और लगता है कि वे आधुनिक इक्के जैसे किसी वाहन का प्रयोग भी करते थे।

ऐसा लगता है कि उस काल में व्यापार का क्षेत्र विस्तृत हो चला था। व्यापार के द्वारा नजदीक ही नहीं वरन् सुदूर देशों से भी सामग्री प्राप्त की जाती थी और उस सामग्री का प्रयोग नगर के स्थापत्य तथा वहां के नागरिकों की आवश्यकताओं के लिए किया जाता था। सिन्धु सभ्यता में मिला सोना ऐसी ही एक सामग्री है, एडविन पेस्को के अनुसार ,सोना उस समय केवल मैसूर की कोलार खानों में मिलता था । इसी प्रकार मोहनजोदड़ो में प्रयुक्त हरा पत्थर नीलगिरि की पहाड़ियों में स्थित दोछाबेट्टा नामक स्थान से मिलता था। यह भारतीय हरा पत्थर शाम में ऊर नामक स्थान पर भी प्रयुक्त हुआ है। अन्य सुदूरवर्ती प्रदेशों से लाये गये पदार्थों में बदख्शां के लाजवर्द , खुरासान के फीरोजे ,और पामीर पूर्वी तुर्कीस्तान और तिब्बत के भरगज या भसार प्रमुख हैं। जैसलमेर से पीला पत्थर और किरथर की पहाड़ियों से खड़िया प्राप्त की जाती थी।

लगभग 2350 ईसा पूर्व से आगे के मेसोपोटामियाई अभिलेखों में मैलुह्ह के साथ व्यापार करने के उल्लेख मिलते हैं। यह संभवतः सिन्धु प्रदेश का प्राचीन नाम था। मेसोपोटामियाई अभिलेखों में बीच के दो स्थलों - दिलबन तथा मकन का उल्लेख भी आया है। इनमें से दिलबन संभवतः फारस की खाड़ी में स्थित बाहरीन था।

विदेशी व्यापार के अंतर्गत सिन्धु नागरिकों के संबंध सुमेर और संभवतः अफगानिस्तान , बलूचिस्तान ,ईरान ,बदख्शां ,बाहरीन ,ओमान ,और मध्य एशिया से थे। बेबीलोन से प्ररप्त कीलाक्षर लेखों से पता चलता है कि व्यापार पश्चिम एशिया में 800 मील लम्बे समुद्र तट के किनारे-किनारे किया जाता था। उर मेसापोटामिया मे प्रवेश के लिए प्रमुख बन्दरगाह था। सोना संभवतः दक्षिण भारत तथा अफगानिस्तान से मिलता था । चांदी संभवतः अफगानिस्तान तथा ईरान से प्राप्त की जाती थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. सिन्धु सभ्यता के व्यापार पर टिप्पणी करिये।
2. सिन्धु सभ्यता के विदेशी सम्पर्क पर टिप्पणी करिये।

4 . 8 सारांश

सिन्धु सभ्यता के लगभग एक हजार से अधिक स्थलों में से आठ नगरों को प्रमुख माना गया है।इस सभ्यता की प्रमुख विशेषता इसका नगर विन्यास है , जो समकोणीय संरचना पर आधारित है। सिन्धु सभ्यता के भवनों, सार्वजनिक इमारतों, स्नानागारों, विस्तृत सड़कों ,गलियों आदि का नियोजन एवं निर्माण तथा व्यवस्था को देखकर कोई भी कल्पना कर सकता है कि यहां नागरिक प्रशासन जैसी कोई प्रणाली रही होगी और दीर्घकाल तक सिन्धु सभ्यता में कोई परिवर्तन न आना इस तथ्य को इंगित करता है कि यहां का प्रशासन विकसित , सुसंगठित तथा प्रभावकारी रहा होगा। विभिन्न पुराविदों ने भिन्न- भिन्न शासन प्रणाली का होना सिन्धु सभ्यता में बताया है अतः जब तक सिन्धु लिपि को पढ़ने में सफलता नहीं मिलती तब तक हम किसी ठोस निष्कर्ष में

नहीं पहुंच सकते हैं। सिन्धु घाटी की खुदाई से जो साक्ष्य मिले हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इस सभ्यता में धार्मिक जीवन और विश्वास की एक दीर्घ परंपरा थी।वहां अर्थव्यवस्था पर्याप्त उन्नत थी , मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के वैभवशाली और विलासमय जीवन के प्रमाण वहां किसी सुसंगठित आर्थिक व्यवस्था का होना बतलाती है।

4.9 तकनीकी शब्दावली

1. प्राचीरयुक्त - दीवारयुक्त
2. अन्नागार- अन्न रखने का सुरक्षित स्थान
3. मरणेत्तर जीवन - मृत्यु के बाद का जीवन

4.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 4.3 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर देखने के लिए पढ़े इकाई 4.3

इकाई 4.3 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देखने के लिए पढ़े इकाई 3

इकाई 4.7 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर देखने के लिए पढ़े इकाई 4.7

इकाई 4.7 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देखने के लिए पढ़े इकाई4.7

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

2. वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

3.ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्माःप्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद,1984

4. ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

4.12 सहायकउपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

2. Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90,pp. 71-82

3. Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram Manoharlal,New Delhi,1990

4. Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

5. Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995

6. Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

7.Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3rd edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968

4.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सिन्धु सभ्यता के नगरों का परिचय दीजिए।

2.सिन्धु नागरिकों के व्यापार एवं विदेशी सम्पर्क पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई पांच-सिन्धु सभ्यता की भाषा,लिपि,एवं पतन

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 सिन्धु सभ्यता की भाषा एवं लिपि

5.3.1 लिपि का उत्पत्ति

5.3.2 लिपि पढ़ने का प्रयास

5.4 सिन्धु सभ्यता का पतन

5.4.1 सिन्धु नागरिकों की आत्मघाती कमजोरियां

5.4.2 आर्यों का उत्तरदायित्व

5.4.3 विदेशी तत्वों की भूमिका

5.4.4 प्राकृतिक आपदाऐं

5.7 साराशं

5.8 तकनीकी शब्दावली

5.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

सिन्धु सभ्यता से संबंधित पहली तीन इकाइयों से आपको इकाई सिन्धु सभ्यता के विस्तार, क्षेत्र तथा कालक्रम,सभ्यता की उत्पत्ति, विकास, निरन्तरता तथा विशेषताएं एवं सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर एवं कस्बे, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन, विदेशी ब्यापार एवं सम्पर्क से संबंधित विभिन्न पहलुओं के विषय में जानकारी हो गयी होगी। इस इकाई में आपको सिन्धु सभ्यता की भाषा-लिपि एवं सभ्यता के पतन के बारे में जानकारी दी जायेगी।

सिन्धु सभ्यता के लगभग 1000 से अधिक स्थलों का अबतक उत्खनन हो चुका है और उत्खनित स्थलों से 2000 से अधिक मुहरों की प्राप्ति हुई है। इन मुहरों कुछ मृद्भाण्डों और धौलावीरा से प्राप्त 10 बड़े अभिलेखों में हमें सिन्धु सभ्यता की लिपि के प्रमाण मिलते हैं। इन पुरावशेषों में सांकेतिक लिपि चिह्नों में कोई भाषा लिखी गयी है।

भाषा और लिपि की अनभिज्ञता के कारण हम अभी तक सिन्धु सभ्यता के प्रारंभिक ज्ञान तक ही सीमित हैं। हमें कोई रोसेट्टा स्टोन की भांति का द्वि-भाषी अभिलेख मिल जाये तो हम सिन्धु सभ्यता के विषय में, उनके जीवन दर्शन के बारे में और अनेकानेक बातों के बारे में जानकारी पा सकेंगे । अभी तो हमें यह भी नहीं पता कि इस सभ्यता का अंत कैसे हुआ , उनके समक्ष क्या चुनौतियां थीं। पुरावशेषों के अध्ययन एवं विश्लेषण द्वारा विद्वानों ने इन प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिस की है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको सिन्धु सभ्यता की भाषा-लिपि एवं सभ्यता के पतन के बारे में जानकारी देना है, इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- सिन्धु सभ्यता की भाषा-लिपि

2- सिन्धु सभ्यता के पतन

5.3 सिन्धु सभ्यता की भाषा एवं लिपि

सिन्धु लिपि की उत्पत्ति के संबंध में अभी आधिकारिक रूप से कुछ भी कहना प्रासंगिक नहीं है; संभवतः भविष्य की खोज ही इस विषय में सम्यक प्रकाश डाल पायेगी। यहां पर इस विषय को समझने में आपको प्रख्यात विद्वान डेविड डिरिंगर का कथन महत्वपूर्ण हो सकता है। डिरिंगर के अनुसार सिन्धु सभ्यता की लिपि सांकेतिक थी,किन्तु यह स्थापित करना अत्यंत कठिन है कि यह स्थानीय थी या बाहर से लायी गयी थी। इस लिपि और कीलाक्षर लिपि तथा प्राचीन एलमाइट लिपियों की पूर्वज लिपि में कोई संबंध रहा होगा लेकिन यह स्थापित करना कठिन है कि यह संबंध क्या था। इस संबंध कुछ अनुमान लगाये जा सकते हैं ; जैसे- सिन्धु लिपि शायद उस लिपि से उत्पन्न हुई जो इस समय अज्ञात है और शायद जो कीलाक्षर लिपि और एलमाइट लिपि की भी पूर्वज थी। यह भी हो सकता है कि तीनों ही लिपियों का जन्म स्थानीय हो लेकिन इनमें एक लिपि कीलाक्षर लिपि या पुरानी एलमाइट लिपि का प्रतिरूप थी, क्योंकि वह मौलिक लिपि थी और शेष दो लिपियों का जन्म उस प्रेरणा का परिणाम था जो लेखन कला के कारण अस्तित्व में आ चुकी थी।

सिन्धु लिपि, अर्द्ध-सांकेतिक लिपियों के परिवार से संबंधित प्रतीत होती है। इसमें 400-500 विभिन्न चिह्न हैं, लेकिन मूल चिह्न 62 हैं और शेष उन्हीं के परिवर्तित रूप हैं। परिवर्तित रूप मूल चिह्नों या अक्षरों में मात्रा या अर्द्ध-अक्षर या अन्य अक्षर को जोड़कर बनाये गये लगते हैं। उदाहरण के लिए मीन या मछली चिह्न से अनेक प्रकार के सरल और क्लिष्ट अक्षर बने मिलते हैं। कुछ मुद्राओं से ऐसा लगता है कि यह लिपि दायें से बायें लिखी जाती रही होगी।

5.3.1 लिपि का उत्पत्ति

अनेक विद्वानों ने सिन्धु लिपि की उत्पत्ति के विषय में प्रकाश डालने का प्रयास किया है। सर जॉन मार्शल, रैवरैण्ड हैरस जैसे विद्वानों सिन्धु सभ्यता का तादात्मीकरण द्रविढ़ सभ्यता से स्थापित करने का सुझाव देते हैं। रैवरैण्ड हैरस तो सिन्धु लिपि को बायें से दायें पढ़ते हैं और उसे तमिल भाषा का पूवै रूप् बतलाते हैं। विद्वान पुरालिपिशास्त्री वैडल ने अपनी पुस्तक दि इण्डो सुमेरियन सील्स डिसाइफर्ड में सिन्धु लिपि का संबंध सुमेर की भाषा और लिपि के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है। वैडल का मानना है कि चौथी सहस्राब्दी ईसापूर्व में सुमेरियाइयों ने सिन्धु घाटी में अपना एक उपनिवेश स्थापित कर लिया था और वहां अपनी भाषा तथा लिपि को भी प्रचलित किया। विश्व की प्राचीनतम लिपियों में वस्तुतः अपनी चिह्न-सांकेतिक प्रवृत्तियों के कारण पर्याप्त एकरूपता दृष्टिगोचर होती है। सिन्धु लिपि और मिस्र, क्रीट ,सुमेर आदि देशों की लिपियों में यह एकरूपता स्वाभाविक है, वर्तमान साक्ष्यों के प्रकाश में यह कहना कठिन है कि सिन्धु नागरिकों ने अपनी लिपि सुमेर से प्राप्त की थी या सुमेर के लोगों ने अपनी लिपि सिन्धु घाटी से।

दि स्क्रिप्ट ऑफ हड़प्पा एण्ड मोहनजोदड़ो में जी.आर. हण्टर , सांकेतिक लिपि की प्रकृति बताते हुए लिखते हैं कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुद्राओं के बहुत से लिपि-चिह्न प्राचीन मिस्र की सांकेतिक लिपि से मिलते हैं। विशेषतौर पर वे चिह्न जो देवी-देवताओं को मानव रूप में प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त किये गये हैं, यहां सिन्धु सभ्यता की लिपि और मिस्र की लिपि में अद्भुत समानता मिलती है। हण्टर आगे बताते हैं कि एसे चिह्नों का एक भी पर्याय हमें सुमेर की लिपि या प्रोटो-एलमाइट लिपि में नहीं मिलता है, साथ ही हण्टर कहते हैं कि देखने वाली बात यह है कि हमें कई ऐसे चिह्नों के पर्याय प्रोटो-एलमाइट लिपि और विशेषकर जैम्दैत-नस्र अभिलेखों में मिलते है। अतः यह स्पष्ट है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की लिपि कुछ मिस्र की लिपि से और कुछ मेसोपोटामिया का लिपि से ली गयी है। यह भी संभव है कि तीनों लिपियों को जन्म देने वाली कोई अन्य लिपि हो हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की लिपि में मिस्र का तत्व बाहर से लिया गया हो।

5.3.2 लिपि पढ़ने का प्रयास

वर्तमान तक सिन्धु लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है, इस संबंध में सभ्यता के 20वीं सदी के तीसरे दसक में प्रकाश में आने के बाद से ही प्रयास प्रारंभ हो चुके थे लेकिन प्रायः 90 वर्ष बीत जाने पर भी सिन्धु लिपि एक पहेली बनी है। इस बारे में खोज करने पाले प्रायः सभी विद्वानों का मानना है कि इस लिपि का अनुवाद करने के लिए उपयुक्त साधन अभी तक प्राप्त नहीं हो सके हैं। पुरालिपिशास्त्रियों को आवश्यकता है एक द्विभाषी अभिलेख की, जिसमें एक भाषा का हमें पूर्ण ज्ञान हो या फिर एक ऐसे लंबे शिलालेख की प्राप्ति हो जिसमें कुछ महत्वपूर्ण भाग बारबार प्रयुक्त हों। अभी तक हमें जो भी अभिलेख मिले हैं वे छोटे हैं और उनमें औसत रूप से केवल छह अक्षर हैं; सबसे लंबा शिलालेख भी जो मिला है उसमें केवल 17 अक्षर हैं।

पिछले कुछ वर्षो में फिनिश रिसर्च टीम , रूसी भारतविद् तथा एस.आर.राव द्वारा सिन्धु लिपि को पढ़े जाने का दावा प्रस्तुत किया गया लेकिन ये सभी दावे आशंकाओं को परिपूर्ण नहीं कर पाये और अभी भी सिन्धु भाषा और लिपि एक अबूझ पहेली बनी हुई है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. धौलावीरा से प्राप्त 15 बड़े अभिलेखों में हमें सिन्धु सभ्यता की लिपि के प्रमाण मिलते हैं
2. सिन्धु लिपि में 600-700 विभिन्न चिह्न हैं, लेकिन मूल चिह्न 92 हैं
3. पुरालिपिशास्त्री वैडल ने सिन्धु लिपि का संबंध मिस्र की भाषा और लिपि के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है।
4. रैवरैण्ड हैरस सिन्धु सभ्यता का तादात्मीकरण द्रविढ़ सभ्यता से स्थापित करने का सुझाव देते हैं।
5. दि स्क्रिप्ट ऑफ हड़प्पा एण्ड मोहनजोदड़ो नामक पुस्तक जी.आर. हण्टर द्वारा लिखी गयी है।
6. चिह्न-सांकेतिक प्रवृत्तियों के कारण सिन्धु लिपि और मिस्र, क्रीट ,सुमेर आदि देशों की लिपियों में एकरूपता स्वाभाविक है।

5.4 सिन्धु सभ्यता का पतन

लिपि की अनभिज्ञता के कारण हम स्पष्ट रूप से यह नहीं कह सकते कि सिन्धु सभ्यता का पतन किन कारणों से हुआ लेकिन उत्खनन के फलस्वरूप जो तथ्य प्रकाश में आये उनके आधार पर इस सभ्यता के पतन के लिए जिम्मेदार कारणों का विश्लेषण विद्वानों ने किया है। इनके अन्तर्गत विद्वानों ने सिन्धु सभ्यता के पतन में आत्मघाती कमजोरियों का योगदान, आर्यों का उत्तरदायित्व, विदेशी तत्वों की भूमिका और प्राकृतिक

आपदाओं के योगदान को शामिल किया है।इन कारणों को अध्ययन की सुविधा के लिए शीर्षकवार समझा जा सकता है-

5.4.1 सिन्धु नागरिकों की आत्मघाती कमजोरियां

1. सुमेर के साथ व्यापारिक संबंध के बावजूद भी सिन्धु नागरिकों ने तत्कालीन सर्वाधिक विकासवादी सभ्यता से अपने विकास के लिए किसी भी प्रकार के तकनीकी ज्ञान को सीखने का प्रयास नहीं किया, जो कि प्रत्येक विकासशील सभ्यता के लिए आवश्यक हैं।

2. हड़प्पा नागरिकों की मानसिक स्थिरता का पता उनकी लिपि से लगता है, जिसमें 20 चिन्हों से अधिक नहीं मिलते हैं और बहुधा 10 चिन्हों से अधिक प्रयोग नहीं किया गया है। दीर्ध काल में भी इसमें परिवर्तन न होना सिन्धु नागरिकों के अत्यधिक कम मानसिक परिवर्तन के दोष का द्योतक है।

3. हड़प्पा से प्राप्त फलक चौरस और आसानी से मोड़े जा सकते हैं, जबकि सुमेर निवासियों ने बहुत पहले ही ऐसे चाकू तथा भाले बनाये थे जिनके मध्यभाग में अतिरिक्त शक्ति के लिए तीलियां लगायी गयी थीं और कुठारों के सिर सछिद्र बनाये थे जिनमें दण्ड डाला जा सकता था। यह सत्य है कि हड़प्पा वासियों ने भी ऐसे आरे का निर्माण कर लिया था जिसमें लहरदार दांत थे। यह बढ़ई के लिए तो उपयोगी था किन्तु सुरक्षा के रूप में उसका कोई उपयोग नहीं था।

ये कुछ उदाहरण हैं जो सिन्धु सभ्यता में गति या बदलती हुई परिस्थितियों के साथ सामन्जस्य बैठाने में असमर्थता के दोष को बतलाती हैं।सिन्धु नागरिकों ने अपनी रक्षा के विषय में कोई विशेष आविष्कार नहीं किये थे,यही कारण है कि जब उनपर आक्रमण हुआ तो वे अपने से अविकसित लोगों से भी पराजित हो गये।

5.4.2 आर्यों का उत्तरदायित्व

आर्यों ने भारत आगमन से पूर्व अनेक नगरीय संस्कृतियों को क्षति पहुंचायी थी। इन्द्र ने हरियूपिया के ध्वंसावशोषों को समाप्त किया था, जिस जाति को समाप्त किया गया था उससे यवजावति नदी (आधुनिक रावी नदी) के किनारे सामना हुआ था। इससे हड़प्पा में किसी वास्तविक युद्ध की संभावना होती है। अतः प्रतीत होता है कि हड़प्पा में स्थित कब्रिस्तान ‘एच‘ जो कि बाद का है, अवश्य ही आर्यों से संबंधित होगा।

ऋग्वेद में यह उल्लेख प्राप्त है कि इन्द्र ने अनेक नदियों को मुक्त किया था, जो कि कृत्रिम अवरोधकों द्वारा रोकी गयी थीं। ‘‘चुढ़ैल वृत्र पहाड़ी ढलान में एक बड़े सांप के समान लेटी थी, जब इन्द्र द्वारा इस चुड़ैल को चूर दिया गया तो पत्थर गाड़ी के पहियों की भांति लुड़कने लगे।‘‘ इस कथन का आशय किसी बांध के विनाश से ही हो सकता है। अनेक भाषाशास्त्रियों के अनुसार ‘‘वृत्र‘‘ शब्द का अर्थ ‘‘ अवरोधक‘‘ होता है। अगर इस विचार को मान लिया जाय तो आर्यों ने सिन्धु नागरिकों द्वारा सिन्धु नदी पर खड़े किये अवरोधकों को समाप्त

कर सैंधव्यों को भूखे मरने को छोड़ दिया। यह तथ्य ज्ञात है कि सिन्धु सभ्यता के इतिहास के अन्तिम चरण में दरिद्रता की स्थिति पैदा हो गयी थी।

ऋग्वेद में सौ स्तभों वाले शत्रु के किलों का वर्णन है, जिनसे कि आर्यों का मुकाबला हुआ। इसके अलावा ऋग्वेद में लिंग पूजकों के भय का भी वर्णन है। लिंग पूजकों का यह भय यजुर्वेद काल में समाप्त हो गया, जब इसको मान्यता दे दी गयी। उत्तर वैदिक काल में शिव प्रमुखता पाने लगे और यजुर्वेद में तो शिव, महेश्वर या महान् देव के रूप में पूजे जाने लगे। उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों में मातृदेवी का उल्लेख मिलता है। उपनिषद के ऋषियों द्वारा किया गये चिन्तन में वैदिक देवताओं को प्रमुखता नहीं दी गयी है, वरन् इसमें सिन्धु सभ्यता के धार्मिक तत्वों का समावेश मिलता है। इन तथ्यों से पता चलता है कि आर्यो ने सिन्धु सभ्यता को क्षति पहुंचायी लेकिन आने वाले युगों में आर्यों ने लिंग पूजा और दस्युओं को अपनी सभ्यता में आत्मसात कर लिया।

इन तथ्यों के बावजूद भी सिन्धु सभ्यता के पतन में आर्यों का उत्तरदायित्व सन्देहास्पद प्रतीत होता है, क्योंकि यदि हड़प्पा को आर्यों द्वारा ध्वंस या समाप्त किया गया तथा कब्रिस्तान ''एच'' को आर्यों से संबंधित किया जाये तो यह तार्किक दृष्टि से अटपता लगता है कि हड़प्पा के समीप ही स्थित कालीबंगन पर आक्रमण नहीं किया गया। इसके अलावा सरस्वती और पंजाब क्षेत्र की अनेक हड़प्पीय बस्तियां, इन्द्र और अग्नि के आक्रमण के पूर्व ही पतनोन्मुख हो चुकी थीं। और यह ज्ञात है कि काली चमड़ी वाले लोग अन्य स्थानों को पलायन कर गये थे। पुंरातात्विक सामग्री से भी यह प्रमाणित होता है कि नवागंतुकों द्वारा इन स्थानों को अधिगृहित नहीं किया गया वरन् इन्हें त्याज्य समझ कर छोड़ दिया गया। यह अजीब है कि कोई इन स्थानों की जीतकर इन्हें अधिकृत न कर छोड़ दें ।

5.4.3 विदेशी तत्वों की भूमिका

रानाघुण्डई के प्राचीनतम स्तर से पता चलता है कि अश्वारोही आक्रामकों के दल वहां 3000 ई0 पू0 में विद्यमान थे, वे वहां कृषि सभयता को स्थान देकर शीध्र ही लुप्त हो गये। यह कृषि सभ्यता , सिन्धु सभ्यता के समकालीन थी। लेकिन 2000 ई0 पू0 के आसपास गावों को जलाने तथा एक नवीन, भद्दे आकार के मृत्तिका पात्रों की प्राप्ति से पुनः आक्रामकों की उपस्थिति का पता चलता है। इसके बाद अन्य आक्रामक आये जो अरंजित ढक्कनदार मृतिका पात्रों का प्रयोग करते थे। ऐसे ही प्रमाण उत्तरी बलूचिस्तान में भी मिलते हैं जबकि दक्षिणी बलूचिस्तान में एक अनैतिक संस्कृति ने सुत्कजेन्डोर के समीप शाही टंप में बस्ती बना ली थी।

प्रतीत होता है कि बलूचिस्तान के आक्रामकों ने वहां के ग्रामीण लोगों को सिन्धु नगरों में शरण लेने पर बाध्य किया। विदेशी तत्वों का प्रभाव और उनके द्वारा सिन्धु नगरों में उत्पन्न अस्थिरता का पता कुछ तथ्यों से

लगता है। हड़प्पा में बाद की बस्तियों की संरचना निकृष्ट कोटि की है। भवनों के स्थान पर झोपड़ियां बनायी जाने लगीं। जल-वितरण प्रणाली को त्याग दिया गया, मृणभाण्डों के निर्माण में प्रयुक्त तकनीकी परिवर्तित हो गयी। बाद के आभूषण निम्न स्तर के हैं। शहर के मध्य में और कभी कभी सड़क के बीच में ईंट के भट्टे बनाये जाने लगे। इसी प्रकार के पतनोन्मुख चिन्ह काठियावाढ़ प्रायद्वीप के स्थलों में भी मिलते हैं। लोथल का अन्य नगरों के साथ सम्बन्ध धीरे-धीरे कमजोर और फिर टूट गया।

5.4.4 प्राकृतिक आपदाऐं

कुछ प्राकृतिक आपदायें एव कमजोरियां भी सिन्धु सभ्यता के पतन में जिम्मेदार रहीं थीं,यथा-

1. सिन्धु सभ्यता के नगरों की बढ़ती जनसंख्या की भोजन आपूर्ति के लिए कृषकों की उत्पादन बढ़ाने में असमर्थता।
2. सिन्धु सभ्यता के नगरों में लगातार आने वाली बाढ़ें ।
3. एक प्रमुख हाइड्रोलोजिस्ट के अनुसार एक टेक्टोनिक किया से समुद्र का जल स्तर उठ गया, जिससे सिन्धु नगर जल स्तर के नीचे आ गये और उनमें बाढ़ आ गयी, मोहनजोदड़ो में जल स्तर के नीचे भी बस्ती के प्रमाण मिलते हैं।
4. सिन्धु का बहाव नील नदी से दुगुना है।
5. मिटटी के लवणीकरण की गति बढ़ना , राजपुताना के मरूस्थल का फैलाव तथा सिन्धु नदी द्वारा अपना मार्ग परिवर्तित करना भी ऐसे कुछ कारण हैं जिन्होंने सिन्धु संस्कृति के पतन में योगदान दिया।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. हड़प्पा नागरिकों की मानसिक स्थिरता का पता उनके व्यापारिक क्रियाकलापों से लगता है।
2. हड़प्पा वासियों ने कुठारों के सिर सछिद्र बनाये थे जिनमें दण्ड डाला जा सकता था।
3. ऋग्वेद में हजार स्तभों वाले शत्रु के किलों का वर्णन है।
4. आर्यों ने भारत आगमन से पूर्व अनेक नगरीय संस्कृतियों को क्षति पहुंचायी थी।
5. सिन्धु का बहाव नील नदी से दुगुना है।
6. हड़प्पा में बाद की बस्तियों की संरचना निकृष्ट कोटि की है।

5.5 साराशं

वर्तमान तक हम भाषा और लिपि को नहीं पढ़ पाये हैं और इस अनभिज्ञता के कारण ही हम सिन्धु सभ्यता के प्रारंभिक ज्ञान तक ही सीमित रह गये हैं। हम स्पष्ट रूप से उनके धर्म-दर्शन के विषय में नहीं कह सकते हैं,

हम यह नहीं जानते हैं कि उन्होंने अपनी राजव्यवस्था किस प्रकार बनायी थी, व्यापार के उनके क्या नियम या तरीके थे और वह किस प्रकार संगठित था, हम यह भी नहीं जानते हैं कि सिन्धु नागरिकों के समक्ष वे कौन सी चुनौतियां थीं या उनकी सभ्यता को किस बात से खतरा था। सिन्धु सभ्यता के कुछ स्थलों में सभ्यता एकाएक समाप्त दिखती है जबकि दूसरे अनेक स्थलों में यह शनैः शनैः समाप्त होती दिखती है या इन स्थलों में धीरे-धीरे अन्य सभ्यताऐं इनका स्थान ले लेती हैं। अतः इस सभ्यता की भाषा एवं लिपि की यदि जानकारी हो जाये तो इस संबंध में भी ठोस निष्कर्ष सामने आ सकते हैं।

5.6 तकनीकी शब्दावली

मृद्भाण्ड - मिट्टी के बरतन
द्वि-भाषी - दो भाषाओं वाला
रोसेट्टा स्टोन - इस द्वि-भाषी अभिलेख की सहायता से प्राचीन मिस्र की भाषा पढ़ी गयी थी
अश्वारोही - घोड़ों पर सवार
हाइड्रोलोजिस्ट - जल विज्ञान का ज्ञाता

5.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 5.3 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर -असत्य
इकाई 5.3 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - असत्य
इकाई 5.3 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - असत्य
इकाई 5.3 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर - सत्य
इकाई 5.3 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर - सत्य
इकाई 5.3 के प्रश्न संख्या 6 का उत्तर - सत्य
इकाई 5.4 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर - असत्य
इकाई 5.4 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर - असत्य
इकाई 5.4 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर - असत्य
इकाई 5.4 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर - सत्य
इकाई 5.4 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर - सत्य
इकाई 5.4 के प्रश्न संख्या 6 का उत्तर - सत्य

5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स, इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

5.9 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

2. Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90,pp. 71-82

3. Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans, Munshiram Manoharlal,New Delhi,1990

4. Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

5. Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995

6. Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

7. Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3rd edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. सिन्धु सभ्यता की भाषा एवं लिपि पर एक निबंध लिखिए।

2. सिन्धु सभ्यता के पतन पर प्रकाश डालिए।

इकाई छह

ताम्र पाषाण काल

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 ताम्रपाषाण संस्कृति का काल क्रम

6.4 प्रमुख ताम्र-पाषाण संस्कृतियाँ

    6.4.1 जोधपुर-गणेश्वर संस्कृति

    6.4.2 अहार संस्कृति

    6.4.3 कायथा संस्कृति

    6.4.4 मालवा संस्कृति

    6.4.5 जोर्वे संस्कृति

    6.4.6 गैरिक मृदभांड संस्कृति (OCP)

6.5 ताम्रपाषाण संस्कृतियों की विशेषताएँ

    6.5.1 पाषाण और ताम्र औज़ारों का प्रयोग

    6.5.2 विशिष्ट मृदभांडों का प्रयोग

    6.5.3 पशुपालन और खेती

    6.5.4 शिल्प

    6.5.5 विश्वास

    6.5.6 सामाजिक विषमता

6.6 ताम्रपाषाण काल से संक्रमण

6.7 सारांश

6.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

नवपाषाण काल में मानव ने खेती करना और चाक का प्रयोग करना सीखा और वह मिट्टी की मदद से तरह-तरह के बर्तन बनाने लगा। इन बर्तनों में अनाज और पानी को भरकर रखा जा सकता था। बाद में जब मानव ने स्थायी बस्तियाँ बनाना शुरू किया, खेती का विस्तार हुआ और जनसंख्या बढ़ने लगी तो नई तकनीक और सामग्री के उपयोग की सम्भावना बढ़ने लगी। इनमें धातु का प्रयोग महत्वपूर्ण था, सर्वप्रथम मानव ने धातु के रूप में ताम्बे का प्रयोग करना सीखा था। चूँकि ताम्बे को उसके अयस्क से अलग करना आसान था और उसको गलाने के लिए अपेक्षतया कम ताप की ज़रूरत थी, सम्भवतः पहली बार प्रयुक्त होने वाली धातु के रूप में ताम्बे के इस्तेमाल का यह कारण रहा था। इस काल में ताम्बे के साथ- साथ पत्थर के औज़ारों का प्रयोग ज़ारी रहा, इसीलिए इस तरह के मिश्रित औज़ारों का प्रयोग करने वाली संस्कृतियों को ताम्र-पाषाण संस्कृतियों के दायरे में रखा गया है। तांबे से बने हुए औज़ार पत्थर से बने औज़ार से ज्यादा प्रभावी थे, क्योंकि इनमें तीख़ी धार बनाना सम्भव था और साथ ही गलाकर किसी भी आकार में इन्हें आसानी से ढाला जा सकता था।

ताम्रपाषाण युग के लोग मुख्यतः ग्रामीण समुदाय बनाकर रहते थे और देश के ऐसे विस्तृत क्षेत्र में फैले थे जहाँ पहाड़ी ज़मीन और नदियाँ थीं। इसके विपरीत, हड़प्पा निवासी कांसे का इस्तेमाल करते थे और सिंधु घाटी के बाढ़ वाले मैदानों में हुई उपज की बदौलत नगर निवासी हो गए थे। भारत में ताम्रपाषाण अवस्था की बस्तियाँ दक्षिण-पूर्वी राजस्थान, मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग, पश्चिमी महाराष्ट्र तथा दक्षिण-पूर्वी भारत में पाई गई हैं। दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में दो पुरास्थलों की खुदाई हुई हैं, एक अहार में और दूसरा गिलुंद में। ये पुरास्थल बनास घाटी के सूखे अंचलों में स्थित हैं। पश्चिमी मध्य प्रदेश में मालवा, कायथा और एरण की खुदाई हुई है। मालवा मृदभांड मध्य और पश्चिमी भारत की मालवा ताम्रपाषाण संस्कृति की विलक्षणता है, जो ताम्रपाषाण मृद्भांडों में उत्कृष्टतम माना जाता है। इसके कुछ मृदभांड और अन्य संस्कृति सामग्री महाराष्ट्र में भी पाई गई है। परंतु सबसे विस्तृत उत्खनन पश्चिमी महाराष्ट्र में हुए हैं। उत्खनित पुरास्थल हैं- अहमदनगर जिले में जोर्वे, नेवासा और दैमाबाद, पुणे जिले में चंदोली, सोनगाँव और इनामगाँव, प्रकाश और नासिक। ये सभी पुरास्थल जोर्वे संस्कृति के हैं। जोर्वे संस्कृति ने मालवा संस्कृति से बहुत कुछ ग्रहण किया है, किंतु इसमें दक्षिणी नवपाषाण संस्कृति के तत्त्व भी हैं। कई ताम्रपाषाण स्थल इलाहाबाद जिले के विंध्य क्षेत्र में पाए गए हैं। पूर्वी भारत में गंगा के तटवर्ती क्षेत्र में चिरांद के अलावा, बर्दवान जिले के पांडुराजार ढिबि और पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले में महिषादल उल्लेखनीय हैं। कुछ और पुरास्थलों की खुदाई हुई है, जिनमें उल्लेखनीय हैं-बिहार

में सेनुवार, सोनपुर और ताराडीह तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में खैराडीह और नरहन। इस इकाई में हम इन विभिन्न ताम्रपाषाण संस्कृतियों के विस्तार, उनकी विशिष्टता तथा कालक्रम की चर्चा करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप ताम्रपाषाण संस्कृतियों के स्वरूप को समझ सकेंगे साथ ही विभिन्न ताम्रपाषाण संस्कृतियों के विस्तार, कालक्रम तथा उनकी विशेषताओं के विषय में जानकारी हासिल कर सकेंगे । इसके अतिरिक्त आप इस अध्याय से ताम्रपाषाण संस्कृतियों के अन्य स्थानीय संस्कृतियों के साथ सह-सम्बंध की अवधारणा और ताम्रपाषाण संस्कृति से लोहे के उपयोग की ओर संक्रमण की स्थिती का अध्ययन कर सकेंगे

6.3 ताम्रपाषाण संस्कृति का कालक्रम

स्थायी ताम्रपाषाण सभ्यता ताम्र अयस्क से सम्पन्न क्षेत्रों में ही विकसित हुई। भारत में ताम्र अयस्क राजस्थान, गुजरात और बिहार आदि कई प्रदेशों में प्राप्त होता है, परंतु सबसे समृद्ध तांबे की खानें राजस्थान में ही हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ हिस्सों में तांबे का प्रयोग 3000 ई.पू. से ही शुरू हो गया था। सबसे प्राचीन ताम्र संस्कृति गणेश्वर-जोधपुर की है, जिसका काल-खंड लगभग 3200 ई. पू. के निक्षेपों से शुरू होता है। तथा, यह स्थल 2200 ई.पू. तक फलता-फूलता रहा था. अहार संस्कृति का काल 2500 और 1599 ई० पू० के बीच कहीं रखा जाता है और गिलुंद उस संस्कृति का स्थानीय केंद्र माना जाता है। जोर्वे संस्कृति की तिथि 1400 से 1000 ई. पू. के बीच की है तथापि इसके कुछ तत्व 700 ई. पू. तक देखने को मिलते हैं, इस संस्कृति के तत्वों का प्रसार मालवा के इलाक़े में भी हुआ था।

आद्य ऐतिहासिक संस्कृतियों का नामकरण उस स्थान के नाम के आधार पर हुआ जहां यह संस्कृतियाँ पहली बार पहचानी गई। सामान्यतः पुरातात्त्विक संस्कृतियों को वहां की लोकप्रिय मृद्भाण्ड परम्परा के नाम से भी जाना जाता है। इसका मतलब यह नहीं लगाया जा सकता कि वहां केवल उसी प्रकार की मृद्भाण्ड परम्परा पाई गई हो। पुरातात्त्विक संस्कृतियों को उस क्षेत्र विशेष के नाम से भी जाना जाता है, जिस क्षेत्र में उस संस्कृति से जुड़े पुरातात्त्विक स्थलों का केन्द्रीकरण हो। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझा जाना चाहिए कि उस क्षेत्र विशेष से बाहर उस संस्कृति के स्थल नहीं हैं। उदाहरण के लिए मालवा-संस्कृति के स्थल मालवा से बाहर महाराष्ट्र भी मिलते हैं। इसी प्रकार अहार-संस्कृति के कुछ स्थल मालवा में, अपने मूल क्षेत्र के बाहर।

भारत के मध्य और पश्चिमी भागों में ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ 1200 ई० पू० में या 1000 ई० पू० आते-जाते लुप्त हो गई, केवल जोर्वे संस्कृति 700 ई० पू० तक जीवित रही। फिर भी देश के कई भागों में ताम्रपाषाणयुगीन काले व लाल मृदभांड का बनना ऐतिहासिक काल में भी ई० पू० दूसरी सदी तक जारी रहा। परंतु कुल

मिलाकर मध्य तथा पश्चिमी भारत की आरंभिक ऐतिहासिक संस्कृति तथा उनकी ताम्रपाषाण संस्कृति के बीच लगभग चार से छह शताब्दियों का अंतराल रहा होगा। पश्चिमी भारत और पश्चिम मध्य प्रदेश में ताम्रपाषाण बस्तियों के लुप्त होने का कारण लगभग 1200 ई० पू० के बाद से वर्षा की कमी मानी जाती है। पर मध्य गंगा क्षेत्र और पश्चिम बंगाल में ये बसावटें बाद तक बनी रहीं। ऐसा लगता है कि पश्चिमी भारत में ताम्रपाषाण काल के लोग ऐसी काली चिकनी मिट्टी वाले क्षेत्र में थे जहाँ सूखे मौसम में जमीन गोड़ना कठिन होता है। अतः वे अपने ज़मीन खोदने वाले डंडे के सहारे लम्बे समय तक टिक नहीं सके। लेकिन लाल मिट्टी वाले क्षेत्रों में, खासकर पूर्वी भारत में ताम्रपाषाण अवस्था के तुरंत बाद लौह अवस्था का विकास हुआ और उसने धीरे-धीरे लोगों को पूरा खेतिहर बना दिया। इसी तरह मध्य गंगा के मैदान में स्थित ताम्रपाषाण संस्कृतियों का विकास भी हुआ। वहीं दक्षिणी भारत के कई स्थलों पर ताम्रपाषाण संस्कृति ने लोहे का इस्तेमाल करने वाली महापाषाण संस्कृति का रूप ले लिया।

6.4 प्रमुख ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ

नीचे आपके अध्ययन के लिए कुछ प्रमुख ताम्रपाषाण संस्कृतियों के बारे में विस्तार से बतलाया जा राह है:-

6.4.1 जोधपुर-गणेश्वर संस्कृति

गणेश्वर-जोधपुरा संस्कृति, राजस्थान के उत्तर पूर्वी हिस्से में केन्द्रित है। इस संस्कृति से जुड़े 80 से अधिक स्थलों की खोज हो चुकी है। सर्वाधिक स्थल सीकर जिले में अवस्थित है लेकिन जयपुर और झुंझनू जिलों में भी बहुत से स्थल स्थित है। इस संस्कृति का क्षेत्रीय केंद्रीकरण ताम्र अयस्क से जुड़े बालेश्वर और खेतड़ी जैसे स्थानों में है। जहां पर प्राचीन काल से ताम्बे का प्रयोग होता रहा है। जोधपुरा, साहिबी नदी के किनारे स्थित है जहां से पहली बार गणेश्वर-जोधपुरा संस्कृति के प्रमाण मिले। यहां विशिष्ट प्रकार के मृद्भाण्ड बनाए जाते थे, जिनका रंग नारंगी और लाल हुआ करता था तथा विभिन्न प्रकार के डिजाइन उत्कीर्ण होते थे। आकृतियों में पाएदार तश्तरी विशिष्ट है, जिसके ऊपर मोटा लेप लगा रहता था। जोधपुरा से प्राप्त अंशशोधित तिथियाँ 3309-2700 ई। पू। से 2879-2348 ई। पू। के बीच की है। बाद में जोधपुर से मिलते जुलते मृद्भाण्ड नीम का थाना के निकट गणेश्वर से प्राप्त हुए। तिथिक्रम की दृष्टि से गणेश्वर स्थल विशेष रूप से अवलोकनीय है। यह राजस्थान में खेत्री ताम्र-पट्टी के सीकर-क्षेत्र के तांबे की समृद्ध खानों के निकट पड़ता है। इस क्षेत्र से खुदाई में निकली तांबे की वस्तुएँ हैं-तीर के नोंक, बरछे के फल, बंसियाँ, सेल्ट, कंगन, छेनी आदि। इनमें से कुछ की आकृतियाँ सिंधु स्थलों में मिली इन वस्तुओं की आकृतियों से मिलती हैं। पकी मिट्टी की एक ऐसी पिंडिका मिली है जो सिंधु-टाईप से मिलती-जुलती है। इस स्थान में बहुत-से पत्थर के छोटे-छोटे औज़ार (माइक्रोलिथ्स) मिले हैं जो ताम्रपाषाण संस्कृति के परिचायक हैं। चूँकि गणेश्वर के जमाव को 2800-2200 ई०

पू० का माना जाता है, इसलिए इसकी बहुत-सी वस्तुएँ परिपक्व हड़प्पा संस्कृति से पूर्व की हैं। गणेश्वर से प्राप्त चाक पर बने मृद्भाण्ड प्रारंभिक हड़प्पा कालीन मृद्भाण्डों से मिलते-जुलते है। संभवत: प्रारंभिक और परिपक्व हड़प्पाई सभ्यता के लोग गणेश्वर से तांबा प्राप्त कर रहे थे। हड़प्पाई मृदभांड गणेश्वर संस्कृति के दो स्थलों से प्राप्त हो चुके हैं। गणेश्वर से प्राप्त रिज़र्व्ड स्लिप मृद्भाण्ड इसके अलावा केवल हड़प्पा सभ्यता के बनावली तथा कुछ अन्य स्थानों में देखे जा सकते हैं। कुछ अन्य प्रकार के मृद्भाण्ड भी गणेश्वर में मिले हैं जो हड़प्पा सभ्यता की विशेषता रही हैं। गणेश्वर का दोहरे छल्ले वाला पिन कुछ हड़प्पाई स्थलों से भी मिल चुका है। यह सब इस बात की तरफ संकेत करते हैं कि गणेश्वर और हड़प्पाई संस्कृतियों के बीच संपर्क था।

गणेश्वर के लोग आंशिक रूप से कृषि-जीवी और मुख्य रूप से शिकार-जीवी थे। यद्यपि उनका मुख्य शिल्प तांबे की वस्तुएँ बनाना था, तथापि वे वैसे नगरीय तत्त्वों को विकसित नहीं कर पाए जो बाढ़-सिंचित मैदानों की उपज पर आश्रित हड़प्पाई अर्थव्यवस्था में दिखाई देते हैं। इसकी सूक्ष्म-पाषाण वस्तुओं तथा अन्य पाषाण उपकरणों को देखते हुए गणेश्वर संस्कृति को प्राक् -हड़प्पाई ताम्रपाषाण संस्कृति कहा जा सकता है; जिसकी भित्ति पर परिपक्व हड़प्पा संस्कृति खड़ी हुई।

6.4.2 अहार संस्कृति

बनास संस्कृति के 90 स्थलों को रेखांकित किया गया है। जबकि इस संस्कृति के कुछ स्थल मध्य प्रदेश के मालवा के पठार में भी मिले हैं। आहार, गिलुन्द तथा बालाथल इन तीन स्थानों का विधिवत् उत्खनन किया जा चुका है। अहार संस्कृति की विशेषता काले तथा लाल मृद्भाण्ड हैं जिनपर रेखीय और सफेद बुन्दों वाले डिजाइन बने हुए हैं। अहार संस्कृति के स्थल अधिकांशतः नदियों के किनारे पर मिले हैं जिनका आकार 10 हेक्टेयर के आस-पास था। हालांकि, अहार स्वयं कम से कम 11 हे. और गिलुन्द 10.5 हे. का था, इस संस्कृति के अधिकांश स्थल 8-17 कि.मी. के बीच अवस्थित हैं।

अहार, उदयपुर से बाहरी हिस्से में अवस्थित है, अहार की बसावट की शुरुआत की अंशशोधित तिथि क्रमशः ल. 2500 ई.पू। तय की गई है। यहां के मिट्टी के बने हुए मकानों का आधार पत्थरों से बनाया जाता था। दीवारों को मजबूती देने के लिए बांस की बनी जालियों अथवा क्वार्ट्ज के टुकड़ों का प्रयोग किया जाता था। अनुमान है कि इन घरों के छत ढलाव वाले होते थे। फर्श पर काली मिट्टी के साथ नदियों से लाए गए पीले तलछटों को मिलाया जाता था। कई बार नदियों से लाए गए कंकड़ों को भी बिछाया जाता था। ताम्बे की अंगूठी, चूड़ियां, चाकू और कुल्हाड़ी इत्यादि मिले हैं। स्थानीय रूप से ताम्बे को गलाने की प्रक्रिया के प्रमाण भी उपलब्ध हैं। पैर से चलाए जाने वाली चक्की, लाजवर्द सहित कई अर्ध-कीमती पत्थरों के मनके और सूत कातने के लिए चरखे भी पाए गए हैं। चावल के दानों के अतिरिक्त गाय, भैंस, बकरी, भेड़, हिरण, मछली,

कछुआ और मुर्गे की हड्डियां यहां पाई गई हैं। अहार में 2000 ई. पू. के बाद के स्तर पर लोहे का छल्ला और कील प्राप्त हुआ है। बाद के स्तर में तो लोहे की वस्तुएं जैसे तीराग्र, छेनी, कील और साकेट काफी सामान्य रूप से मिलने लगते हैं। हालांकि, जिन स्तरों से ये पाए गए हैं, वे अक्षुण्ण थे या अस्तव्यस्त, यह विवाद का विषय बना हुआ है। इस बात की काफी संभावना है कि यह भारतीय उपमहाद्वीप में लोहे का प्राचीनतम साक्ष्य हो।

गिलुन्द से प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्रियाँ भी अहार से बिल्कुल मिलती-जुलती हैं। गिलुंद में 1500 ई० पू० के आसपास पकी ईंटों का इस्तेमाल हुआ। यदा-कदा वे अपना घर कच्ची ईंटों से बनाते, पर अधिकतर गीली मिट्टी थोप कर बनाते और लगता है घरों पर छप्पर भी दिए जाते थे। लेकिन अहार के लोग पत्थर के बने घरों में रहते थे। संरचनात्मक अवशेषों में कच्ची ईंट की बनी एक संरचना भी थी, जिसका माप 30.48 x 24.28 मीटर था। यह पकी ईंट की एक दीवार का अंग थी, जिसकी नींव पत्थर के टुकड़ों पर रखी गई थी। भंडारण गर्त भी पाए गए हैं। प्राप्त वस्तुओं में सूक्ष्म पाषाण तांबे के टुकड़े और अर्ध कीमती पत्थरों के मनके आदि शामिल हैं। टेराकोटा के बने खिलौने और पशुओं की मूर्तियां भी पाई गई हैं, जिनमें कूबड़दार और लंबे सींगों वाला वृषभ भी है।

बालाथल, उदयपुर जिले में ही अहार संस्कृति का दूसरा महत्त्वपूर्ण केंद्र है। बस्ती के आरंभिक चरण में भीत के बने छोटे-छोटे घरों का अस्तित्व दिखता है, जिनके फर्श को मिट्टी से लीपा गया था। इसी प्रकार मिट्टी से लिपे भंडारण गर्त भी मिले हैं। यहां के परवर्ती काल से एक विशाल मिट्टी की दीवार द्वारा की गई घेरेबन्दी का प्रमाण मिला है, जो पुरातात्त्विक टीले के बिल्कुल मध्य में अवस्थित था। इस सुरक्षा दीवार को जगह-जगह पर पत्थरों के द्वारा मजबूती दी गई थी, जो बुर्ज बनाए जाने का स्पष्ट प्रमाण है। 4.80 मीटर से 5 मीटर के बीच मोटाई वाली इस दीवार से लगभग 500 वर्गमीटर के क्षेत्र को घेरा गया था। बाद के चरण में अपेक्षाकृत बड़े वर्गाकार मकानों का निर्माण होने लगा था।

बालाथल से बड़े पैमाने पर पशुओं की हड्डियां प्राप्त हुई हैं, जिनमें गौर, नीलगाय, चौसिंघा, काला हिरण, मुर्गा, मयूर, कछुआ, मछली और घोंघा आदि शामिल हैं। यहां से प्राप्त हड्डियों के अवशेषों का 5 प्रतिशत जंगली जानवरों का है, जबकि इनमें से 73 प्रतिशत हड्डियाँ मवेशियों की हैं। पाले गए पशुओं में मवेशी के अतिरिक्त भैंस, भेड़, बकरी और सुअर मुख्य थे। गेहूँ, जौ, बाजरे की दो प्रजातियाँ, चना, मूंग, मटर के अतिरिक्त बेर के भी प्रमाण मिले हैं। अनाजों को पत्थर के बने जातों में पीसा जाता था और तवों पर रोटियाँ पकाई जाती थी। चूल्हों का आकार अंग्रेजी अक्षर के यू से मिलता जुलता था जैसा कि आज भी यहां के गांवों में देखा जा सकता है। तिथि निर्धारण के आधार पर, इस सभ्यता को कोटदिजि की पूर्व हड़प्पा कालीन सभ्यता अथवा उत्तर-पूर्वी राजस्थान की गणेश्वर-जोधपुरा संस्कृति के समकालीन कहा जा सकता है।

अहार संस्कृति के केंद्रों में स्टीटाइट (सेलखड़ी), सीप, अगेट, जैस्पर, कार्नेलियन, लापीस लाजुली, ताम्बा काँसा से बनी बहुत सी सामग्रियों का उपयोग होता था। शंख से बने समान स्थानीय रूप से बनाए गए थे। इनकी प्राप्ति निकटतम गुजरात के तटीय क्षेत्र से की जाती होगी।

6.4.3 कायथा संस्कृति

मालवा क्षेत्र में ताम्रपाषाण युगीन कृषि-संस्कृतियों के समृद्ध प्रमाण उपलब्ध हैं जिनमें कायथा संस्कृति, तत्पश्चात अहार संस्कृति और उसके बाद मालवा संस्कृति इस क्षेत्र में फली-फूली। कायथा संस्कृति की अंश-शोधित रेडियोकार्बन तिथि तीसरी सहस्राब्दि के उत्तरार्द्ध में निश्चित की गई है। इसका नामकरण उज्जैन जिले के कायथा नामक स्थान के नाम पर किया गया है जो चम्बल नदी की सहायिका नदी काली सिन्ध की एक सह-प्रवाहिका छोटी काली सिन्ध के किनारे अवस्थित है।

कायथा संस्कृति के स्थलों पर तीन तरह के मृदभांड मिलते हैं। कायथा संस्कृति, अपने चाक पर बने मजबूत और उत्कृष्ट मृद्भाण्डों से अपनी पहचान रखती है। इनके भूरे लेप पर, बर्तनों के केवल ऊपरी हिस्से में बैंगनी या गहरे लाल रंग के रेखीय डिजाइन पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक अपेक्षाकृत कम मोटाई वाले मृद्भाण्ड भी देखे जा सकते हैं। जिनपर लाल रंग से ज्यामितीय डिजाइन बनाए गए थे। इस कोटी में अधिकांश प्राप्ति लोटा तथा जार जैसे कुछ बर्तनों की हुई है। तीसरी कोटि में लहरदार रेखाओं के डिजाइन बने हैं जिन्हें कंघों के आकार वाले किसी सामग्री से अंकित किया गया होगा। कायथा में पालतू मवेशियों तथा घोड़ों की हड्डियाँ पाई गई हैं।

ताम्र पात्रों तथा अन्य ताम्बे की बनी सामग्रियों की प्राप्तियाँ आकर्षक हैं। पाषाण औजारों में सूक्ष्मपाषाण (ब्लेड, नॉक, अर्धचंद्र) मिले हैं, जो स्थानीय रूप से उपलब्ध चैल्सेडनी से बनाए गए थे। गदा-शीर्ष या पत्थर के छल्ले का उपयोग कृषि यंत्र की तरह खेत की मिट्टी पलटने के लिए किया जाता था। कायथा संस्कृति के लोग ताम्र तकनीक में दक्ष थे। तांबे की दो ढलवा कुल्हाड़ियाँ, छेनी का टूटा हिस्सा और तांबे की 28 चूड़ियाँ दो घड़ों से प्राप्त हुए हैं। अन्य दो घड़ों से 175 मनकों वाले अगेट का हार और 160 मनको वाले कार्नेलियन का हार मिला है। कायथा की संस्कृति सेलखड़ी के सूक्ष्म मनकों और मृद्भाण्डों के आधार पर पूर्व हड़प्पाकालीन सभ्यता से साक्ष्य रखती है। कायथा में पाई गई ताम्बे की कुल्हाड़ियाँ गणेश्वर से प्राप्त नमूनों जैसा ही खचित निशान प्रदर्शित करती है, जिससे लगता है कि इन्हें शायद गणेश्वर में बनाया गया था। इन सबसे आपसी संपर्क का आभास होता है, परंतु इसका ठीक-ठीक चरित्र क्या था, यह कहना मुश्किल है। लगभग 1800 ई. पू. कायथा के लोगों ने इस स्थान को अचानक छोड़ दिया। लगभग 100 वर्ष बाद यहां पर दूसरी संस्कृति विकसित हुई जो अहार या बनास संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रही थी

6.4.4 मालवा संस्कृति

मालवा संस्कृति नर्मदा नदी के तट पर महेश्वर एवं नवदाटोली (निमार जिला, मध्य प्रदेश) की खुदाई के दौरान प्रकाश में आई। अन्य प्रमुख क्षेत्र नागदा तथा एरण हैं, चूँकि इस संस्कृति की अधिकतर बस्तियाँ मालवा क्षेत्र के अंतर्गत प्रकाश में आईं इसलिए इस संस्कृति का नाम मालवा संस्कृति रखा गया। लगभग 1600 ई. पू. के दौरान मालवा के लोग महाराष्ट्र की तरफ बढ़ना शुरू हो गए और तापी, गोदावरी तथा भीमा घाटियों में इनकी कई बस्तियाँ प्रकाश में आई हैं। महाराष्ट्र में प्रकाश (धुलिया जिला), दैमाबाद (अहमदनगर जिला)। इनामगाँव (पुणे जिला) सबसे बड़ी बस्तियाँ थीं। मालवा में पाए गए मृद्भाण्ड कुछ हद तक खुरदरे हैं तथा इन पर मोटी हल्की भूरी धारी है जिस पर काले अथवा गहरे भूरे रंग से चित्र बनाए गए हैं।

6.4.5 जोर्वे संस्कृति

ईसा पूर्व 1400-1000 के आसपास की जोर्वे संस्कृति विदर्भ के कुछ भाग को तथा कोंकण के तट प्रदेश को छोड़ सारे महाराष्ट्र में फैली थी। जोर्वे संस्कृति की विशिष्ट बस्ती महाराष्ट्र में स्थित जोर्वे (अहमदनगर जिला) है। प्रकाश, दैमाबाद तथा इनामगाँव में मालवा संस्कृति के बाद जोर्वे संस्कृति विस्तृत रूप में फैली। जोर्वे संस्कृति ग्रामीण प्रकृति की थी, फिर भी इसकी कई बस्तियाँ, जैसे दैमाबाद और इनामगाँव नगरीकरण के स्तर तक पहुँच - सी गई थीं। महाराष्ट्र के सभी पुरास्थल अधिकतर काली-भूरी मिट्टी वाले ऐसे अर्धशुष्क क्षेत्रों में हैं जहाँ बेर और बबूल के पेड़ थे, परंतु ये नदी-तट वाले क्षेत्र में पड़ते थे। इनके अलावा नवदाटोली पुरास्थल भी है जो नर्मदा के तट पर है। अधिकांश ताम्रपाषाणिक तत्त्व दक्षिण भारत के नवपाषाण स्थलों में भी घुस गए थे।

अब तक पता चले 200 जोर्वे स्थलों में गोदावरी का दैमाबाद सबसे बड़ा है। यह लगभग 20 हेक्टेयर में फैला है जिसमें लगभग 4000 लोग रह सकते थे। यह पत्थर और मलबे के बुर्जों वाली कच्ची दीवार से घेर कर गढ़ जैसा बनाया प्रतीत होता है। दैमाबाद की ख्याति भारी संख्या में कांसे की वस्तुओं की उपलब्धि के लिए है। इनमें से कुछ वस्तुओं पर हड़प्पा संस्कृति का प्रभाव लक्षित होता है।

पश्चिमी महाराष्ट्र में आरंभिक ताम्रपाषाण अवस्था के इनामगांव स्थल पर सहित बड़े-बड़े कच्ची मिट्टी के मकान और गोलाकार गड्ढे वाले मकान मिले है बाद की अवस्था (1300-1000 ई० पू०) में पाँच कमरों वाला एक मकान प्राप्त हुआ है जिसमें चार कमरे आयताकार हैं और एक वृत्ताकार यह मकान बस्ती के केंद्र है है और किसी सरदार का मकान रहा होगा। इसके निकट में ही जो कोठार है उस राजस्व के रूप में वसूला गया अनाज जमा किया जाता होगा। इनामगांव ताम्रपाषाण युग की बड़ी बस्ती थी। इसमें सौ से अधिक घर और कई कब्रें पाई गई हैं। यह बस्ती किलाबंद है और खाई से घिरी हुई है

6.4.6 गैरिक मृदभांड संस्कृति (OCP)

गैरिक मृदभांड संस्कृति एक विशेष प्रकार की संस्कृति थी, जिसे अपने ख़ास क़िस्म के मृदभांड और ताम्बे के प्रयोग के लिए जाना जाता है. गैरिक मृदभांड एक विशेष प्रकार का मृदभांड था, जिसकी प्राप्ति मुख्यतः दोआब के क्षेत्र, हरियाणा और राजस्थान से हुई है, इसके स्थलों की सबसे पहले खोज़ बदायूँ के बिसौली तथा बिजनौर के राजपुर परसु में हुई थी. साधारण क़िस्म के इन मृदभांडों को चाक पर बनाया जाता था, इन पर लाल रंग का लेप तथा काले रंग की कलाकृतियाँ बनी होती थीं. इन्हें गैरिक मृदभांड कहा जाता है क्योंकि हाथों से इन बर्तनों को रगड़ने पर गैरिक रंग हाथों में लग जाता है, इनका यह कच्चा रंग या तो पानी में भीग जाने या ठीक से न पकने के कारण हुआ होगा. इन मृद्भांडों की सर्वाधिक प्राप्ति पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर, मेरठ और बुलंदशहर से हुई है. सहारनपुर ज़िले में ही 80 गैरिक मृदभांड स्थल पाए गए हैं, यह पता चलता है कि राजस्थान में गैरिक मृदभांड संस्कृति दोआब की अपेक्षा पुरानी है।

गैरिक मृदभांड संस्कृति का काल मोटे तौर पर 2000 ई० पू० और 1500 ई० पू० के बीच रखा जा सकता है। दोआब के ऊपरी हिस्से में गैरिक मृदभांड संस्कृति के उदय के साथ ही बस्ती आरंभ होती है। गैरिक मृदभांड संस्कृति को दो परंपराओं के अंतर्गत रखा गया है; एक तो पश्चिमी प्रारूप, जिसमें जोधपुरा, सिसवाल, मिताथल, घारा, अंबाखेरी और बड़गाँव जैसे स्थल शामिल हैं, जहां हड़प्पा मृदभांड परंपरा का प्रभाव देखा जाता है; दूसरा पूर्वी प्रारूप, लाल क़िला, अतरंजीखेड़ा, साईपई जैसे स्थल, जहाँ हड़प्पा संस्कृति का प्रभाव इन मृद्भांडों पर नहीं देखा जाता है. गैरिक मृदभांड स्थलों से अन्य प्रकार की वस्तुओं की कम ही प्राप्ति हुई है, पत्थर की बनी वस्तुओं में मुख्यतः चक्की तथा मनके शामिल हैं. लाल क़िला से हड्डियों के बने औज़ार भी मिले हैं. ताम्बे की वस्तुओं में; अतरंजीखेड़ा से प्राप्त ताँबे का एक टुकड़ा और ताम्बा गलाने का टेराकोटा का बना हुआ एक पात्र जिसमें ताम्बे के कण सटे हुए हैं, लाल क़िला से ताम्बे की बनी हुई लटकनें, एक मनका, तीर का नोंक, खंडित पुराकुठार प्राप्त हुए हैं. इन स्थलों से टेराकोटा की बनी हुई पशु और मानव मृण्मूर्तियाँ, पहिए, चूड़ियाँ, टिकिया, गलाने के पात्र, मनके, सिलबट्टा, चक्की और खेल के मोहरे इत्यादि मिलते हैं. अम्बाखेड़ी से वृषभ-मृण्मूर्ति और लाल क़िले से मृदभांड पर उत्कीर्ण वृषभ आकृति मिलती है. इस संस्कृति के लोग कृषि, पशुपालन और आखेट पर निर्भर थे. लाल क़िला से गेहूँ, जौ और चावल के अवशेष प्राप्त हुए हैं, तो अतरंजीखेड़ा से चावल, जौ, चना और खेसारी के अस्तित्व की जानकारी मिलती है.

इसके अतिरिक्त ताम्र-निधियों की प्राप्ति के स्थलों की पहचान भी विशिष्ट भौतिक संस्कृति के रूप में की गई है, चूँकि इन स्थलों में विभिन्न ताम्र वस्तुओं के ढेर पाए गए हैं, इसलिए इन्हें ताम्र निधि या ताम्र-संग्रह कहा गया है, ऐसे ताम्र-संग्रह में अंगूठी, सेल्ट, कुठार, खड्ग, हार्पून, शूल, मानव जैसी आकृति आदि चीजें

शामिल हैं. ऐसे ताम्र संग्रह पूर्व में बंगाल और उड़ीसा से लेकर पश्चिम में गुजरात और हरियाणा तक, तथा दक्षिण में आंध्र प्रदेश से लेकर उत्तर प्रदेश तक के विशाल भू-भाग में बिखरे पाए गए हैं। सबसे बड़ी निधि मध्य प्रदेश के गुंगेरिया से प्राप्त हुई है। इसमें 424 तांबे के औज़ार तथा सामग्री, तथा 102 चाँदी के पतले पत्तर शामिल हैं। इन ताम्र-निधियों में से लगभग आधी से ज़्यादा गंगा-यमुना दोआब में केंद्रित हैं। प्राप्त शिल्प-वस्तुएँ कई तरह से इस्तेमाल में लाई जाती थीं। ये केवल मछली पकड़ने, शिकार करने या हमला करने के लिए ही नहीं थीं, बल्कि शिल्प और खेती के लिए भी उपयोगी थीं। इन उपकरणों से यह प्रकट होता है कि तांबे के कारीगर अपनी तकनीक के प्रयोग में माहिर थे और ये वस्तुएँ मात्र खानाबदोश या आदिम कारीगरों की कृति नहीं हो सकती हैं।

6.5 ताम्रपाषाण संस्कृतियों की विशेषताएँ

जलोढ़ मिट्टी वाले मैदानों और घने जंगल वाले क्षेत्रोंके अलावा प्रायः उपमहाद्वीप के हर हिस्से में ताम्रपाषाण संस्कृतियों के अवशेष मिले हैं। जलोढ़ मिट्टी वाले मैदानों के कुछ क्षेत्रों में भी जलाशयों के किनारे ऐसी संस्कृतियों के अवशेष मिले हैं। पर सामान्यतः ताम्रपाषाणिक लोगों ने अधिकतर नदी तटों पर पहाड़ियों से कम दूरी पर गाँव बसाए। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, ये लोग सूक्ष्मपाषाणों और पत्थर के अन्य औज़ारों के साथ-साथ तांबे के भी कुछ औज़ारों का प्रयोग करते थे। पता चलता है कि इनमें से अधिकतर लोग तांबे को गलाने की कला और तकनीक जानते थे। मध्य गंगा क्षेत्र की ताम्रपाषाण संस्कृति में तांबे के औज़ार बहुत कम ही मिलते हैं; पश्चिमी भारत और मध्य भारत की भौतिक संस्कृतियों में वे अधिक मिलते हैं। सभी ताम्रपाषाण समुदाय चाकों पर बने काले-व-लाल मृदभांड का प्रयोग करते थे। उनके विकास कांसे के इस्तेमाल से पहले की अवस्था को देखते हुए हम कह सकते हैं कि चित्रित मृद्भांडों का सबसे प्रथम इस्तेमाल करने वाले वे ही हैं। वे पकाने, खाने, पीने और सामान रखने के लिए इन भांडों का प्रयोग करते थे। वे लोटा और थाली दोनों का प्रयोग करते थे। दक्षिण भारत में नवपाषाण अवस्था अलक्षित रूप से ही ताम्रपाषाण अवस्था में परिणत हो गई, अतः इन संस्कृतियों को नवपाषाणीय-ताम्रपाषाण संस्कृति का नाम दे दिया गया। अन्य भागों में, विशेषकर पश्चिमी महाराष्ट्र और राजस्थान में ताम्रपाषाण संस्कृति के लोग बाहर से आकर बसे प्रतीत होते हैं। उनकी सबसे पुरानी बस्तियों संभवतः मालवा और मध्य भारत में थीं, जैसे कायथा और एरण की बस्तियाँ, जिनके बाद पश्चिम महाराष्ट्र की बस्तियों का विकास हुआ, और बिहार तथा पश्चिम बंगाल की बस्तियाँ तो और भी बाद में अस्तित्व में आई थीं।

सबसे पहले ताम्रपाषाण संस्कृतियों के निवासियों ने ही प्रायद्वीपीय भारत में बड़े-बड़े गाँव बसाए और वे नवपाषाण काल की अपेक्षा सामान्यतः कहीं अधिक अनाज उपजाते थे। विशेष रूप से पश्चिमी भारत में जौ,

गेहूँ और मूंग तथा दक्षिणी और पूर्वी भारत में चावल की खेती इन संस्कृतियों की विशेषता थी। वे अन्न के साथ-साथ मछली और मांस भी खाते थे। पश्चिम भारत में पशुओं का मांस अधिक चलता था, पर पूर्वी भारत के भोजन में मछली और का प्रमुख स्थान था। पश्चिमी महाराष्ट्र, पश्चिमी मध्य प्रदेश और दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में बस्तियों के और भी अवशेष मिले हैं। मध्य प्रदेश में कायथा और एरण की और पश्चिमी महाराष्ट्र में इनामगाँव की बस्तियाँ किलाबंद हैं। इसके विपरीत पूर्वी भारत के चिराँद और पांडुराजार ढिबि में ढाँचागत अवशेष कम ही मिले हैं; उनसे सिर्फ़ खंभों, खाइयों और गोलाकार घरों की जानकारी मिलती है। शव संस्कार विधियाँ भिन्न थीं। महाराष्ट्र में मृतक उत्तर-दक्षिण सीध में रखा जाता था, किंतु दक्षिण भारत में पूरब-पश्चिम सीध में। पश्चिमी भारत में लगभग संपूर्ण शवाधान प्रचलित था, जबकि पूर्वी भारत में आंशिक शवाधान चलता था।

6.5.1 पाषाण और ताम्र औज़ारों का प्रयोग

इस संस्कृति के लोग पत्थर के छोटे-छोटे औज़ारों का इस्तेमाल करते थे, जिनमें पत्थर के फलकों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। अनेक स्थानों में, खासकर दक्षिण भारत में, प्रस्तर फलक उद्योग बढ़ा और पत्थर की कुल्हाड़ी भी चलती रही। जाहिर है कि ऐसे क्षेत्र पहाड़ियों से अधिक दूर नहीं थे। कई बस्तियों में तांबे की वस्तुएँ बहुतायत से मिली हैं। यह स्थिति अहार और गिलुंद में स्पष्ट प्रतीत होती है, जो राजस्थान की बनास घाटी के लगभग शुष्क क्षेत्र में पड़ते हैं। अन्य समकालीन ताम्रपाषाण कृषक संस्कृतियों के विपरीत, अहार में वास्तव में सूक्ष्मपाषाण औज़ारों का इस्तेमाल नहीं होता था; यहाँ पत्थर की कुल्हाड़ियों या फलकों का लगभग अभाव ही है। यहाँ कई सपाट कुल्हाड़ियाँ, चूड़ियाँ और पत्तरें मिली हैं, जो सभी तांबे की हैं, हालाँकि एक चादर कांसे की भी पाई गई है। तांबा पास ही उपलब्ध था। अहार के लोग शुरू से ही धातुकर्म जानते थे। अहार का प्राचीन नाम तांबवती अर्थात् तांबावाली जगह है। गिलुंद में तांबे के टुकड़े ही मिलते हैं। यहाँ एक प्रस्तर फलक उद्योग भी पाया गया है। महाराष्ट्र के जोर्वे और चंदोली में सपाट आयताकार ताम्र-कुठार पाए गए हैं और चंदोली में तांबे की छेनी भी मिली है।

6.5.2 विशिष्ट मृदभांडों का प्रयोग

ताम्रपाषाण काल के लोग विभिन्न प्रकार के मृद्धांडों का व्यवहार करते थे। इनके सर्वाधिक आम प्रचलन वाले बरतन काले-व-लाल रंग के हैं और इनका प्रयोग लगभग 2000 ई० पू० से व्यापक तौर पर होता रहा है। ये चाकों पर बनते थे और कभी-कभी इन पर सफेद रैखिक आकृतियाँ बनी रहती थीं। यह बात केवल राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के बारे में ही नहीं है, बल्कि बिहार और पश्चिम बंगाल में पाई गई बस्तियों के बारे में भी है। महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और बिहार में रहने वाले लोग टोंटी वाले जलपात्र, पाएदार तश्तरियाँ

और पाएदार कटोरे बनाते थे। ऐसा समझना गलत होगा कि काले व लाल मृदभांड का व्यवहार करने वाले सभी लोग एक ही संस्कृति के हैं। महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान वाले मृदभांड चित्रित हैं, पर पूर्वी भारत में ऐसे मृदभांड बहुत कम हैं। जोधपुरा का नारंगी और लाल लेप वाला पात्र विशेष रूप से उस संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता था तो कायथा के तीन प्रकार के विशिष्ट पात्र उस संस्कृति की प्रमुख विशेषता थे।

6.5.3 पशुपालन और खेती

दक्षिण-पूर्वी राजस्थान, पश्चिमी मध्य प्रदेश, पश्चिमी महाराष्ट्र और अन्यत्र रहने - वाले ताम्रपाषाण युग के लोग मवेशी पालते और खेती करते थे। वे गाय, भेड़, बकरी, सुअर और भैंस रखते थे, और हिरण का शिकार करते थे। ऊँट के भी अवशेष मिले हैं। अधिकांशतः बाद के चरणों में शिकार किए गए जानवरों की अपेक्षा पालतू मवेशियों की हड्डियाँ अधिक प्राप्त हुई हैं. सामान्यतः वे घोड़े से भी परिचित नहीं थे। कुछ अवशेषों की पहचान घोड़े या गधे या जंगली गधे के अंग के रूप में की गई है। ख़ास बात यह है कि वे लोग गेहूँ और चावल उपजाते थे। इन मुख्य अनाजों के अतिरिक्त वे बाजरे की भी खेती करते थे। वे मसूर, उड़द, और आदि कई दलहन और मटर भी पैदा करते थे। ये सभी अनाज महाराष्ट्र में नर्मदा नदी के तट पर स्थित नवदाटोली में भी पाए गए हैं। खुदाई के परिणामस्वरूप इतने सारे अनाज भारत में अन्य किसी भी स्थान में शायद नहीं मिले हैं। नवदाटोली के लोग बेर और अलसी भी उपजाते थे। दकन की काली मिट्टी में कपास की पैदावार होती थी। निचले दकन में रागी, बाजरा और इस तरह के अन्य अनाजों की खेती होती थी। पूर्वी भारत में, बिहार और पश्चिम बंगाल में मछली पकड़ने के काँटे (बंसी) मिले हैं, जहाँ हम चावल भी पाते हैं। इससे मालूम होता है कि मछली और भात पूर्वांचल के लोगों के आहार में शामिल रहा होगा।

6.5.4 शिल्प

ताम्रपाषाण युग के लोगों की कला और शिल्प के बारे में बहुत कुछ पता चलता है। वे तांबे के शिल्पकर्म में निस्संदेह बड़े दक्ष थे और पत्थर का काम भी अच्छा करते थे। हमें तांबे के औजार, हथियार और कंकण मिले है। वे कार्नेलियन, स्टेटाइट और क्वार्टज क्रिस्टल जैसे अच्छे पत्थरों के मनके या गुटिकाएँ भी बनाते थे। वे लोग कताई और बुनाई जानते थे, क्योंकि मालवा में चरखे और तकलियाँ मिली हैं। महाराष्ट्र में कपास, सन और सेमल की रूई से बने धागे भी मिले हैं। इससे यह सिद्ध होता है। कि वे लोग वस्त्र निर्माण से सुपरिचित थे। अनेक स्थलों पर प्राप्त इन वस्तुओं के शिल्पियों के अतिरिक्त हमें इनामगाँव में कुंभकार, धातुकार, हाथी दाँत के शिल्पी, चूना बनाने वाले और खिलौने की मिट्टी की मूरतें (टेराकोटा) बनाने वाले कारीगरों के प्रमाण भी दिखाई देते हैं।

6.5.5 विश्वास

प्राप्त भौतिक साक्ष्यों के आधार पर उनके शव संस्कारों और पूजा पद्धति के विषय में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। महाराष्ट्र में लोग मृतक को कलश में रखकर अपने घर में फर्श के अंदर उत्तर-दक्षिण स्थिति में गाड़ते थे। हड़प्पाई लोगों की तरह अलग-अलग कब्रिस्तान नहीं होते थे। कब्र में मिट्टी की हाँडियाँ और तांबे की कुछ वस्तुएँ भी रखी जाती थीं, जो जाहिर है कि परलोक में मृतक के इस्तेमाल के लिए होती थीं।

मिट्टी की स्त्री-मूर्तियों से प्रतीत होता है कि ताम्रपाषाण युग के लोग मातृदेवी की पूजा करते थे। कई कच्ची मिट्टी की नग्न मूर्तिकाएँ भी पूजी जाती थीं। इनामगाँव में मातृदेवी की प्रतिमा मिली है जो पश्चिमी एशिया में पाई जाने वाली ऐसी प्रतिमा से मिलती है। मालवा और राजस्थान में मिली रूढ़ शैली में बनी मिट्टी की वृषभ - मूर्तिकाएँ यह सूचित करती हैं कि वृषभ का कोई धार्मिक महत्व रहा होगा।

6.5.6 सामाजिक विषमता

बस्ती की संरचना, आवास स्थलों के प्रारूप और शव संस्कार विधि में भिन्नता से पता चलता है कि ताम्रपाषाण समाज में असमानता सामने आने लगी थी। महाराष्ट्र में पाई गई कई जोर्वे वस्तियों में एक तरह का निवास-गत अधिक्रम दिखाई देता है। एक तो बस्तियों के बीच विषमता थी, कुछ बस्तियाँ बड़ी और कुछ छोटी थीं, जैसे कुछ बस्तियाँ तो बीस हेक्टेयर तक के आकार की हैं, जबकि कुछ केवल पाँच हेक्टेयर या उससे भी छोटी हैं। बस्तियों के आकार में अंतर का अर्थ है कि बड़ी बस्तियों का दबदबा छोटी बस्तियों पर रहता था। साथ ही यह भी सुझाया गया है कि बड़ी और छोटी दोनों तरह की बस्तियों में मुखिया और उनके नातेदार आयताकार मकानों में रहते थे और गोल झोपड़ियों में रहने वाले पर प्रभुत्व रखते थे। इनामगाँव में शिल्पी या कारीगर लोग पश्चिमी छोर पर रहते थे, जबकि मुखिया प्रायः केंद्रीय-स्थल में रहता था। इससे निवासियों के बीच सामाजिक विषमता प्रकट होती है। पश्चिमी महाराष्ट्र की चंदोली और नेवासा बस्तियों में पाया गया है कि कुछ बच्चों के गलों में तांबे के मनकों का हार पहना कर उन्हें दफनाया गया है, जबकि अन्य बच्चों की कब्रों में सामान के तौर पर कुछ बर्तन मात्र हैं। इनामगाँव में एक वयस्क आदमी मृद्भांडों और कुछ तांबे के साथ दफनाया गया है। कायथा के एक घर में तांबे के 29 कंगन और दो अद्वितीय ढंग की कुल्हाड़ियाँ पाई गई हैं। इसी स्थान में स्टेटाइट और कार्नेलियन जैसे कीमती पत्थरों की गोलियों के हार पात्रों में जमा पाए गए हैं। यह स्पष्ट है कि जिनके पास ये वस्तुएँ थीं वे धनी थे।

6.6 ताम्रपाषाण काल से संक्रमण

ताम्रपाषाण संस्कृति मुख्यतः ग्रामीण पृष्ठभूमि पर खड़ी थी। इसके विस्तार की अवधि में तांबा सीमित मात्रा में ही उपलब्ध रहा और धातु के रूप में ताम्बे के इस्तेमाल की कुछ सीमाएँ थीं। तांबे का बना औजार लचीला होता था। तांबे में टिन को मिलाकर काँसा बनाने की तकनीक फ़िलहाल ज्ञात नहीं थी, जो तांबे से अधिक

मजबूत और उपयोगी होता है। कांसे के औजारों के इस्तेमाल से क्रीट, मिस्र और मेसोपोटामिया और सिंधु घाटी में भी प्राचीनतम सभ्यताओं के उभार और विकास में बड़ी सहायता मिली थी।

ताम्रपाषाण युग के लोग मवेशी (भेड़-बकरे) पालते थे और उन्हें अपने आँगन में ही बाँध कर रखते थे। कुछ विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि वे पशुपालन मांस के लिए करते थे, दूध पीने के लिए या घी आदि बनाने के लिए उनको दुहते नहीं थे। इस कारण ताम्रपाषाण युग के लोग पशुओं से पूरा फायदा नहीं उठा सके और ताम्रपाषाण युग के जो लोग मध्य और पश्चिमी भारत में काली मिट्टी वाले क्षेत्र में रहते थे, गहन या विस्तृत पैमाने पर खेती नहीं कर पाए। ताम्रपाषाण स्थलों में न हल और न ही कुदाल पाया गया है। सम्भवतः वे अपने भूमि खोदने वाले डंडे (डिगिंग स्टिक) में पत्थर का छिद्रित चक्का दबाव के लिए लटका देते थे और इससे केवल झूम खेती कर पाते थे। खुदाई की ऐसी युक्ति से केवल राख में ही खेती करना सम्भव था। काली मिट्टी में गहन और व्यापक खेती करने के लिए लोहे के उपकरणों का प्रयोग आवश्यक था, जिनका स्थान ताम्रपाषाण संस्कृति में था ही नहीं। पूर्वी भारत में लाल मिट्टी वाले इलाकों में रहने वाले ताम्रपाषाणिक लोगों की भी यही कठिनाई थी।

पश्चिमी महाराष्ट्र में बड़ी संख्या में पाई गई बच्चों की क़ब्रों से ताम्रपाषाण संस्कृतियों का एक कमजोर तत्व सामने आता है। खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के होते हुए भी बच्चों के मरने की दर बहुत ऊँची होने से पोषाहार की कमी, चिकित्सा के ज्ञान के अभाव या महामारी के प्रकोप इत्यादि का अनुमान लगाया जा सकता है। जो भी हो, ताम्रपाषाण संस्कृति का सामाजिक और आर्थिक ढाँचा मानव जीवन को कोई सुदीर्घ, निश्चित और सुस्थिर रूप देने में असफल रहा था।

ताम्रपाषाण युग के लोग लेखन कला से परिचित नहीं थे और न ही वे नगरों में रहते थे, जबकि कांस्य युग के लोगों के जीवन का केंद्र नगरों में स्थापित था। सभ्यता की ये सभी विशेषताएँ हमें भारतीय उपमहाद्वीप की सिंधु सभ्यता के अधिकतर भाग में नजर आती हैं। यह स्पष्ट है कि कई प्रकार की प्राक्-हड़प्पीय ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ सिंध, बलूचिस्तान, राजस्थान आदि प्रदेशों में कृषक समुदायों के प्रसार में सहायक हुईं और उनसे हड़प्पा की नगर सभ्यता के उदय के लिए अनुकूल आधार बना। इस प्रसंग में सिंध के आमरी-नाल और कोटदीजी तथा राजस्थान के कालीबंगा और गणेश्वर का संकेत किया जा सकता है। प्रतीत होता है कि ताम्रपाषाण युग के कुछ कृषक समुदाय सिंधु के बाढ़ वाले मैदानों की ओर बढ़े, या उनके बीच परस्पर भौतिक संस्कृति का विनिमय होता रहा और कांसे का तकनीकी ज्ञान प्राप्त किया और कृषि-सम्पन्न आधार पर नगरों की स्थापना में सफल हुए।

कुछ ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ हड़प्पा सभ्यता की बाद की हैं। फिर भी ये संस्कृतियाँ सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों के उन्नत तकनीकी ज्ञान से कोई ठोस फायदा नहीं उठा पाईं, यद्यपि इनके बीच सम्पर्क और सांस्कृतिक लेन- देन के प्रमाण मिलते हैं

6.7 सारांश

नवपाषाण कालीन संस्कृतियों में मानव खेती, पशुपालन और स्थायी बस्तियों के माध्यम से एक नए सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन की ओर अपने क़दम बढ़ा चुका था। इसके बाद के विकासक्रम में, मानव संस्कृतियों में पत्थर के औज़ारों के साथ-साथ धातु के औज़ारों का इस्तेमाल होने लगा और सबसे पहले धातु के रूप में ताम्बे का इस्तेमाल हुआ। खेती और शिकार हेतु ताम्बे के औज़ारों का निर्माण और उपयोग पहले की अपेक्षा सरल, अधिक लाभकारी और प्रभावी साबित हुआ। वहीं धातु के प्रयोग को लेकर विभिन्न स्थानों के बीच परस्पर भौतिक संस्कृति के तत्वों का लेन-देन हुआ, जिसके कारण कालांतर में अधिक परिपक्व संस्कृतियाँ अस्तित्व में आईं।

भारतीय उप महाद्वीप में ताम्रपाषाण संस्कृतियों का विस्तार मुख्यतः मध्य भारत, पश्चिमी भारत और दक्कन के इलाक़े में था, इन विभिन्न स्थानों में विकसित होने वाली संस्कृतियों को उनकी विशिष्ट परंपराओं के लिए जाना जाता है। चूंकि ये संस्कृतियाँ हड़प्पा संस्कृति और उत्तर हड़प्पा संस्कृति के लगभग समकालीन थीं, अतः इनके और हड़प्पा संस्कृति के बीच कुछ भौतिक संस्कृति के तत्वों का विनिमय भी हुआ, किन्तु जहाँ ये संस्कृतियाँ मुख्यतः ग्रामीण पृष्ठभूमि की थीं, वहीं हड़प्पा संस्कृति अपनी नगरीय विशिष्टता के लिए जानी जाती है।

6.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन सा स्थल बनास संस्कृति से संबंधित नहीं है:

(a) अहार (b) गिलुंद (c) बालाथल (d) संवालदा

2. जोर्वे संस्कृति का सबसे बड़ा स्थल है:

(a) इनामगाँव (b) दैमाबाद (c)जोर्वे (d) नेवासा

3. गणेश्वर-जोधपुरा संस्कृति के मृदभांडकी विशेषता है

(a) काला और लाल रंग (b) धूसर रंग (c) लाल रंग (d) नारंगी और लाल रंग

4. सर्वाधिक मात्रा में अनाज के अवशेषों की प्राप्ति हुई है:

(a) चिरांद से (b)जोधपुरा (c) दैमाबाद (d) नवदाटोली

6.9 तकनीकी शब्दावली

मालवा मृदभांड: मालवा मृदभांड मध्य भारत का विशिष्ट और सर्वाधिक प्रचलित मृदभांड था, जो लाल या नारंगी लेप वाला होता था, जिस पर काले रंग से ज्यामितिकय रचनाएँ, मानव, फूल या पशु की आकृति बनी रहती थीं।

अंशशोधित तिथि: अंशशोधित तिथि का आशय किसी पुरातात्विक वस्तु की रेडियोकार्बन तिथि को विभिन्न समयों में कार्बन-14 और कार्बन-12 के अनुपात में रहे अंतर को ध्यान में रखते हुए कैलेंडर तिथि में बदलाव कर पायी जाने वाली तिथि से है।

6.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. D, 2. B, 3. D, 4. D.

6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

१. चक्रबर्ती, रणबीर, भारतीय इतिहास का आदि पर्व (दिल्ली: ओरियंटल ब्लैकस्वान, 2012)
२. धवलिकर, एम. के., द फ़र्स्ट फ़ार्मर्ज़ ऑफ़ डेक्कन (पुणे: 1988)
३. सिंह, उपिंदर, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास (दिल्ली: पियर्सन, 2017)
४. शर्मा, आर. एस., प्रारम्भिक भारत का परिचय (दिल्ली: ओरियंटल ब्लैकस्वान, 2009)

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

१. ताम्रपाषाण संस्कृतियों की प्रमुख विशेषताएँ बताएँ।
२. अहार संस्कृति के प्रमुख स्थलों तथा वहाँ से प्राप्त भौतिक संस्कृति के तत्वों की विवेचना करें।
३. गैरिक मृदभांड से आप क्या समझते हैं ? इससे सम्बंधित संस्कृति के विस्तार का विवरण दें।

इकाई सात-

भारत में आर्यों का आगमन,आर्यों का विस्तार एवं वैदिक साहित्य

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 आर्यों का प्रसरण
7.4 भारत में आर्यों का आगमन
  7.4.1 ऋग्वेद कालीन आर्यों का भारत में विस्तार
  7.4.2 उत्तर वैदिक कालीन आर्यों का भारत में विस्तार
7.5 वैदिक ग्रन्थों में वर्णित भौगोलिक क्षेत्र
7.6 वैदिक साहित्य
  7.6.1 श्रुति साहित्य
  7.6.2 स्मृति साहित्य
7.7 साराशं
7.8 तकनीकी शब्दावली
7.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

वर्तमान भारतीय संस्कृति का आधार वैदिक सभ्यता को माना जाता है। इस सभ्यता के एक प्रमुख कबीले के आधार पर ही भारतवर्ष का नाम पड़ा है।यह सभ्यता सिन्धु सभ्यता के बाद की सभ्यता है ।पिछली इकाइयों में आपने सिन्धु सभ्यता के विषय में जानकारी प्राप्त की थी,जैसा कि अब आपको जानकारी है कि सिन्धु सभ्यता एक नगर प्रधान सभ्यता थी, लेकिन वैदिक सभ्यता सिन्धु सभ्यता के विपरीत एक कबिलाई सभ्यता थी जिसमें नगरों की कोई जानकारी नहीं थी।

इस इकाई में आपको वैदिक सभ्यता के विभिन्न तथ्यों से अवगत कराया जायेगा।वैदिक सभ्यता से संबंधित पिछली इकाई में आपको आर्य जाति का परिचय दिया गया था,घोड़ों पर आधारित इस जाति की एक प्रमुख

विशेषता गतिशीलता थी,जिस कारण विश्व के विभिन्न देशों में इस सभ्यता को प्रसार करने में आसानी हुई, इसी क्रम में इतिहासकारों का मानना है कि भारत में भी आर्यों का आगमन हुआ।

वेद में आर्यों के आदि-देश, उनके प्रयाण-स्थल, प्रस्थान का काल, मार्ग आदि का विवरण नहीं है, जिस प्रदेश में ऋग्वेद की रचना हुई उसका उल्लेख आर्यों ने किया है। ऋग्वेद की रचना भारत में आर्यों के प्रविष्ट होने के पश्चात ही हुई और इसका रचना स्थल सिन्धु प्रदेश था। प्रारम्भ में आर्यों का प्रसार इसी प्रदेश में हुआ।

7.2 उद्देश्य

वैदिक सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए द्वितीय ब्लाक की पहली इकाई में आपको आर्यों के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गयी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी।इस इकाई का उद्देश्य आपको सभ्यता से संबंधित अन्य तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. भारत में आर्यों का आगमन
2. आर्यों का भारत में विस्तार
3. वैदिक साहित्य की सामान्य जानकारी

7.3 आर्यों का प्रसरण

प्राचीनतम आर्य भाषाभाषी पूर्वी अफगानिस्तान, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती स्थानों तक फैले हुए थे। अफगानिस्तान की कुछ नदियॉ जैसे कुभा नदी और सिंधु नदी तथा उसकी पांच शाखाऐं ऋग्वेद में उल्लिखित हैं। सिंधु नदी, जिसकी पहचान अंग्रेजी के 'इंडस' से की जाती है, आर्यों की विशिष्ट नदी है, और इसका बार-बार उल्लेख होता है। दूसरी नदी 'सरस्वती' ऋग्वेद में सबसे अच्छी नदी (नवीतम) कही गई है। इसकी पहचान हरियाणा और राजस्थान में स्थित घग्गर-हाकरा की धार से की जाती है। लेकिन इसके ऋग्वैदिक वर्णन से पता चलता है कि यह अवेस्ता में अंकित हरख्वती नदी है जो आजकल दक्षिण अफगानिस्तान की हेलमंद नदी है। यहां से सरस्वती नाम भारत में स्थानांतरित किया गया। भारतीय उप-महाद्वीप के अंतर्गत जहां आर्य भाषाभाषी पहले पहल बसे वह संपूर्ण क्षेत्र सात नदियों का देश कहलाता था।

ऋग्वेद से हम भारतीय आर्यों के बारे में जानते हैं। ऋग्वेद में आर्य शब्द का 363 बार उल्लेख है, और इससे सामान्यतया हिंद-आर्य भाषा बोलने वाले सांस्कृतिक समाज का संकेत मिलता है। ऋग्वेद हिंद-आर्य

भाषाओं का प्राचीनतम ग्रंथ है। यह वैदिक संस्कृत में लिखा गया है लेकिन इसमें अनेक मुंडा और द्रविड शब्द भी मिलते हैं। शायद ये शब्द हड़प्पा लोगों की भाषाओं से ऋग्वेद में चले आए।

ऋग्वेद में अग्नि, इंद्र, मित्र, वरूण आदि देवताओं की स्तुतियॉं संगृहित हैं जिनकी रचना विभिन्न गोत्रों के ऋषियों और मंत्रस्रष्टाओं ने की है। इसमें दस मंडल या भाग हैं, जिनमें मंडल 2 से 7 तक प्राचीनतम अंश हैं। प्रथम और दशम मंडल सबसे बाद में जोड़े गए मालूम होते हैं। ऋग्वेद की अनेक बातें अवेस्ता से मिलती हैं। अवेस्ता ईरानी भाषा का प्राचीनतम गंथ हैं। दोनों में बहुंत से देवताओं और सामाजिक वर्गों के नाम भी समान हैं।

पर हिंद-यूरोपीय भाषा का सबसे पुराना नमूना इराक में पाए गए लगभग 2200 ई0 पू0 के एक अभिलेख में मिला है। बाद में इस तरह के नमूने अनातोलिया (तुर्की) में उन्नीसवीं से सत्रहवीं सदी ईसा-पूर्व के हत्ती (Hittite) अभिलेखों में मिलते है। इराक में मिले लगभग 1600 ई0 पू0 के कस्सी (Kassite) अभिलेखों में तथा सीरिया में मितानी (Mitanni) अभिलेखों में आर्य नामों का उल्लेख मिलता है। उनसे पश्चिम एशिया में आर्य भाषाभाषियों की उपस्थिति का पता चलता है। लेकिन भारत में अभी तक इस तरह का कोई अभिलेख नहीं मिला है।

भारत में आर्य जन कई खेपों में आए। सबसे पहले की खेप में जो आए वे हैं ऋग्वैदिक आर्य, जो इस उपमहादेश में 1500 ई0 पू0 के आसपास दिखाई देते हैं। उनका दास, दस्यु आदि नाम के स्थानीय जनों से संघर्ष हुआ। चूंकि दास जनों का उल्लेख प्राचीन ईरानी साहित्य में भी मिलता है, इसलिए प्रतीत होता है कि वे पूर्ववर्ती आर्यों की ही एक शाखा में पड़ते थे। ऋग्वेद में कहा गया है कि भरत वंश के राजा दिवादास ने शंबर को हराया। यहॉं दास शब्द दिवोदास के नाम में लगता है। ऋग्वेद में जो दस्यु कहे गए हें वे संभवतः इस देश के मूलवासी थे और आर्यों के जिस राजा ने उन्हें पराजित किया था वह त्रसदस्यु कहलाया। वह राजा दासों के प्रति तो कोमल था, पर दस्युओं का परम शत्रु था। ऋग्वेद में दस्युहत्या शब्द का बार बार उल्लेख मिलता है, पर दासहत्या का नहीं।

7.4 भारत में आर्यों का आगमन

पश्चिमी एशिया के बोगाजकोई (एशिया माइनर) से प्राप्त चौदहवीं शताब्दी ई0 पू0 के कुछ अभिलेखों में ऐसे राजाओं का उल्लेख आया है, जिनके नाम आर्यों जैसे थे और जो सन्धियों की साक्षी तथा रक्षा के लिए इन्द्र, मित्र, वरूण और नासत्य जैसे देवताओं का आहवान करते थे। यह निश्चित है कि ये अभिलेख आर्य धर्म की विकासावस्था के हैं, जबकि उनके इन्द्र, वरूण और उनसे सम्बद्ध अन्य देवता भी अपनी प्रारम्भिक वैदिक प्रधानता कायम रखे हुए थे। इन्द्र के ये उपासक अपने पहले के निवास स्थान सिन्धु की तराई से एशिया माइनर

चले गये या इसकी क्रिया ठीक इसके विपरीत थी। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद की एक ऋचा में एक उपासक अपने प्रत्न ओकस् यानी प्राचीन निवास स्थान से उन्हीं इन्द्रदेव का आहवान करता है, जिन्हें उसके पूर्वज भी पूजते थे। यह भी ज्ञात है कि यदु और तुर्वश ऋग्वेद के दो प्रधान जन थे, इन्द्र जिन्हें किसी दूर देश से लाये थे। कई ऋचाओं में यदु का विशेष सम्बन्ध पशु या पर्शु से जो नाम पर्शिया के प्राचीन निवासियों का था, स्थापित किया गया है। तुर्वश ने एक राजा से युद्ध में भाग लिया था, जिसका नाम पार्थव कहा गया है।

7.4.1 ऋग्वेद कालीन आर्यों का भारत में विस्तार

दोनों इन्द्रोपासक आर्य दल आपस में संघर्ष करते रहते थे परन्तु अनार्यों के साथ उनकी लडाई महत्वपूर्ण है जिसके परिणामस्वरूप क्रमशः आर्यों का राज्य विस्तार पर्याप्त परिमाण में पूरब की ओर हुआ। शम्बर नामक दासों के सरदार से लडने का श्रेय दिवोदास को है। सुदास ने उसकी नीति को जारी रखा और यमुना के किनारे देशी जातियों के शत्रुतापूर्ण गिरोह को कुचल डाला। विश्वामित्र नामक पुरोहित के पथ प्रर्दशन में भरत लोग कीकट नामक एक अनार्य जाति के विरोध की भावना रखते हुए मालूम पडते हैं जिसका परम्परा से मगध (दक्षिण बिहार) से सम्बन्ध था। ऋग्वेद की जातियों ने अन्त में जिस भौगोलिक क्षेत्र पर अपना अधिकार कायम किया था, उसका साफ-साफ संकेत कुछ नदियों के नामों के उल्लेख से मिलता है जिन्हें कि बडी आसानी से पहचाना जा सकता है। उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण कुभा, सुवास्तु, क्रुम, गोमती (गुमल) सिन्धु, सुषोमा (सोहान), वितस्ता (झेलम), असिक्नी (चनाब), मरूद्वृधा, परूष्णी (रावी), विपाश (व्यास), सरस्वती, दृषद्वती (रक्षी या चितांग), यमुना, गंगा और सरयू है। इन नदियों का उल्लेख यह बताता है कि पूर्वी अफगानिस्तान से गंगा की ऊपरी तराई तक का बडा भू-भाग आर्यों के अधिकार में था। इस क्षेत्र का बडा भाग सप्तसिन्धु के नाम से प्रचलित था। इस बृहत प्रदेश का सारा भाग आर्य जातियों से पूर्णतः अधिकृत नहीं हो सका था, क्योंकि यहॉं दासों की जातियों (विशः) की चर्चा मिलती हैं, जिन्होंने इस भू-भाग का कुछ न कुछ भाग अवश्य ही अपने अधिकार में रखा होगा और जिनका निष्कासन अवश्य ही मन्द और क्रमिक गति से हुआ होगा। देश का बडा भाग या तो अरण्यानी से आच्छादित था या बिल्कुल ही बंजर था, जिसमें कहीं-कहीं पर कुछ कूऐं (प्रपा) थे।

7.4.2 उत्तर वैदिक कालीन आर्यों का भारत में विस्तार

उत्तर वैदिक काल में 'विश्वजनीन राजा ' की धारणा प्रबल होने लगी। बडे-बडे राज्यों के बढ़ने के साथ ही हमें आर्यो के राजनीतिक और सांस्कृतिक आधिपत्य का फैलाव पूर्व और दक्षिण में मिलता है। यह जितना ही राजाओं और राजकुमारों के साहसपूर्ण उत्साह के कारण हुआ, उतना ही पुरोहितों की इच्छा के कारण भी, जो यज्ञों के द्वारा अग्नि देवता को नये देशों का स्वाद चखाना चाहते थे। उत्तर वैदिक काल के अन्त के पहले

आर्यों ने यमुना, उपरी गंगा और सदानीरा (राप्ती या गंडक) से सिंचित उर्वरा मैदानों को पूर्णरूपेण जीत लिया। विन्ध्य जंगल में साहसी दल घुस गये और उन्होंने दक्खन में गोदावरी के उत्तर शक्तिशाली राज्य स्थापित किये।

इस काल की जातियों में सबसे अधिक मुख्य पहले कुरू और पांचाल थे जिनकी राजधानियॉं क्रमशः आसन्दीवत् और काम्पिल थी। कुरूओं ने सरस्वती और दृषद्धती के अग्रभाग-कुरूक्षेत्र और दिल्ली तथा मेरठ के जिलों को अधिकार में किया। पांचालों ने बरेली, बदायूं और फर्रूखाबाद जिलों और आस पास के कुछ भू-भागों में अपना अधिकार जमाया।

आर्य जगत् का केन्द्र 'मध्यदेश' (धुरवा मध्यमा दिश्) था। यह सरस्वती से लेकर गंगा के दोआब तक फैला और कुरू, पांचाल एवं निकट की कुछ जातियों के द्वारा अधिकृत था। यह वही भू-भाग था, जहॉं से ब्राहमण सभ्यता बाहर के प्रदेशों में सरयू और वरणावती से सिंचित कोसल एंव काशी में, विदेहों के उपनिवेश गंडक के पूरब वाली दलदलों में, और विद्धों से अधिकृत वर्धा की तराई में फैली। इनके बाहर, पूर्व बिहार में बंग और दक्षिण बिहार में मौगध जैसी मिश्रित जातियॉं रहती थी और उत्तर बंगाल में पुण्ड्र, विध्य के जंगल में पुलिन्द और शबर तथा गोदावरी की तराई में आन्ध्र लोग रहते थे जो दस्यु या आदिवासी थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. ऋग्वेदिक सभ्यता बिहार प्रदेश में विद्यमान थी
2. उत्तर वैदिक काल में आर्यों को केरल की जानकारी थी
3. आर्यों के विस्तार में उनके पुरोहितों का भी योगदान था
4. आर्य जगत् का केन्द्र 'मध्यदेश' (धुरवा मध्यमा दिश्) था

7.5 वैदिक ग्रन्थों में वर्णित भौगोलिक क्षेत्र

ऋग्वेद में आर्यों के आदि-देश, उनके प्रयाण-स्थल, प्रस्थान का काल, मार्ग आदि का विवरण नहीं है। ऋग्वेद से ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम आर्य पूर्वी अफगानिस्तान तथा पंजाब में बसे थे। अफगानिस्तान की काबुल, स्वात, कुर्रम तथा गोमल नदियों-और पंजाब की पांचों नदियों- वितस्ता (झेलम), असिक्नी (चेनाब), परूष्णी (रावी), विपाशा (व्यास) तथा शुतुद्री (सतलज) नदियों का उल्लेख ऋग्वेद के मन्त्रों में बार-बार आया है। जिन अन्य नदियों का उल्लेख मिलता है उनमें सिन्धु सुषोमा (रावलपिंडी जिला), मरूदवृधा (जम्मू तथा काश्मीर), सरस्वती, दृषद्वती (रक्षी या चितांग), यमुना तथा गंगा सम्मिलित है। यमुना का तीन बार तथा गंगा का केवल एक बार उल्लेख मिलता है। गंगा के पूर्व की नदियों का उल्लेख नहीं मिलता है। ऋग्वेदिक आर्यों

को पूर्व की भौगोलिक जानकारी न होने का एक अन्य प्रमाण यह है कि ऋग्वेद में पूर्वी खाद्यान्न चावल और पूर्वी पशु बाघ का उल्लेख नहीं मिलता है।

ऋग्वैदिक लोगों को हिमालय की जानकारी थी क्योंकि सोम का पौधा ये हिमालय के मूजवत् शिखर से प्राप्त करते थे। इन्हें यमुना के दक्षिण की जानकारी नहीं थी क्योंकि विंध्य का उल्लेख नहीं मिलता है। समुद्र की जानकारी सौ पतवारों वाले जहाज से यात्रा करने के उल्लेख तथा भुज्यु के बेड़े के टूटने के उल्लेख से मिलती है, परन्तु अनेक विद्वान समुद्र का अर्थ जल-राशि से लेते हैं, और मानते हैं कि नौ यात्रा ,नावों द्वारा नदियों को पार करने तक सीमित थी।

उत्तरवैदिक कालीन ग्रन्थ आर्यों के बाद के प्रसार को बताते हैं जिससे हमें उनके भौगोलिक ज्ञान की जानकारी होती है। ऋग्वैदिक कालीन आर्यों को केवल अफगानिस्तान, पंजाब तथा दिल्ली क्षेत्र का ज्ञान था परन्तु अब आर्यों की जानकारी में भारत के अधिकांश भाग आ गये थे। कुरूक्षेत्र इस युग की सभ्यता का केन्द्र था, मध्यदेश भी इससे संबंधित था। मध्यदेश, सरस्वती से लेकर गंगा के दोआब तक विस्तृत था और कुरू, पांचाल तथा उशीनर आर्य समूह द्वारा अधिकृत था। सरयू और वरणावती से सिंचित कोसल एवं काशी, विदेहों के उपनिवेश गंडक के पूरब वाली दलदलों तथा विदर्भों से अधिकृत वर्धा की तराई का आर्यों को सम्यक ज्ञान हो चुका था। पूर्व बिहार में अंग दक्षिण बिहार में मागध जैसी मिश्रित जातियों, उत्तर बंगाल में पुत्र, विंध्य के जंगालों में पुलिन्द और शबर तथा गोदावरी की तराई में स्थित आन्ध्रों का उन्हें ज्ञान था।

इस काल की भौगोलिक जानकारी का ज्ञान इस काल में प्रयुक्त चित्रित धूसर मृणभाण्डों से भी लगता है। चित्रित धूसर भाण्डों का प्रयोग करने वाली लगभग 315 बस्तियां उत्खनित हुई है। इन बस्तियों के उत्खनन से आर्यों के प्रसरण का सम्यक अध्ययन होता है।

7.6 वैदिक साहित्य

विद्वानों ने वैदिक साहित्य को दो भागों-श्रुति साहित्य एवं स्मृति साहित्य में विभाजित किया है।इनका अध्ययन अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-

7.6.1 श्रुति साहित्य

श्रुति साहित्य के अन्तर्गत चार संहिताऐं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् को सम्मिलित किया जाता है, इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः-

वेद शब्द ‘विद्‘ धातु से बना है जिसका अर्थ है ‘‘जानना‘ सामान्यतः इसका अर्थ ‘ज्ञान‘ से है। वेदों की संख्या चार है, यथा‘ ऋक, साम, यजुः और अथर्व। प्रथम तीन कभी कभी त्रयी कहे जाते हैं और सर्वप्रथम यही धर्म ग्रन्थ माने गये। ऋग्वेद प्राचीनतम है इसमें 10 मण्डल तथा कुल मिलाकर 1028 सूक्त है। प्रत्येक सूक्त में

रचयिता ऋषि का नाम अथवा गोत्र, स्तुति की जाने वाले देवता का नाम तथा विनियोग मिलता है। होता नामक पुरोहित इनका पाठ करते थे। 2 से 7 तक मण्डल सर्वाधिक प्राचीन हैं जबकि 10 वां मण्डल उत्तर-वैदिक काल में जुड़ा प्रतीत होता है। सामवेद में शायद ही कोई स्वतन्त्र विषय है केवल 75 मन्त्रों को छोड़कर इसके सभी मन्त्र सीधे ऋग्वेद से लिये गये हैं। इसके मन्त्र सोमयज्ञ के अवसर पर उद्गात नामक एक विशेष वर्ग के पुरोहितों द्वारा गाये जाते थे। सामवेद, गायन से सम्बन्धित है और भारतीय संगीत का जन्म सामवेद से ही माना जाता हे। यजुः का अर्थ यज्ञ है, इस वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ विधियों का प्रतिपादन किया गया है इसीलिए यह यजुर्वेद कहलाया। यजुर्वेद में ऋग्वेद की ऋचाओं के अतिरिक्त मौलिक गद्य के मन्त्र भी थे जिन्हें अध्वर्यु नामक पुरोहित पढ़ते थे। इस संहिता में दो भिन्न पाठ हैं- तैत्तिरीय, मैत्रायनी और काठक पाठान्तर-ग्रन्थों में सुरक्षित कृष्णयजुर्वेदसंहिता और वाजसनेयी पाठान्तर ग्रन्थ में सुरक्षित शुक्लयजुर्वेद संहिता ।

उपरोक्त संहिताओं के बहुत समय बाद अथर्ववेद ने धर्म ग्रन्थ की स्वीकृति प्राप्त की। इसमें 40 अध्याय हैं। इसके विषय में ब्रहम ज्ञान, समाज निष्ठा, औषधि प्रयोग, शत्रु दमन, रोग निवारण , जन्त्र मन्त्र, रोना टोटका आदि सम्मिलित है। विषय विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस समय तक आर्य और अनार्य विचारधाराओं का समन्वय हो गया था।

दूसरे वर्ग के ग्रन्थ ब्राह्म-साहित्य के नाम से विख्यात है, ब्रह्म का अर्थ यज्ञ है, अतः यज्ञ विषयों का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ ब्राहमण कहलाये। ये वेदों पर आधारित है और वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करते हुए ही ये अपने यज्ञों का प्रतिपादन करते हैं। ये मूलतः गद्य ग्रन्थ हैं य़द्यपि कहीं कहीं पद्य भी मिलता है। प्रत्येक वेद के अपने अपने ब्राहमण हैं, यथा-ऋग्वेद का ऐतरेय और कौषीतकि ब्राहमण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राहमण, सामवेद का पंचविंश ब्राहमण तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राहमण।

तृतीय वर्ग में 'आरण्यक' है। ये जंगलों में दिये जाने वाले उपदेशों या जंगलों में रहने वाले ऋषियों के लिए रचित ग्रन्थ हैं। आरण्यकों में कोरे यज्ञवाद के स्थान पर चिन्तनशील ज्ञान के पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है। प्रमुख आरण्यकों में ऐतरेय आरण्यक, शांखायन आरण्यक, तैतरीय आरण्यक, मैत्रायनी आरण्यक तथा तलवकार आरण्यक है।

अन्त में 'उपनिषद्' हैं जिनका अर्थ है 'समीप पर बैठकर कहने योग्य सिद्धान्त या रहस्य ग्रन्थ।' उपनिषदों में दार्शनिक ढंग की गंभीर विवेचना है जो 'ब्रहमन् या आत्मन्' के दो विचारों के चारों ओर चक्कर काटती है। प्राचीनतम उपनिषदों साधारणतः बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व की समझी जाती है, किन्तु कुछ निश्चय ही बहुत बाद की है। उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है। प्रमुख उपनिषदों में ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न,

मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, वृहदारण्यक और कौषितिकी हैं। केवल उपरोक्त साहित्यिक रचनाऐं ही श्रुति कहलाती हैं।

7.6.2 स्मृति साहित्य

हांलाकि इन रचनाओं से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित सहायक ग्रन्थों को वेदांग कहते हैं और उन्हें स्मृति के अन्तर्गत रक्खा जाता है। वेदांग, संख्या में 6 हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्दस् और ज्योतिष।

शिक्षा में शुद्ध उच्चारण और वैदिक मन्त्रों के जोर से उच्चारण के चिन्हों पर विचार किया गया है। शिक्षा में ऋग्वेद के संहिता पाठ के साथ साथ पद पाठ भी दिया गया है जो पदों को एक पूर्ण व्याकरण सम्बन्धी विश्लेषण प्रदान करता हैं शिक्षा की सबसे प्रधान रचना 'प्रातिशाख्य सूत्र' है।

कल्प के अन्तर्गत श्रौत सूत्र जो बडे बडे यज्ञों के सम्पादन के लिए नियम बनाते हैं, गृह्य सूत्र जो दैनिक जीवन के छोटे छोटे उत्सवों के लिए नियम बनाते हैं तथा धर्म सूत्र जो पवित्र और धर्म निरपेक्ष नियमों और प्रशासन पर विचार करते हैं, सम्मिलित है। श्रौत सू.त्र के अन्तर्गत शुल्व सूत्र नाम की रचना है जो भारतीय ज्यामिती पर सबसे प्राचीन पुस्तक है।

व्याकरण, निरूक्त और छन्दस् में क्रमशः पाणिनी, यास्क, और पिंगल के महान् ग्रन्थ आते हैं, ज्योतिष का एक छन्दोबद्ध ग्रन्थ प्राप्त है, किन्तु यह तुलनात्मक दृष्टि से बाद का है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए

1. श्रुति साहित्य के अन्र्तगत वेदांग को सम्मिलित किया जाता है
2. उपनिषदों की संख्या 18 मानी जाती है
3. शुल्व सूत्र भारतीय ज्यामिती पर सबसे प्राचीन पुस्तक है

7.7 साराशं

पश्चिमी एशिया के बोगाजकोई (एशिया माइनर) से प्राप्त चौदहवीं शताब्दी ई0 पू0 के कुछ अभिलेखों में ऐसे राजाओं का उल्लेख आया है, जिनके नाम आर्यों जैसे थे और जो सन्धियों की साक्षी तथा रक्षा के लिए इन्द्र, मित्र, वरूण और नासत्य जैसे देवताओं का आहवान करते थे।ये उल्लेख वैदिक आर्यो के पश्चिम एशियाई संबंधों की ओर इशारा करते हैं।भारत में आर्यों के विस्तार का इतिहास क्रमिक है। ऋग्वेद आर्यों की पंजाब क्षेत्र में गतिविधियों की जानकारी देता है जबकि उत्तरवैदिक कालीन ग्रंथ आर्यो के पूर्व तथा दक्षिण दिशा में विस्तार को बतलाते हैं।वैदिक काल के अंत तक सरयू और वरणावती से सिंचित कोसल एवं काशी, विदेहों के उपनिवेश गंडक के पूरब वाली दलदलों तथा विदर्भों से अधिकृत वर्धा की तराई का आर्यो को सम्यक ज्ञान हो

चुका था। पूर्व बिहार में अंग दक्षिण बिहार में मागध जैसी मिश्रित जातियों, उत्तर बंगाल में पुत्र, विंध्य के जंगालों में पुलिन्द और शबर तथा गोदावरी की तराई में स्थित आन्ध्रों का उन्हें ज्ञान था। वैदिक सभ्यता की जानकारी इसके समृद्ध साहित्य से होती है। जिसके अन्तर्गत चार संहिताऐं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्,शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्दस् और ज्योतिष को सम्मिलित किया जाता है।

7.8 तकनीकी शब्दावली

1. प्रत्न ओकस् - प्राचीन निवास स्थान
2. अरण्यानी -जंगल
3. विश्वजनीन राजा -संपूर्ण विश्व का राजा
4. मध्यदेश - सरस्वती से लेकर गंगा के दोआब तक का क्षेत्र
5. चित्रित धूसर भाण्ड - सलेटी रंग के चित्रित बरतन जिन्हें आर्यो के साथ संबंधित किया गया है।

7.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 7.4 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य

इकाई 7.4 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य

इकाई 7.4 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य

इकाई 7.4 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- सत्य

इकाई 7.6 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य

इकाई 7.6 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य

इकाई 7.6 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

2.वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

3.ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्माःप्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद ,1984

4.ए.एल.बाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

7.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

Chattopadhyaya,K.C.: Studies in Vedic and Indo-Iranian Literature,Vol.-2,Bhartiya Vidya Bhawan,Varanasi,1978.

Dange,S.A.: Cultural Sources from the Vedas, Bhartiya Vidya Bhawan,Bombay,1977.

Ghurye,G.S.:Vedic India,Popular Prakashan, Bombat,1979.

Sharma,R.S: Material Culture and Social Formation in Ancient India, Macmillan,Delhi,1983

Tripathi,Vibha : The Painted Grey Ware: an Iron Culture of Northern India, Concept Publishing, Delhi,1976.

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. वैदिक ग्रथों के आधार पर उत्तर वैदिक काल तक आर्यों के भौगोलिक विस्तार पर चर्चा कीजिए।
2. वैदिक साहित्य का सविस्तार परिचय दीजिए।

इकाई आठ

वैदिक युग में धार्मिक विचार एवं धार्मिक अनुष्ठान

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा

- **8.3.1** ऋग्वेदिक कालीन धार्मिक विचारधारा
- **8.3.2** उत्तर वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा

8.4 वैदिककालीन धार्मिक विश्वास

- **8.4.1** एकम् सत
- **8.4.2** एकेश्वरवाद
- **8.4.3** बहुदेववाद
- **8.4.4** प्रकृति में विश्वास

8.5 देवी देवताओं के विभिन्न वर्ग

- **8.5.1** प्राकृतिक देवता
- **8.5.2** गृहस्थ्य जीवन से सम्बन्धित देवता
- **8.5.3** अमूर्त देवता
- **8.5.4** पशु रूप देवता
- **8.5.5** अन्य देवता

8.6 यज्ञ

8.7 धार्मिक जीवन

8.8 धार्मिक क्रिया-विधियाँ

- **8.8.1** स्तुति और प्रार्थना
- **8.8.2** यज्ञ
- **8.8.3** पितृ-पूजा
- **8.8.4** दाह क्रियाविधि

8.9 साराशं

8.10 तकनीकी शब्दावली

8.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपको आर्यों के भारत आगमन तथा उनके विस्तार के बारे में जानकारी दी गयी थी। वैदिक सभ्यता के विभिन्न पक्षों की जानकारी के स्रोत श्रुति और स्मृति साहित्य हैं।आर्यो के धर्म एवं दर्शन के विषय में भी श्रुति और स्मृति साहित्य पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इनके विषय में पूर्व इकाई में आपको जानकारी दी गयी है। अब आपको जानकारी है कि इनमें ऋग्वेद प्राचीनतम है इसमें 10 मण्डल तथा कुल मिलाकर 1028 सूक्त है। प्रत्येक सूक्त में रचयिता ऋषि का नाम अथवा गोत्र, स्तुति की जाने वाले देवता का नाम तथा विनियोग मिलता है। होता नामक पुरोहित इनका पाठ करते थे।यजुर्वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ विधियों का प्रतिपादन किया गया है इसीलिए यह यजुर्वेद कहलाया। यजुर्वेद में ऋग्वेद की ऋचाओं के अतिरिक्त मौलिक गद्य के मन्त्र भी थे जिन्हें अध्वर्यु नामक पुरोहित पढ़ते थे।अथर्ववेद में 40 अध्याय मिलते हैं। इसके विषय में ब्रहम ज्ञान, समाज निष्ठा, औषधि प्रयोग, शत्रुदमन, रोग निवारण , जन्त्र मन्त्र, रोना टोटका आदि सम्मिलित है।

ब्राहमण ग्रंथ वेदों पर आधारित है और वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करते हुए ही ये अपने यज्ञों का प्रतिपादन करते हैं। ये मूलतः गद्य ग्रन्थ हैं य़द्यपि कहीं कहीं पद्य भी मिलता है। प्रत्येक वेद के अपने अपने ब्राहमण हैं, यथा-ऋग्वेद का ऐतरेय और कौषीतकि ब्राहमण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राहमण, सामवेद का पंचविंश ब्राहमण तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राहमण। तृतीय वर्ग में ‘आरण्यक‘ है। ये जंगलों में दिये जाने वाले उपदेशों या जंगलों में रहने वाले ऋषियों के लिए रचित ग्रन्थ हैं। आरण्यकों में कोरे यज्ञवाद के स्थान पर चिन्तनशील ज्ञान के पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है। प्रमुख आरण्यकों में ऐतरेय आरण्यक, शांखायन आरण्यक, तैतरीय आरण्यक, मैत्रायनी आरण्यक तथा तलवकार आरण्यक है।

अन्त में ‘उपनिषद्‘ हैं जिनका अर्थ है ‘समीप पर बैठकर कहने योग्य सिद्धान्त या रहस्य ग्रन्थ।‘ उपनिषदों में दार्शनिक ढंग की गंभीर विवेचना है जो ‘ब्रहमन् या आत्मन्‘ के दो विचारों के चारों ओर चक्कर काटती है। प्राचीनतम उपनिषद साधारणतः बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व की समझी जाती हैं , किन्तु कुछ निश्चय ही बहुत बाद की हैं । उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है। प्रमुख उपनिषदों में ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, वृहदारण्यक और कौषितिकी हैं। केवल उपरोक्त साहित्यिक रचनाऐं ही श्रुति कहलाती हैं। वैदिक धर्मग्रथों से हमें आर्यों के धर्म-दर्शन का जो स्वरूप मिलता है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उस काल के मनीषियों ने धर्म और तत्व पर पर्याप्त चिंतन किया था।

8.2 उद्देश्य

वैदिक सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए पहली इकाई में आपको आर्यों के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गयी थी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी। पूर्व इकाई में आपको भारत में आर्यो का आगमन ,आर्यों का भारत में विस्तार, और वैदिक साहित्य की सामान्य जानकारी दी गया थी। इस इकाई में वैदिकयुग में धार्मिक विचार एवं धार्मिक अनुष्ठान की जानकारी से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा एवं धार्मिक विश्वास
2 वैदिककालीन धार्मिक धार्मिक जीवन
3. वैदिककालीन धार्मिक क्रियाविधियां
4. वैदिककालीन धर्म-दर्शन

8.3 वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा

ऋग्वेद की ऋचाऐं आर्यों की धार्मिक विचारधाराओं पर प्रकाश डालती हैं।इनका अध्ययन हम अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं-

8.3.1 ऋग्वेदिक कालीन धार्मिक विचारधारा

इस धर्म के लौकिक और दार्शनिक पक्ष हैं। ऋग्वेदकालीन आर्य नितान्त प्रवृत्तिमार्गी थे। उन्होंने आभी तक गृहत्याग, सन्यास ओर तप की कल्पना नहीं की थी। वे विश्व का अमंगलकारी कष्ट का स्थान नहीं मानते थे। उनमें शरीर से मुक्ति या सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए कोई तीव्र लालसा या उत्सुकता नहीं थी। प्रारम्भिक वैदिक धर्म को एकैकदेववाद कहा गया है, जिसके अनुसार लोग अलग-अलग देवताओं में विश्वास करते थे और जिनमें से प्रत्येक देवता अपनी जगह पर सर्वोच्च था। ऋग्वेदिक आर्यों के लिए विश्व और गृहस्थाश्रम उत्तम स्थान थे। वे गृहस्थाश्रम में ही रहकर देवोपासना और नैतिकता से कल्याण प्राप्ति के लिए प्रयास करते थे।

ऋग्वेद में मनुष्यों के सद्गुणों और नैतिकता पर भी बल दिया गया है, मनुष्य के वर्तमान तथा भविष्य के विषय में कोई संघर्ष नहीं था। धर्म, अर्थ एवं काम के बीच में कोई विरोधाभाष नहीं था, यह कल्पना की जाति थी कि सम्पूर्ण मानव जीवन सुख और समन्वय की इकाई है। प्रारम्भिक एकैकदेववाद के स्थान पर कालान्तर में आर्यो के धार्मिक विचारों में परिवर्तन होता गया। प्रकृति और देवताओं के विषय में आर्यों के मत में परिवर्तन हो गया। आर्यों ने यह समझ लिया था कि सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड में एक परम सत्ता है। ‘‘सत् एक ही है। विद्वान या ऋषिगण

उसे अग्नि, यम और मातरिश्वा आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं।‘‘ यह देवादिदेव के अस्तित्व की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद की बाद की ऋचाओं में एकेश्वरवाद की भावना और अद्वैतवाद की प्रवृत्ति के निश्चित संकेत और दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में कहा गया है कि ‘‘ आकार और अस्तित्व वाले का सृजन निराकार से हुआ‘‘।

अन्ततः हमें सृष्टि का एक संगीत मिलता है, जिसके अनुसार प्रारम्भ में न तो मृत्यु और न अमरता रहती थी और न दिन रात का भेद ही था। केवल वही एक शान्तिपूर्वक रहता था जो अपने ऊपर निर्भर था, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं था और इसके ऊपर भी कोई नहीं था।

8.3.2 उत्तर वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा

उत्तर वैदिक काल में आर्यों के धार्मिक जीवन में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। प्राचीन देवताओं की द्युति क्रमशः मलिन पड रही थी। पुरोहितों ने धर्म के यज्ञवाले भाग का बहुत ही प्रसार किया, जबकि प्रेतों, पिशाचों, जादू-मन्त्रों और जादू विद्या में सार्वजनिक अन्धविश्वास ने धर्म में स्थान प्राप्त कर लिया। समय के साथ एकेश्वरवादी ओर अद्वैतवादी प्रवृत्तियां, जो कि ऋग्वैदिक काल के अन्त में पनप रही थीं, अब स्पष्ट हो गयी। भौतिक प्राणियों के स्वामी प्रजापति के सामने पहले के सब देवता ज्योतिहीन हो गये। ईश्वर के अवतारवाद की धारणा प्रजापति की कहानियों से स्पष्ट होती है।, जिन्होंने शूकर का रूप धारण कर पृथ्वी को पाताल के जल से ऊपर उठाया और जो सृष्टि निर्माण के समय कच्छप हो गये।

साधारण जनता दुरूह धर्म विद्या या दार्शनिक विवेचना को नहीं समझ सकी और ऋग्वेद में परिचित कुछ देवताओं के प्रति अपना सम्मान दिखाने लगी, किन्तु वे देवता इतने प्रमुख नहीं थे, जितने इन्द्र या वरूण । उनमें एक रूद्र थे, जो पहले की प्रार्थनाओं में शिव की उपाधि रखते थे और शीध्र ही महादेव और पशुपति समझे जाने लगे। रूद्र के साथ ही दूसरी मूर्ति विष्णु की थी, जो ऋग्वेद में तीन डगों के लिए प्रसिद्ध सूर्य लोग के देवता थे। विश्व सम्बन्धी और धर्मानुरूप व्यवस्था के मूलस्वरूप दुःख से मनुष्य जाति को मुक्त करने वाले और देवताओं के रक्षक के रूप में विष्णु ने शीध्र ही वरूण का स्थान प्राप्त किया और स्वर्गीय देवों में ये सबसे अधिक महिमान्वित हुए । वैदिक धर्म पुस्तकों के अन्तिम काल तक वे वासुदेव समझे जाने लगे और इनहीं धर्म पुस्तकों में भागवत् सम्प्रदाय के बीज प्राप्त होते हैं।

8.4 वैदिककालीन धार्मिक विश्वास

वैदिक ग्रंथों के अनुशीलन द्वारा इमें तत्कालीन धार्मिक विश्वासों के विषय की निम्नलिखित रूपरेखा प्राप्त होती हैः-

8.4.1 एकम् सत

ऋग्वेद के रचयिता एक सत्य में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार यह 'सत्' अस्तित्व की नियन्त्रित करने वाला एक नियम है तथा यही असीम वास्तविकता है। ऋग्वेद में प्रार्थना, उपासना तथा भेंट द्वारा जिन देवताओं की स्तुति की गई है वे सभी सत्य के अभिभावक है। उन्हीं की कृपा द्वारा सत्य के नियम, को पहचाना जा सकता है।

8.4.2 एकेश्वरवाद

ईश्वर एक है परन्तु उसका वर्णन कई रूपों में किया जाता हैं ऋग्वेद के इस कथन से स्पष्ट होता है कि ऋग्वैदिक आर्य 'एकम् सत्' में विश्वास रखते हुए जिस सार्वभौमिक सत्ता में विश्वास रखते थे- वह एकेश्वरवाद थी।

8.4.3 बहुदेववाद

ऋग्वैदिक आर्य एक सार्वभौमिक सत्ता में विश्वास रखते हुए भी बहुदेववादी हो गये थे। ऋग्वेद अनेक देवताओं का अस्तित्व मानता है। एकेश्वरवाद तथा बहुदेववाद के इस समन्वयी दृष्टिकोण के विषय में यास्क ने उदाहरण देते हुए कहा है कि व्यक्तिगत रूप से भिन्न होते हुए भी जैसे असंख्य मनुष्य राष्ट्र के रूप में एक हैं वैसे ही विविध रूपों में प्रकट होने पर भी देवताओं में एक ही परमात्मा व्याप्त है।

8.4.4 प्रकृति में विश्वास

ऋग्वैदिक आर्यों का विश्वास था कि प्रकृति की प्रत्येक शक्ति एक देवता के अधीन कार्य करती है। परिणामस्वरूप वे प्रकृति को भी विभिन्न देवताओं का स्वरूप मानने लगे। प्रकृति के प्रतिनिधि के रूप में उनके देवताओ की तीन श्रेण्यिॉं थीं- (1) आकाश देवता- द्योस-वरूण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषन, अदीति, उषा तथा आश्विन आदि, (2) अन्तरिक्ष देवता - इन्द्र, रूद्र, मारूति, वात, पर्जन्य आदि, तथा (3) पृथ्वीवासी देवता- पृथ्वी, अग्नि, सोम, वृहस्पति, सरस्वती आदि।

8.5 देवी देवताओं के विभिन्न वर्ग

आर्यों द्वारा प्रयुक्त 'देव' शब्द की परिभाषा व्यापक थी। इसके अन्तर्गत परम पुरूष से लेकर, प्रकृति की विभिन्न शक्तियों, पूर्वज, आचार्य, माता पिता, आदि की कल्पना की जाती थी। आर्यों का विश्वास एक सर्वोच्चशक्ति 'सत्' अथवा परम पुरूष में था जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अनेक रूपों में स्वीकार की। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंनें प्रकृति, गृहस्थ, पशुरूप तथा अमूर्त देवताओं की कल्पना की। इन रूपों तथा अपने एवं देवता के मध्य सम्बन्धों से वे आश्चर्य, भय, एवं प्रभाव आदि भावनाओं से ओतप्रोत हुये और सभी के समक्ष

समान आदर से उन्होंने शीश झुकाकर सभी के देवता स्वरूप को स्वीकार किया। ऋग्वैदिक देवी देवताओं के विभिन्न वर्ग निम्नलिखित है-

8.5.1 प्राकृतिक देवता

प्रकृति के प्रधान कार्यों के द्योतक देवताओं के वर्ग में थीं, पृथ्वी, वरूण, इन्द्र, सूर्य (इसके पॉच रूप है- सूर्य, सविता, मित्र, पूषन तथा विष्णु), रूद्र, दो आश्विन (जो प्रायः तथा सांयकाल के रूप हैं) मरूत, वायु, वात रर्जन्य तथा ऊषा आदि है।

8.5.2 गृहस्थ्य जीवन से सम्बन्धित देवता

इस वर्ग के देवताओं का सम्बन्ध्या आर्यों के गृहस्थ जीवन से था। ये देवता अग्नि (इसके तीन रूप थे सूर्य, विद्युत तथा भौतिक अग्नि), सोम (अमृत का पेय) हैं।

8.5.3 अमूर्त देवता

हमें वैदिक ग्रंथों में अनेक ऐसे अनेक देवताओं की संकल्पना मिलती है,जिन्हें अमूर्त देवता के वर्ग में रक्षा जा सकता है। इस वर्ग में श्रद्धा तथा मन्यु थे।

8.5.4 पशु रूप देवता

कुछ स्थानों पर इन्द्र की वृषभ रूप में तथा सूर्य की अश्वरूप में पूजा की गयी है। सर्प को समुद्र का देवता कहा गया है।

8.5.5 अन्य देवता

ऋभु, आकाशचारी देवता, देव योनियॉ, अप्सराएं तथा गन्धर्व आदि अन्य देवता थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. अन्तरिक्ष देवता के अंर्तगत इन्द्र, रूद्र, मारूति, वात, पर्जन्य आदि सम्मिलित थे
2. आकाशवासी देवता के अंर्तगत पृथ्वी, अग्नि, सोम, वृहस्पति, सरस्वती आदि सम्मिलित थे।
3. अमूर्त देवता के वर्ग में पृथ्वी, वरूण, इन्द्र, सूर्य आदि को रखा जा सकता है।

8.6 यज्ञ

देवता के लिये मन्त्रपूर्वक द्रव्यत्याग को यज्ञ कहते थे। यज्ञ का प्रारम्भिक स्वरूप सरल था। ऋग्वेद काल में देवता के स्तुतिपरक मन्त्र पढ़े जाते थें और हवि के रूप में विविध धान्य अथवा गोरस से निर्मित अन्न आदि तथा सोमरस अर्पित किये जाते थे। क्रमशः अनेक यज्ञों में ऋत्विक के कार्य का चतुर्धा विभाजन भी होता था।

होता नामक ऋत्विक ऋचाओं का पाठ करता था। अध्वर्यु कर्मकाण्ड का भार वहन करता था। उदगाता सामगान करता था तथा ब्रहमा यज्ञ कर्म का अध्यक्ष होता था।

8.7 धार्मिक जीवन

गुरूचरण सुश्रुषा, तप और त्याग तथा श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अभ्यास से विकसित आर्यों का धर्म अद्वितीय था। सभ्यता के उस चरण में विश्व के किसी भी भाग में धर्म का ऐसा रूप नहीं मिलता। साधरण से परिवर्तन के अतिरिक्त उतर वैदिक काल का धार्मिक जीवन लगभग ऋग्वैदिक काल के ही समान था। आवागमन के सिद्धान्त का जन्म नहीं हुआ था तथा अहिंसा की नीति का प्रतिपादन होना अभी शेष था। अथर्ववेद की अधिकांश प्रार्थनाओं में आयु, संतान, धन एवं प्रभुता की कामना ही मिलती है। यजुर्वेद की लगभग सारी स्तुतियॉ तथा क्रियाएं भौतिक सुख प्राप्ति विषयक ही है। नई धार्मिक प्रवृत्तियों में परलोक गमन विष्यक विश्वास इस युग की नई देन थे। अथर्ववेद में कहा गया है कि अच्छे काम करने वाले व्यक्ति देवताओं के पास जाते हैं और यम के साथ रहते हैं। स्वर्ग में घी, दूध, शहद, दही और सुरा की भरमार है। स्वर्ग का उलटा नरक है जहॉ पर पापी लोग रक्त में बैठ कर बाल चबाते हैं। इन कथनों से प्रगट होता है कि उत्तर वैदिक काल में स्वर्ग और नरक की चिन्ता सताने लगी थी । इसी चिन्ता के फलस्वरूप जिस नई भावना का जन्म हुआ वह यह थी कि इस सब स्वर्ग और नरक का क्या तात्पर्य है। यह विश्व क्या है? किसने इसे बनाया? क्यों बनाया? आदि आदि। ये खोजकर्ता के स्वाभाविक प्रश्न थे। ‘‘ इस पर मनन करते करते विश्व के आदिकरण की कल्पना हुई। विश्वचक्र में संसार क्षणभंगुर प्रतीत होता हें, अतएव इसमें स्थायी सुख नहीं हो सकता दुःख तो बहुत सा है, इस सारे जंजाल को छोड कर शान्ति पाने की चेष्टा करनी चाहियें। इसी विचार से तप की परिपाटी चल निकली। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में सात ऋषियों द्वारा तपक ने का उल्लेख है। अथर्ववेद में कहा गया है कि तप, यज्ञ, ऋत, ओर ब्रहम आदि के आधार पर ही विश्व स्थिर है। ऐतरेय ब्राहमणों के अनुसार तप और यज्ञ द्वारा ही देवताओं ने स्वर्ग जीता था। इन सभी उल्लेखों आदि से स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक काल में कुछ नये दृष्टिकोणों का जन्म हो रहा था।

8.8 धार्मिक क्रिया-विधियॉ

वैदिक ग्रंथों में धार्मिक क्रियाविधियों की जानकारी विस्तार से मिलती है, इनका अध्ययन अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-

8.8.1 स्तुति और प्रार्थना

आर्यो की धार्मिक क्रियाविधियों में देवी-देवताओं की स्तुति, आराधना और प्रार्थना मुख्य थीं। प्रत्येक देवी-देवता के लिए भिन्न-भिन्न ऋचाऐं थीं और उनको गाकर ही देव-स्तवन होता था। आर्यों की धारणा थी कि उनके देवता प्रार्थना, उपासना और उपहार तथा भेंट से प्रसन्न होते हैं और सुख समृद्धि देते हैं।

8.8.2 यज्ञ

ऋग्वैदिक युग में यज्ञ स्वर्ग के देवों के मिलन का सांसारिक स्थान था। यज्ञ दो प्रकार के होते थे प्रथम नित्य और द्वितीय नैमित्तिक । नित्य यज्ञों में पांच महायज्ञ थे यथा ब्रहम- यज्ञ, देव- यज्ञ, पित्-यज्ञ , भूत-यज्ञ और मनुष्य-यज्ञ। उपर्युक्त पंच महायज्ञों के अतिरिक्त नैमित्तिक यज्ञ भी होते थे । यजमान अपने पुरोहितों की सहायता से नैमित्तिक यज्ञ विभिन्न और विशिष्ठ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कराते थे। शतपथ ब्राहमण में ऐसे अनेक यज्ञों का उल्लेख है यथा वैश्वदेव-यज्ञ से अग्नि लोक प्राप्त किया जा सकता था, साकमेध और वरूण-प्रधास से इन्द्रलोक और वरूणलोक मिलते थे। इसी प्रकार आयुकामेष्टि दीर्धायु होने के लिए वारीरिष्टी वर्षा के लिए आदि आदि।

8.8.3 पितृ-पूजा

ऋग्वैदिक युग में देव-पूजा के साथ-साथ पितृ-पूजा भी प्रचलित हो गयी थी, ऋग्वेद के दसवें मण्डल में एक ही स्थल पर देवताओं और पितरों का साथ-साथ विवरण है। देवताओं के समान पितरों की भी स्तुति की जाती थी और उनके लिए सोम, हवि और स्वधा का समर्पण किया जाता था। पितरों से आशा की जाती थी कि वे प्रसन्न होकर अपने वंशजों की रक्षा करेंगें, उन्हें शान्ति देंगें, उनकी सहायता करेंगें और हानि व कष्ट से उन्हें बचायेंगे।

8.8.4 दाह क्रियाविधि

इस युग में किसी मनुष्य की मृत्यु के पश्चात उसके शव को चिता पर ले जाते थे और मृतक के साथ उसकी पत्नी और अन्य सम्बन्धी होते थे। शव को चिता पर रख दिया जाता था। यदि मृतक ब्राहमण होता तो उसे दाहिने कर में लाठी दी जाती, क्षत्रिय होने पर धनुष और वैश्य होने पर बैल हाकने की छड़ी दी जाती थी। उसकी पत्नी उसके समीप तब तक बैठी रहती जब तक कि उसे ‘‘अरे महिला! उठो, और जीवित लोगों के लोक में आओ।‘‘ कहकर हटाया नहीं जाता था। इसके पश्चात उस व्यक्ति के परिवार के अग्निस्थल (हवन कुण्ड या चूल्हा) से लायी गयी आग से चिता प्रज्ज्वलित की जाती थी। इसके बाद मृतक के लिए यह ऋचा पढी जाती थी, ‘‘पुरखाओं के मार्ग पर जाओ‘‘ (ऋग्वेद 10-14)। अग्नि में शव के पूर्णतया भस्म होने पर शरीर

की अस्थियां एकत्रित कर ली जाती थीं और उन्हें धोकर स्वच्छ कर एक कलश में रखकर पृथ्वी में गाड दिया जाता था।

8.9 साराशं

प्रारम्भिक वैदिक धर्म को एकैकदेववाद कहा गया है, जिसके अनुसार लोग अलग-अलग देवताओं में विश्वास करते थे और जिनमें से प्रत्येक देवता अपनी जगह पर सर्वोच्च था। प्रारम्भिक एकैकदेववाद के स्थान पर कालान्तर में आर्यो के धार्मिक विचारों में परिवर्तन होता गया। प्रकृति और देवताओं के विषय में आर्यों के मत में परिवर्तन हो गया। आर्यों ने यह समझ लिया था कि सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड में एक परम सत्ता है। उत्तर वैदिक काल में आर्यों के धार्मिक जीवन में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। पुरोहितों ने धर्म के यज्ञवाले भाग का बहुत ही प्रसार किया, जबकि प्रेतों, पिशाचों, जादू-मन्त्रों और जादू विद्या में सार्वजनिक अन्धविश्वास ने धर्म में स्थान प्राप्त कर लिया। समय के साथ एकेश्वरवादी ओर अद्वैतवादी प्रवृत्तियां, जो कि ऋग्वैदिक काल के अन्त में पनप रही थीं, अब स्पष्ट हो गयी। भौतिक प्राणियों के स्वामी प्रजापति के सामने पहले के सब देवता ज्योतिहीन हो गये। ईश्वर के अवतारवाद की धारणा प्रजापति की कहानियों से स्पष्ट होती है, आर्यों द्वारा प्रयुक्त ‘देव‘ शब्द की परिभाषा व्यापक थी। इसके अन्तर्गत परम पुरूष से लेकर, प्रकृति की विभिन्न शक्तियों, पूर्वज, आचार्य, माता पिता, आदि की कल्पना की जाती थी। आर्यों का विश्वास एक सर्वोच्चशक्ति ‘सत्‘ अथवा परम पुरूष में था जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अनेक रूपों में स्वीकार की।

8.10 तकनीकी शब्दावली

प्रवृत्तिमार्गीं- सांसारिक

एकेश्वरवाद- वह दर्शन जिसमें एक ही परम सत्ता को स्वीकार किया जाता है।

अवतारवाद- वह विश्वास जिसके अनुसार मानवता की भलाई के लिए ईश्वर शरीर धारण करता है।

परलोक - प्रथ्वी के अतिरिक्त अन्य लोक

8.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 8.3 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- सत्य

इकाई 8.3 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य

इकाई 8.3 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य

इकाई 8.5 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- सत्य

इकाई 8.5 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य

इकाई 8.5 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- असत्य

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

2.वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

3.ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्माःप्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद, 1984

4.ए.एल.बाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

8.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

Keith,A.B.:Religion and Philosophy of the Vedas, Oxford University Press, London,1925.

Majumdar,R.C.(ed.):The History and Culture of the Indian People,Vol.1,The Vedic Age,Bhartiya Vidya Bhawan,Bombay,1951.

Pande, Rajbali: Hindu Samskaras :Socio-Religious Study of the Hindu Sacraments, Motilal Banarasidas,Delhi,1987.

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा एवं धार्मिक विश्वासों पर एक निबंध लिखिए।
2. वैदिककालीन धार्मिक क्रिया-विधियों के विषय में आप क्या जानकारी रखते हैं।

इकाई नौ

वैदिक युगीन सामाजिक तथा आर्थिक जीवन

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 वैदिककालीन सामाजिक जीवन

- **9.3.1** परिवार
- **9.3.2** भोजन
- **9.3.3** सुरापान
- **9.3.4** वस्त्र-वेशभूषा
- **9.3.5** श्रृंगार
- **9.3.6** आभूषण
- **9.3.7** मनोरंजन
- **9.3.8** स्त्रियों का पद तथा दशा
- **9.3.9** विवाह
- **9.3.10** प्रेम विवाह
- **9.3.11** बाल विवाह
- **9.3.12** बहुविवाह
- **9.3.13** विधवा विवाह
- **9.3.14** उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक जीवन

9.4 सामाजिक प्रतिरूप

- **9.4.1** ऋग्वैदिक काल
- **9.4.2** उत्तर वैदिक काल

9.5 वैदिक कालीन आर्थिक जीवन

- **9.5.1** ऋग्वैदिक कालीन आर्थिक प्रतिरूप
- **9.5.2** उत्तर-वैदिक कालीन आर्थिक प्रतिरूप

9.6 साराशं

9.7 तकनीकी शब्दावली

9.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

वैदिक काल से संबंधित पूर्व की इकाइयों में आपको आर्यों के भारत आगमन, उनका भारत में विस्तार , उनके द्वारा प्रणीत साहित्य आदि के विषय में विस्तार से जानकारी दी गई और आप विभिन्न तथ्यों से अवगत हुए। वैदिक साहित्य से आर्यों की जीवन प्रणाली के विभिन्न पक्षों की जानकारी भी मिलती है।इस इकाई में हम वैदिक जनों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

आर्यों के सामाजिक जीवन के विषय में जानकारी के प्रमुख स्रोत वैदिक ग्रंथ ही हैं।ऋग्वेदकालीन सामाजिक जीवन का परिचय ऋग्वेद से मिलता है जबकि उत्तर वैदिककालीन समाज की जानकारी के लिए शेष वैदिक ग्रंथों और विशेषकर सूत्र साहित्य का महत्व सर्वाधिक है।इन ग्रंथों के आधार पर हमें आर्यों की समाज व्यवस्था के साथ ही उसमें होने वाले परिवर्तनों की भी सम्यक जानकारी मिल जाती है।

आर्यों के आर्थिक जीवन के विषय में जानकारी के प्रमुख स्रोत भी वैदिक ग्रंथों में वर्णित विभिन्न संदर्भ हैं जिनके आधार पर उस काल के आर्थिक जीवन का एक अच्छा खाका खींचा जा सकता है।इन ग्रंथों के उल्लेखों से पता चलता है कि समय के साथ उत्तर वैदिक काल में आर्यों के भौतिक जीवन में भी परिवर्तन आये और विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्टीकरण में वृद्धि हुई।

9.2 उद्देश्य

वैदिक सभ्यता के विषय में जानकारी देने के लिए पिछली इकाइयों में आपको आर्यों के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गयी थी । भारत में आर्यों का आगमन ,आर्यों का भारत में विस्तार, वैदिक साहित्य ,वैदिकयुग में धार्मिक विचार एवं धार्मिक अनुष्ठान की आपको जानकारी दी जा चुकी है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. वैदिककालीन सामाजिक जीवन
2 वैदिककालीन सामाजिक प्रतिरूप
3. वैदिककालीन वैदिक कालीन आर्थिक जीवन
4. वैदिककालीन आर्थिक प्रतिरूप

9.3 वैदिककालीन सामाजिक जीवन

वैदिककालीन सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन हम अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं-

9.3.1 परिवार

आर्य समाज पितृसत्तात्मक था परंतु नारी को मातृरूप में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। पिता अथवा पितामह परिवार का प्रधान होता था तथा उसे ‘गृहपति‘ और ‘कुलाप‘ कहा जाता था। परिवार के सभी सदस्य उसके आज्ञाकारी होते थे। यह पद वंशानुगत होता था तथा पिता की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र अथवा पिता का छोटा भाई ‘गृहपति‘ अथवा ‘कुलाप‘ का स्थान ग्रहण करता था। पुत्र पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता था। कतिपय परिस्थितियों में पैतृक सम्पत्ति का विभाजन भी होता था। पिता की सम्पत्ति पर पुत्री का अधिकार नहीं था। संयुक्त परिवार प्रणाली होने से उत्तरदायित्व भी समान तथा सामूहिक था। परिवार के सम्मान, पारिवारिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा मान्यताओं के पालन में समस्त कुटुम्ब तत्पर रहता था। इसके अतिरिक्त कौटुम्बिक प्रेम तथा पारस्परिक सद्भावना एवं सहानुभूति ने पारिवारिक जीवन को सुख समृद्धता प्रदान की हुई थी। पत्नी अपने पति के साथ धार्मिक अनुष्ठानों में प्रमुख भाग लेती थी। ऋग्वेद के मन्त्रों में कहा गया है ‘‘पत्नी ही गृह है, वही गृहस्थी है तथा उसमें आनन्द है।‘‘ परिवार की सम्पन्नता का मापदण्ड परिवार का वृहद् होना था। ‘‘हमारे घर सन्तान से भरे रहें, हमें वीर पुत्रों की कमी न हो।‘‘ ऐसे अनेक उद्धरण मिलते हैं।

9.3.2 भोजन

दूध तथा उससे बने हुए पदार्थ आर्यों को विशेष प्रिय थे। दूध के साथ वे चावल पकाते थे। चावल और जौ को घी में मिलाकर खाया जाता था। एक प्रकार का हलवा दूध तथा यव के मिश्रण से बनाया जाता था। कीथ महोदय ने लिखा है ‘‘समूचे भारतीय इतिहास में तरकारियों तथा फलों के ही भोजन उपादान रहे हैं, परन्तु वैदिक भारतीय मांसाहारी थे।‘‘ ऋग्वेद कालीन आर्य भोजन के विषय में अभिव्यक्त इस मत से हम पूर्ण सहमत नहीं है। जिन पशुओं के मांस का प्रयोग इस समय किया जाता था वे भेड़ तथा बकरी थे। ऋग्वेद में मछली का नाम नहीं है तथा गाय पवित्र ,माता के समान मानी जाती थी अतः इनके मांस का भक्षण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जहॉ तक ऋग्वेद के वर्णनों का प्रश्न है- हम इतना ही कह सकते है कि आर्यों को शाकाहारी भोजन प्रिय था तथा केवल विशेष अवसरों पर ही मांस का प्रयोग किया जाता था। खाद्यान्नों में गेहूं , जौ, धान, उड़द, मूंग तथा अन्य दालों का विशेष प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद में रोटी तथा तवे का उल्लेख नहीं मिलता है अतः हम यह नहीं कह सकते कि वे आटे का उपयोग किस रूप में करते थे। मोटे तौर पर आर्यों का भोजन सादा, सन्तुलित तथा शक्ति वर्द्धक था।

9.3.3 सुरापान

सुरा निन्दित समझी जाती थी। सुरा पीकर लोग अपना आपा खो बैठते तथा सभा समितियों में आपस में लड़कर उपद्रव करते थे। आर्य सुरापान के दोषों से परिचित थे। परन्तु सुरापान का निषेध पूर्ण रूप से नहीं था। सुरापान किया जाता था। ऋग्वेद के नवें मण्डल तथा छहों अन्य सूक्तों में सोम की प्रशंसा की गई है। सोमवल्ली मूजवन्त पर्वत पर अथवा कीकटों के देश में उत्पन्न होती थी। सोम की मादकता तथा आनन्ददायिनी विशेषताओं का वर्णन भी मिलता है। सुरापान विशेष रूप से यज्ञादि के अवसर पर किया जाता था। सुरा देवताओं को भी अर्पित की जाती थी।

9.3.4 वस्त्र-वेशभूषा

आर्य प्रमुखतः तीन प्रकार के वस्त्र धारण करते थे- (1) अधोवस्त्र, (2) उत्तरीय तथा (3) अधिवास। ऋग्वेद में 'उष्णीय' अर्थात् सर पर धारण की जाने वाली पगड़ी का भी उल्लेख है। उनके वस्त्र सूत, ऊन तथा मृगचर्म द्वारा बनते थे। वे सिलाई से परिचित थे तथा उनके वस्त्र नाना प्रकार के होते थे। धनी तथा विलासी व्यक्ति जरी तथा अनेक रंगों के वस्त्र धारण करते थे। उत्सवों के अवसरों पर नये तथा विशेष आकार-प्रकार के वस्त्र पहनने की प्रथा थी। स्त्रियॉसूई द्वारा कढ़ाई करके वस्त्र बनाती थी।

9.3.5 श्रृंगार

श्रृंगार में स्त्रियों की विशेष रूचि थी। वे अपने केशों को अनेक प्रकार गूंधती थीं। वेणी स्त्री की सुन्दरता का प्रतीक मानी जाती थी। श्रृंगार विविध प्रकार के फूलों तथा आभूषणों द्वारा किया जाता था। काजल, तिलक, विभिन्न तेलों, सुगन्धियों तथा रंगों के श्रृंगार प्रयोग से उनका परिचय था। आर्य पुरूष भी लम्बे बाल रखते थे। दाढ़ी को 'श्मश्रु' कहा जाता था परन्तु क्षौर कराने की प्रथा थी। नाई को वाप्त कहा जाता था। सिल्ली पर उस्तरा तेज करने का उल्लेख मिलता है। अनेक स्त्रियां अपने सौन्दर्य तथा श्रृंगार पर फूली नहीं समाती थीं तथा प्रेमियों का चित्तहरण करने में कुशल थीं।

9.3.6 आभूषण

स्त्री तथा पुरूष समान रूप से आभूषण प्रिय थे। वे कानों में कर्णफूल, गले में निष्क, हाथों में कड़े और, छाती पर सुनहले पदक, गले में मणियॉं पहनते थे। इनके अतिरिक्त ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में माथे का टीका, भुजबन्ध, केयूर, नुपुर, कंकण, मुद्रिका आदि आभूषणों का उल्लेख मिलता है। आभूषणों का निर्माण करने वालों को स्वर्णकार कहा जाता था। आभूषणों में प्रयुक्त होने वाली सामग्री स्वर्ण, चॉदी, कीमती पत्थर, हाथीदॉत तथा मोती, मूंगें आदि थे।

9.3.7 मनोरंजन

ऋग्वेद में मनोरंजन की अनेक विधियों, साधनों तथा प्रणालियों का उल्लेख मिलता है। आमोद - प्रमोद के लिये विभिन्न उत्सवों का आयोजन किया जाता था। संगीत, मनोरंजन का मुख्य साधन था। इसके तीन अंग थे- नृत्य, गायन तथा वाद्य। वाद्यों मे वीणा, शंख, मृदंग तथा दुन्दुभि आदि प्रमुख थे। आखेट, घुड़दौड, मल्लयुद्ध तथा रथों की दौड़ का आयोजन किया जाता था। प्रेम और प्रसन्नता के भाव में आर्य लोग आनन्द से जीवन बिताते थे, परलोक की बहुत अधिक चिन्ता नहीं थी। खुले मैदान में स्त्री और पुरूष बड़े चाव से नाचा करते थे। खास तौर से स्त्रियों को नदियों और तालाबों में नहाने का बहुत शौक था। ऋग्वेद के समय में जैसा उल्लास और सामाजिक स्वातन्त्र था वैसा हिन्दुस्तान में फिर कभी नहीं देखा गया।

9.3.8 स्त्रियों का पद तथा दशा

सामाजिक परम्पराओं की मान्यतानुसार स्त्रियों का पद बहुत ऊँचा था। समाज के मानसिक तथा धार्मिक नेतृत्व में स्त्रियों का पर्याप्त सहयोग रहता था। पर्दे की प्रथा नहीं थी। शिक्षा के द्वार स्त्रियों के लिये भी खुले हुए थे। धार्मिक साहित्य में रूचि रखने वाली स्त्रियों को अपनी प्रवृत्ति के पालन में कोई रोक टोक नहीं थी। कई ऋषि स्त्रियों की रचनाएं ऋग्वेद संहिता में हैं। साहस और वीरता में स्त्रियॉ काफी आगे थीं उदाहरणार्थ विष्पला नामक स्त्री लड़ाई में गई थी तथा वह घायल हो गई तो अश्विनो ने उसकी चिकित्सा की थी। प्रत्येक माता पिता की अभिलाषा पुत्री की अपेक्षा पुत्र प्राप्त करने की होती थी। पुत्र अपने पिता के कार्यों में सहायक होता था तथा जन-धन की रक्षा के साथ पूर्वजों का तर्पण करता था। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पुत्री हेय तथा घृणा की वस्तु थी। ऋग्वेद के अनेक स्थानों पर पुत्र तथा पुत्रियों की दीर्घायु के लिये कामना करने का वर्णन मिलता है। पुत्र के अभाव में पुत्री को ही पुत्र सदृश्य माना जाता था। क्योंकि बाल विवाह की प्रथा नहीं थी अतः विवाह होने से पहले कन्याओं को शिक्षा प्राप्त करने का समय मिल जाता था। गृहकार्य, कताई, बुनाई, नाना प्रकार के व्यंजन बनाने की शिक्षा, नृत्य, गायन, संगीत, वाद्य, वृन्दादि स्त्री शिक्षा के प्रमुख अंग थें। कन्याओं को वैदिक शिक्षा दी जाती थी। पुत्री का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। ऋग्वेद में लोपामुद्रा, घोषा, विश्ववारा जैसी पारंगत तथ विदुषी स्त्रियों का उल्लेख किया गया है। स्त्रियों को यज्ञ करने का भी अधिकार था।

9.3.9 विवाह

लौकिक तथा परलौकिक शान्ति के लिये पुत्रों की कामना की जाती थी। यज्ञादि के अवसरों पर सपत्नीक उपस्थिति आवश्यक थी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विवाह आवश्यक था। विवाह व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का प्रमुख अंग था। वर की ओर से बारात वधू के घर जाती थी ताकि वहां पर सामूहिक भोज

के पश्चात् यज्ञाग्नि के चारों ओर परिक्रमा करके वर-वधू का विवाह होता था। इसके पश्चात् दोनों दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते थे। यह गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने का अनुष्ठान भी माना जाता था। विवाह होने से पहले वर-वधू के गुण-दोषों को आंक लिया जाता था। विवाह के उपरान्त स्त्री-पति के नियन्त्रण में रहती थी।

9.3.10 प्रेम विवाह

विवाह के मामलों में स्त्रियों को बड़ी स्वतन्त्रता थी। यौवनावस्था में स्त्री-पुरूष परस्पर मिलाजुला करते थे। अपनी रूचि के अनुसार प्रेम किया करते थे तथा प्रेम के कारण विवाह कर लिया करते थे। युवक युवतियॉ छिप कर मिलने का प्रयत्न करते थे। एक स्थान पर युवक द्वारा मन्त्र का प्रयोग करके अपनी प्रेमिका के घर वालों को सुलाने का वर्णन मिलता है।

9.3.11 बाल विवाह

प्रेमविवाह तथा विवाह प्रणाली के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालविवाह की प्रथा नहीं थी। ऋग्वेद में कहीं पर भी बालविवाह का प्रत्यक्ष या परोक्ष उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत ऋग्वेद में कहा गया हैं कि घोषा नामक स्त्री प्रौढ़ावस्था तक अविवाहित रही थी। अनेक स्त्रियॅा ऐसी भी थीं जो विवाह नहीं करती थी। एक ऐसी स्त्री का उल्लेख है जो अपने मॉ बाप के घर पर ही अविवाहित होते हुए वृद्धा होती जा रही थी।

9.3.12 बहुविवाह

कुछ गिने-चुने तथा समर्थ पुरूष ही बहुविवाह करते थे। आर्थिक कारणों तथा साधारण कौटुम्बिक सुख के कारणों से बहुविवाह करना जीवन को दुखमय बनाना था। ऋग्वेद में कहा गया है कि अनेक महापुरूष बहुविवाह करके घरेलू चिन्ताओं तथा पारिवारिक मनमुटाव के कारण बेहद परेशान रहते थे।

9.3.13 विधवा विवाह

ऋग्वेद में विधवा विवाह का निषेध नहीं है। ऋग्वेद की एक ऋचा में उस स्त्री से जो अपने पति के शव के साथ लेटी हुई है, कहा गया है- ‘‘स्त्री, उठो।तुम उसके पास लेटी हो जिसकी इहलीला समाप्त हो गयी है। अपने पति से दूर हट कर जीवितों के संसार में आओ और उसकी पत्नी बनो जो तुम्हारा हाथ पकड़ता है और तुमसे विवाह करने को इच्छुक है। इस आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित थी।

9.3.14 उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक जीवन

यह युग सामाजिक जीवन के उत्तरोत्तर विकास का युग था। इस बात के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं कि अब सामाजिक जीवन स्थिरता प्राप्त करने लगा था। कौटुम्बिक जीवन लगभग ऋग्वेदकाल के समान था। पितृसत्तात्मक परिवार का कर्ताधर्ता, पालक तथा स्वामी, पिता था। परिवार का प्रमुख होने के कारण सभी सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते थे तथा उसमें निष्ठा रखते थे। परिवार का प्रधान होने के नाते पिता ग्रामपरिषद तथा पंचायत में परिवार का प्रतिनिधित्व करता था। माता का भी बहुत आदर था। पैतृक सम्पत्ति संयुक्त परिवार की निधि होती थी तथा इसकी बढ़ोत्तरी के लिये परिवार के सदस्य संयुक्त प्रयास करते थे। अपने जीवनकाल में ही पिता अपने पुत्रों के मध्य सम्पत्ति का विभाजन कर देता था। पिता को पुत्रों से विशेष प्रेम होता था। प्रमाणों से पता चलता है कि पुत्र के दुष्चरित्र तथा व्यसनी होने पर पिता द्वारा दण्ड दिया जाता था। ऐतरेय ब्राहमण के अनुसार विश्वामित्र ने अपने परिवार के पचास सदस्यों को आज्ञापालन न करने के कारण दण्डकारण्य बन में निर्वासित कर दिया था। ऋग्वेद में उल्लेख है कि एक पुत्र की आंखें उसके पिता ने फोड़ दी थीं क्योंकि वह द्यूत का व्यसनी था। परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में साथ-साथ रहते थे पर सम्मिलित परिवार में अब कलह का डर रहने लगा था। कलह के कारण कई स्त्रियॉं ससुराल छोड़ कर मायके जाने लगी थी। इस युग में कुटुम्ब के जीवन में विघटन की प्रक्रिया का संकेत भ्रात्व्य शब्द के अर्थ परिवार्तन से मिलता है। भ्रातृव्य का अर्थ चचेरा भाई है। अथर्ववेद में उसे बान्धव माना गया है। भ्रातृव्य के शत्रु बनने का कारण संयुक्त परिवार में सम्पति के विभाजन से जुड़ा हुआ था। पति-पत्नी के सम्बन्ध बड़े सुखद थे। अनेक मन्त्रों में इनके प्रेम के बड़े सुन्दर वर्णन मिलते है। ऋग्वेद के अनुसार पत्नी घर की देखभाल करती थी।

9.4 सामाजिक प्रतिरूप

वैदिक काल के सामाजिक प्रतिरूप का अध्ययन महत्वपूर्ण है, इसकी जानकारी के उपरांत आप ऋग्वेदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल में आर्यो की सामाजिक व्यवस्था के विविध प्रतिरूपों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं-

9.4.1 ऋग्वैदिक काल

व्यक्ति का परिचय उसके गोत्र से था और उसकी प्राथमिक वफादारी अपने ‘जन‘ या कबीले के प्रति थी। ‘जनपद‘ शब्द जिसका तात्पर्य क्षेत्र से है, ऋग्वेद में नहीं मिलता है, कबीले के लिए प्रयुक्त दूसरा शब्द ‘विश्‘ है जो ग्राम नामक छोटी इकाइयों में विभक्त होता था, ये गा्रम जब आपस में लडते थे तो संग्राम हो जाता था।

कुल शब्द जिसका अर्थ परिवार से है ऋग्वेद में बहुत कम आया है। अन्य हिन्द-यूरोपीय भाषाओं में यह भतीजे, भांजे, पोते, चचेरे-भाई, ममेरे-भाई जैसे अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद से पता चलता है कि पितृसत्तात्मक सम्मिलित परिवार व्यवस्था प्रचलित थी। पुत्री की अपेक्षा पुत्र के जन्म को अधिक चाहा गया है हॉलाकि अधिक सन्तान और पशुधन की निरन्तर कामना की गयी है। विवाह-संस्था की स्थापना हो गयी थी यद्यपि आदिम प्रथाओं के प्रतीक बचे हुए थे। यम और यमी का उदाहरण महत्वपूर्ण हैं मरूतों और रोदसी के उदाहरण से बहुपतित्व की जानकारी होती है। हॉलाकि इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम है। ऋग्वेद में नियोग और विधवा-विवाह की जानकारी मिलती है, बाल-विवाह का अस्तित्व नहीं था। वर्ण के आधार पर समाज का वर्गीकरण था। दास और दष्युओं से जो कि अनार्य थे, दासों की भांति व्यवहार किया गया है। कबीलाई मुखिया और पुरोहित सम्पन्न वर्ग थे। कबीलाई समाज ईरान की भांति ही योद्धा, पुरोहित और सामान्य जन में विभाजित था, शूद्र ऋग्वेद के अन्तिम चरण में दिखाई देते हैं। व्यवसाय पर आधारित वर्गीकरण प्रारंभ हुआ दिखाई देता है- मैं कवि हूँ, मेरा पिता वैद्य है और मेरी मॉ चक्की पीसती है।

9.4.2 उत्तर वैदिक काल

चार वर्णों का स्पष्ट अस्तित्व, ब्राहमणों की शक्ति में वृद्धि मिलती है, ये प्रारंभ में 16 पुरोहित वर्ग में से एक थे। शूद्रों पर निर्योग्यताओं का थोपा जाना प्रारंम्भ हुआ, हॉलाकि अभी वे अनेक धार्मिक उत्सवों में भाग लेते थे। रथकारों का विशेष दर्जा था और उन्हें शूद्र होने के बावजूद भी जनेऊ धारण करने का अधिकार था। दशराज्ञ-युद्ध के फलस्वरूप आर्यों एवं अनार्यों में मेलजोल बड़ा, अतः इस काल में हमें जाति-समिश्रण के अत्यधिक उदाहरण मिलते हैं। वेदों के सम्पादक वेद व्यास स्वयं आर्य मुनि और मछुआरिन की सन्तान थे। उत्तर-वैदिक काल में ब्राहमणों तथा क्षत्रियों के बीच श्रेष्ठता के लिए संघर्ष की झलक भी हमें दिखाई देती है।

पिता की शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हुई, वह पुत्र को उत्तराधिकार से बेदखल भी कर सकता था। कुछ अपवादों के बावजूद सामान्यतः स्त्रियों की दशा गिरी। गोत्र-व्यवस्था स्थापित हुई और गोत्र-बहिर्विवाह की प्रथा शुरू हुई। चार आश्रमों की जानकारी मिलती है, हॉलाकि चौथे आश्रम सन्यास की अभी स्पष्ट रूप से स्थापना नहीं हुई थी। इस काल के साहित्य में नियोग-प्रथा का उल्लेख मिलता है। एक विवाह सामान्य प्रथा थी। खाली समय का प्रयोग गायन, वादन, नृत्य तथा चौपड़ के खेल में व्यतीत किया जाता था। सामवेद से संगीत का जन्म माना जाता है, यह आर्यों के विकसित ध्वनि-ज्ञान का परिचायक है। शिक्षा केवल उच्च वर्णों तक सीमित थी। निश्चित न्यायाधिकरण के दर्शन नहीं होते हैं। हत्या के अपराध में दाम चुकाकर मुक्ति पायी जा सकती थी। भूमि और उत्तराधिकार से सम्बन्धित झगड़ों का अस्तित्व मिलता है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. ऋग्वेदिक काल में परिवार की सम्पन्नता का मापदण्ड परिवार का वृहद् होना था।
2. ऋग्वेद में कहीं पर भी बालविवाह का प्रत्यक्ष या परोक्ष उल्लेख नहीं है।
3. ऋग्वेदिक काल में स्त्री तथा पुरूष समान रूप से आभूषण प्रिय थे।
4. ऋग्वेदिक काल में स्त्रियों को यज्ञ करने का भी अधिकार था।
5 .घोषा नामक स्त्री प्रौढ़ावस्था तक अविवाहित रही थी।
6. उत्तर-वैदिक काल में ब्राहमणों तथा क्षत्रियों के बीच श्रेष्ठता के लिए संघर्ष की झलक भी हमें दिखाई देती है।
7. वेदों के सम्पादक वेद व्यास स्वयं आर्य मुनि और मछुआरिन की सन्तान थे।

9.5 वैदिक कालीन आर्थिक जीवन

वैदिक काल के प्रारम्भिक समय में आर्य अधिकतर गांवों में फैले थे। वेद मन्त्रों में नगर शब्द नहीं है। निःसंन्देह पुरों का उल्लेख मिलता हैं, जो कभी-कभी बडे आकार के होते थे और कभी पत्थर के बने (अश्ममयी) और लोहे के बने (आयसी) होते थे।गांव वालों की प्रधान जीविका खेती थी। गावों में घर और खेती की भूमि व्यक्तियों और परिवारों के द्वारा अधिकृत मालूम पडती है, जब कि घास का मैदान (खिल्य) सम्भवतः जनसाधारण के अधिकार में होता था। कृषिकला का महत्व कृष्टि या चर्षणि (खेतिहर) नाम से व्यक्त होत है। यह नाम साधारण रूप से जनता के लिए और विशेष रूप से पांच प्रधान जनों के लिए जिनमें प्रारम्भिक वैदिक काल के लोग बंटे थे, लागू होता है जुते हुए खेत उर्वरा या क्षेत्र कहे जाते थे। ये बहुधा नहरों से सींचे जाते थे, खाद का उपयोग भी ज्ञात था। भूमि में उत्पन्न अन्न धान या यव ‘कहा जाता था। किन्तु इन नामों की ठीक-ठीक विशेषता प्राचीनतम साहित्य से नहीं लगती है। पकने पर वे हंसुए से काटे जाते थे, बोझों में बंधे रहते थे और खलिहान की भूमि में झाड़े जाते थे। उसके बाद चक्की में पीसे जाते थे और तब उनसे रोटी (अपूप) बनती थी।

कृषि के साथ ही पशुपालन का भी अत्यधिक महत्व था। गाय का अत्यधिक आदर था। दूध वैदिक घरों में भोजन का एक प्रधान अंग था। गोप प्रतिदिन पशुओं के झुण्डों को चरागाह में ले जाते थे। यमुना की तराई गोधन के लिए विशेष प्रसिद्ध थी। काम में आने वाले अन्य पशु, बैल, घोड़ा, कुत्ता, बकरी और भेड थे, गान्धार देश की भेड़ ऊन के लिए प्रसिद्ध थीं।

यद्यपि वैदिक जातियां खेतिहर और चरवाहा थीं, फिर भी वे व्यापार और उद्योग-धन्धों के प्रति उदासीन नहीं थीं। व्यापार अधिकतर पणि नामक लोगों के हाथ में था जो शायद अनार्य थे और जिनकी कृपणता

कहावत सी हो गयी थी। लेकिन उन्हीं में बृबु जैसे दानी व्यापारियों के उल्लेख भी मिलते हैं। संभवतः व्यापार प्रधान रूप से वस्तु-विनिमय के द्वारा होता था। बाद की संहिताओं से पता चलता है कि व्यापार की मुख्य वस्तुऐं कपड़े, तोशक, चादर और चमडे थीं। गाय मूल्य की प्रामाणिक इकाई थी। प्रारम्भिक काल के निष्क में प्रचलित सिक्के के सब गुण थे या नहीं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है।

स्थल द्वारा यातायात के प्रधान साधन रथ और गाड़ी थे। रथ सामान्यतः घोडों से और गाड़ी बैलों से खींची जाती थी। पथिकृत उपाधि अग्नि देवता की थी इससे स्पष्ट है कि जंगलों को जलाने के लिए अग्नि की सहायता ली जाती थी। ये जंगल, जंगली जानवरों और डाकुओं (तस्कर, स्तेन) से भरे रहते थे।

ऋग्वैदिक काल में समुद्र में जहाज संचालन प्रचलित था या नहीं, यह प्रश्न बहुत ही विवादग्रस्त है। कुछ विद्वानों के अनुसार नौ यात्रा, नावों के द्वारा नदियों के पार करने तक ही सीमित थी। परन्तु सौ पतवार वाले जहाज से यात्रा करने वाले यात्रियों के भी निश्चित उल्लेख हैं भुज्यु के जहाज डूबने की कहानी में समुद्र का वर्णन है ‘‘जो सहारा या आधार या ठहरने का स्थान नहीं होता है‘‘ कुछ विद्वानों के अनुसार उस समय समुद्र का अर्थ सिन्धु की निचली धारा समझा जाता था। कुछ अन्य विद्वान इस कहानी को दन्त कथा समझते हैं जो पथिकों से इकट्ठी की गई थी। किन्तु ‘‘ समुद्र के कोषों‘‘ के उल्लेख से समुद्र का परिचय संभव मालूम होता है। यदि वैदिक ‘मना‘ की एकरूपता बेबीलोन के मनः से ठीक है तो समुद्रों से दूर देशों और वैदिक भारत के बीच के पूर्वकालिक आवागमन के निश्चित प्रमाण है।

ऋग्वैदिक काल के उद्योग धन्धों में लकड़हारे, धातु संबंधी काम करने वाले, चमड़ा कमाने वाले, जुलाहे और कुंभकार के उद्योग विशेष उल्लेखनीय हैं। बढई केवल रथों, गाड़ियों, घरों और नावों का ही निर्माण नहीं करते थे, बल्कि वे अपनी कला कुशलता का परिचय सुन्दर ढंग के प्यालों के बनाने में भी देते थे। धातु सम्बन्धी कार्यकर्ता विभिन्न हथियार एवं आभूषण बनाते थे। चमड़े के काम करने वाले पानी के पीपे, धनुष की डोरी, ढेलवास ओर हस्त-रक्षक (ढाल) का निर्माण करते थे।

उत्तर वैदिक काल में लोग जिनमें धनवान् व्यक्ति (इभ्य) भी सम्मिलित थे, अभी तक अधिकतर गांवों में ही रहते थे। परंतु नागरिक जीवन की सुविधाऐं अज्ञात नहीं थीं। कुछ गांवों में जमींदार वर्ग के लोग छोटे-छोटे किसान मालिकों को हटाकर पूरे गांवों के मालिक बनते जा रहे थे। फिर भी इस काल में भूमि हस्तान्तरित करने के काम को सार्वजनिक स्वीकृति नहीं मिलती थी और भूमि विभाजन केवल सजात्य लोगों की अनुमति से ही किया जा सकता था। प्रधान पेशों में अभी भी कृषि थी, परन्तु कृषि के औजारों में पर्याप्त उन्नति हुई थी। भूमि में नये प्रकार के फल व अन्न उपजाये जाने लगे थे। किन्तु कृषक कठिनाइओं से मुक्त नहीं थे। एक उपनिषद में

ओले के साथ आंधी-पानी, तुषारपात और टिड्डी-दल का वर्णन आता है, जिसने एक देश को बहुत हानि पहुंचायी और बहुत लोगों को देश त्याग के लिए विवश किया।

व्यापार और उद्योग-धन्धों की उन्नति हुई। खानदानी व्यापारियों (वणिज) का एक वर्ग बन गया । पर्वतवासी किरातों के साथ स्थलीय व्यापार था, जो पर्वतों से खोदकर लायी हुई जडी बूटियों को कपडों, चटाइयों और चमडों से बदलते थे। समुद्र से लोग खूब परिचित थे। शतपथ ब्राहमण में उल्लिखित प्रलय की कहानी में कुछ विद्वान बेबीलोन के साथ संबध का प्रमाण पाते हैं।निष्क, शतमान और कृष्णल जैसे मूल्य की सुविधाजनक इकाइयों से व्यवसाय की उन्नति हुई। लेकिन यह सन्देहास्पद है कि मूल्य की इन इकाइयों में नियमित सिक्कों के सब गुण मौजूद थे। वणिक् संगठित थे जैसा कि श्रेष्ठिन् के उल्लेखों से मालूम पडता है।

उद्योग धन्धों सम्बन्धी वृत्तियों के भेद महत्वपूर्ण है। विशेषज्ञता अहुत आगे बढ चुकी थी। रथ बनाने वाला बढई से, धनुष बनाने वाला धनुष की डोरी और तीर बनाने वालों से और चमड़े का काम करने वाला हड्डी सजाने वाले से अलग पहचाना जाता था। स्त्रियां औद्योगिक जीवन में भाग लेती थीं। वे कसीदावाली पोशाक बनाने का काम, कांटों का काम, रंगने का काम आदि करती थीं।

9.5 आर्थिक प्रतिरूप

वैदिक काल के सामाजिक प्रतिरूप की भांति ही आर्थिक प्रतिरूप का अध्ययन महत्वपूर्ण है, इसकी जानकारी के उपरांत आप ऋग्वेदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल में आर्यो की आर्थिक व्यवस्था के विविध प्रतिरूपों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं-

9.5.1 ऋग्वैदिक कालीन आर्थिक प्रतिरूप

आर्यो को भारत आने से पहले ही कृषि का ज्ञान था, ऋग्वेद में बुआई, कटाई, मड़ाई का उल्लेख मिलता है। उन्हें विभिन्न मौसमों या ऋतुओं का ज्ञान था। जौ प्रमुख खाद्यान्न था। ‘गाय‘ के अनेक उल्लेख बताते हैं कि चरवाहा कबीला था। गायों के लिए युद्ध होते थे, ‘गविष्ठि‘ जो गायों की खोज अर्थ रखता है, बाद में युद्ध के लिए प्रयुक्त होने लगा। उपहार गायों या दासों के रूप में दिये जाने के उल्लेख है। जमीन में भूमि अधिकार मान्य था। बढई, जुलाहा, चमडा कमाने वाले, कुंभकार के उल्लेख मिलते हैं। ‘अयस‘ (तांबा या कांसा) शब्द से धातुकार की उपस्थिति भी ज्ञात होती है।व्यापार मुख्यतः ‘पणि‘ या अनार्य व्यापारियों के हाथ में था, जिनसे आर्य ईर्ष्या करते थे। प्रमुखतः गाय मूल्य की इकाई थी और वस्तु विनिमय प्रणाली प्रचलित थी।

9.5.2 उत्तर-वैदिक कालीन आर्थिक प्रतिरूप

1000 ई0पू0 से गांधार, बलूचिस्तान, पूर्वी पंजाब, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और राजस्थान में लोहे का प्रयोग होने लगा। लोहा, श्याम या कृष्ण अयस कहा जाता था। समाज पशुचारक से कृषक हो गया। 24 बैलों वाले हल, कृषि-कर्म की बढ़ोत्तरी बताता है। जनक द्वारा हल चलाने तथा बलराम को हलधर बताने वाले उल्लेख कृषि कर्म को प्रतिष्ठा प्रदान करते है। हल संभवतः लकडी के होते थे। आर्यो को उर्वरक तथा सिंचाई का ज्ञान था। जौ उत्पन्न होता था परन्तु गेहूं और चावल प्रमुख खाद्यान्न थे। चार प्रकार के मृणभाण्ड-लाल, काले, काले और लाल तथा धूसर-प्रयुक्त होते थे। धूसर मृणभाण्ड की 315 बस्तियों से स्थाई जीवन के प्रमाण मिलते है।नगर शब्द का उल्लेख है, संभवतः हस्तिनापुर और कौशाम्बी प्राक्-नगर थे। समुद्र और समुद्री यात्राओं का उल्लेख मिलता है।वैश्यों ने व्यापार को अपनाया तथा भूमिधर बन गये। शूद्र जो अधिकतर अनार्य थे उन्होंने कृषि-कर्म अपनाया।सोना, कांसा और तांबे के अतिरिक्त इस काल में टिन, लेड, चांदी और लोहे का उल्लेख मिलता है।विभिन्न प्रकार के घरेलू नौकर तथा प्रारम्भिक प्रकार की औद्योगिक संरचना मिलती है, जिसमें नट, भविष्य-वक्ता, बांसुरी-वादक, नृत्यक के पेशों का उल्लेख मिलता है। वस्तु-विनिमय की प्रणाली विद्यमान थी, सिक्के संभवतः इस काल के अन्त में 6वीं शती ईसा-पूर्व से ही प्रचलित हुए।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. वैदिक काल के प्रारम्भिक समय में आर्य अधिकतर नगरों में फैले थे।
2. आर्यों को भारत आने से पहले ही कृषि का ज्ञान नहीं था
3. वैदिक काल में उपहार हाथी के रूप में दिये जाने के उल्लेख है।

9.6 सारांश

आर्य समाज पितृसत्तात्मक था , पिता की सम्पत्ति पर पुत्री का अधिकार नहीं था। संयुक्त परिवार प्रणाली होने से उत्तरदायित्व भी समान तथा सामूहिक था। परिवार के सम्मान, पारिवारिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा मान्यताओं के पालन में समस्त कुटुम्ब तत्पर रहता था। इसके अतिरिक्त कौटुम्बिक प्रेम तथा पारस्परिक सद्भावना एवं सहानुभूति ने पारिवारिक जीवन को सुख समृद्धता प्रदान की थी। पत्नी अपने पति के साथ धार्मिक अनुष्ठानों में प्रमुख भाग लेती थी। उत्तर वैदिक काल में चार वर्णों का स्पष्ट अस्तित्व, ब्राहमणों की शक्ति में वृद्धि मिलती है, ये प्रारंभ में 16 पुरोहित वर्ग में से एक थे। इसी काल से शूद्रों पर निर्योग्यताओं का थोपा जाना प्रारंम्भ हुआ, कृषि के साथ ही पशुपालन का भी अत्यधिक महत्व था। गाय का अत्यधिक आदर था। दूध वैदिक घरों में भोजन का एक प्रधान अंग था। गोप प्रतिदिन पशुओं के झुण्डों को चरागाह में ले जाते

थे। यमुना की तराई गोधन के लिए विशेष प्रसिद्ध थी। काम में आने वाले अन्य पशु, बैल, घोड़ा, कुत्ता, बकरी और भेड थे, गान्धार देश की भेड़ ऊन के लिए प्रसिद्ध थीं। स्थल द्वारा यातायात के प्रधान साधन रथ और गाड़ी थे। रथ सामान्यतः घोडों से और गाड़ी बैलों से खींची जाती थी। पथिकृत (पथ का निर्माता) उपाधि अग्नि देवता की थी इससे स्पष्ट है कि जंगलों को जलाने के लिए अग्नि की सहायता ली जाती थी। ये जंगल, जंगली जानवरों और डाकुओं (तस्कर, स्तेन) से भरे रहते थे। उद्योग धन्धों सम्बन्धी वृत्तियों के भेद महत्वपूर्ण है। विशेषज्ञता अहुत आगे बढ चुकी थी। रथ बनाने वाला बढई से, धनुष बनाने वाला धनुष की डोरी और तीर बनाने वालों से और चमड़े का काम करने वाला हड्डी सजाने वाले से अलग पहचाना जाता था। स्त्रियां औद्योगिक जीवन में भाग लेती थीं। वे कसीदावाली पोशाक बनाने का काम, कांटों का काम, रंगने का काम आदि करती थीं। निष्क, शतमान और कृष्णल जैसे मूल्य की सुविधाजनक इकाइयों से व्यवसाय की उन्नति हुई। लेकिन यह सन्देहास्पद है कि मूल्य की इन इकाइयों में नियमित सिक्कों के सब गुण मौजूद थे। वणिक् संगठित थे जैसा कि श्रेष्ठिन् के उल्लेखों से मालूम पडता है।

9.7 तकनीकी शब्दावली

गृहपति /कुलाप -घर अथवा कुल का मुखिया
लौकिक - इस लोक से संबंधित
इहलीला- इस लोक का जीवन,कर्म इत्यादि
पितृसत्तात्मक - जिस परिवार में शक्ति एवं सत्ता पिता के पास होती है
पथिकृत- पथ का निर्माता

9.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 9.4.2 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- सत्य
इकाई 9.4.2 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- सत्य
इकाई 9.4.2 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य
इकाई 9.4.2 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- सत्य
इकाई 9.4.2 के प्रश्न संख्या 5 का उत्तर- सत्य
इकाई 9.4.2 के प्रश्न संख्या 6 का उत्तर- सत्य
इकाई 9.4.2 के प्रश्न संख्या 7 का उत्तर- सत्य
इकाई 9.5.2के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य

इकाई 9.5.2के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य

इकाई 9.5.2 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- असत्य

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

2.वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

3.ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्माःप्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद, 1984

4.ए.एल.बाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

9.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

Altekar,A.S: The Position of Women in Hindu Civilization, Motilal Banarsidas,Delhi,1965.

Chattopadhyaya,K.C.: Studies in Vedic and Indo-Iranian Literature,Vol.-2,Bhartiya Vidya Bhawan,Varanasi,1978.

Dange,S.A.: Cultural Sources from the Vedas, Bhartiya Vidya Bhawan,Bombay,1977.

Ghurye,G.S.:Vedic India,Popular Prakashan, Bombat,1979.

Sharma,R.S: Material Culture and Social Formation in Ancient India, Macmillan,Delhi,1983

Tripathi,Vibha : The Painted Grey Ware: an Iron Culture of Northern India, Concept Publishing, Delhi,1976.

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. वैदिककालीन समाज व्यवस्था पर एक सारगर्भित निबंध लिखिए।

2. वैदिक कालीन अर्थव्यवस्था के विषय में आपकी क्या जानकारी है? ऋग्वेदिक काल से उत्तर वैदिक में अर्थव्यवस्था में आये परिवर्तनों को रेखांकित कीजिए।

इकाई दस

मगध का उत्कर्ष एवं सोलह महाजनपद

10 .1 प्रस्तावना
10 .2 उद्देश्य
10 .3 परिचय
10 .4 महाजनपद एवं उनका परिचय
10 .5 महाजनपदों की प्रशासन प्रणाली
10 .6 महाजनपदों की आर्थिक स्थिति
10 .7 मगध की भौगोलिक स्थिति
10 .8 मगध साम्राज्य की स्थापना और विस्तार
10 .9 मगध की सफलता के कारण
10 .10 सारांश
10 .11 तकनीकी शब्दावली
10 .12 स्वमूल्यांकित प्रश्न
10 .13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10 .14 निबंधात्मक प्रश्न

10 .1 प्रस्तावना

इसी पुस्तक के वैदिकयुगीन भारत नामक अध्याय के अंतर्गत हमने ऋग्वेद के बारे में पढ़ा है और इस अध्याय में हमने एक शब्द ‘जन’ के बारे में भी जानकारी हासिल की थी, जिसका प्रयोग ऋग्वेद में एक विशिष्ट जन-समूह के सन्दर्भ में किया गया है। यह समूह अपने गुट के सभी सदस्यों को एक ही पूर्वज का वंशज मानता था और कई परिवारों को मिलाकर किसी एक जन की स्थापना हुआ करती थी। ये जन प्रारंभ में खानाबदोश और घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करते थे तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगातार भ्रमणशील रहते थे। जनपद शब्द का उल्लेख हमें पहली बार ब्राह्मण ग्रंथों में देखने को मिलता है इसके साथ ही ऋग्वेद एवं अथर्ववेद की सहिंताओं, ब्राह्मणों तथा उपनिषदों के अध्ययन से विभिन्न जनों के जीवन तथा संगठन को विस्तारपूर्वक जाना

और समझा जा सकता है। इनके माध्यम से हम जन से जनपद तक की विकास यात्रा की विभिन्न अवस्थाओं में जनपदीय जीवन के विभिन्न आयामों को देख सकते हैं।

मानवीय विकास के क्रम में मानव ने इस युग में प्रवेश करने तक कृषि और पशुपालन को पूर्णतः अपना लिया था जिसके कारण यह 'जन' एक निश्चित स्थान पर स्थायी निवास बनाकर रहने लगा और उसने अपना एक राजनैतिक संगठन बना लिया, तथा यहीं से जनपद की अवधारणा की शुरुआत देखने को मिलती है। वस्तुतः किसी एक विशिष्ट क्षेत्र में बस जाने से इन जनों को भी लाभ हुआ और अब इन्हें उस विशेष भौगोलिक क्षेत्र के रूप में नयी अभिज्ञता मिल गई थी। आगे मजबूत जनपदों ने अन्य कमजोर छोटे जनपदों को विजित कर उन पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। समय के साथ-साथ इन जनपदों को अपने आधिपत्य को और अधिक मजबूत बनाये रखने के लिए राजतंत्र एवं प्रजातंत्र की आवश्यकता महसूस हुई, और इसी समय से बड़े जनपदों द्वारा छोटे जनपदों को जीत लिए जाने के कारण महाजनपदों का विकास हुआ। बुद्ध-काल आते आते हमें षोडश महाजनपदों की पुख्ता जानकारी प्राप्त होने लगती है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार इन जनपदों का युग संभवतः 1000 ई. पू. से 500 ई. पू. के बीच तक था। इस काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में जनपदीय शासन-व्यवस्था देखने को मिलती है। कुछ समय बाद इन्हीं महाजनपदों में एक शक्तिशाली महाजनपद मगध अन्य सभी महाजनपदों को हराकर पूरे उत्तर भारत को एक राजनैतिक सूत्र में बाँधने का कार्य करता है, इसी अध्याय के दूसरे भाग में हम मगध साम्राज्य का भी अध्ययन करेंगे।

10 .2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य आपको प्राचीन भारत के 16 महाजनपदों की जानकारी प्रदान करना और उस समय-विशेष की सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक दशाओं से परिचित करवाना है, इस अध्याय के माध्यम से हम न केवल मगध साम्राज्य की सफलता के कारणों, उसके शासकों की नीतियों को समझ सकेंगे बल्कि उन कारकों की पहचना करने में भी समर्थ होंगे जो मगध साम्राज्य के पतन के प्रमुख कारक बने।

10 .3 परिचय

छठी शताब्दी ई. पू. को केवल भारत में ही नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व में बौद्धिक क्रान्ति का काल माना जाता है। भारत के सन्दर्भ में इस समय तक समाज में लोहे का प्रचलन आम हो चुका था। भारत में लोहे का प्राचीनतम साक्ष्य हमें 1000 ई. पू. के आस-पास उत्तरप्रदेश के **अतरंजीखेड़ा** नामक स्थल से प्राप्त होता है ठीक इसी के साथ साथ हमें उत्खनन में चित्रित धूसर मृदभांडों के साक्ष्य भी मिलने लगते हैं। इस समय उत्तरी भारत में कोई एक प्रभुत्वसंपन्न राज्य न होकर समस्त उत्तरी भारत छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में बंटा हुआ था। पश्चिमी उत्तरप्रदेश और बिहार राज्य के आस पास लोहे की सर्व-ग्राह्यता होने के कारण बड़े-बड़े प्रादेशिक राज्यों या

जनपदों के निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार हो चुकी थी। लोहे के मजबूत हथियारों का इस्तेमाल होने के कारण समाज में योद्धा वर्ग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगा था। लौह धातु से कृषि कार्य हेतु कई नए प्रकार के उपकरणों का भी आविष्कार किया गया, जिस कारण कृषि कार्य में भी तेजी आयी, साथ ही अनाज की अधिशेष मात्रा भी पैदा होने लगी, कृषि कार्य में विस्तार के कारण लोगों का नए नए प्रदेशों में प्रवास हुआ और लोगों में भूमि के प्रति एक मोह पैदा हुआ। कृषि अधिशेष के चलते शहरी जीवन की भावना प्रबल हुई और इसी को आधार बनाकर लोगों ने राज्यों का निर्माण होते देखा। धीरे-धीरे लोगों का वही लगाव जो कि अपने कुल को लेकर था पहले अपने निवास-स्थान, गाँव और भूमि से हुआ फिर यह लगाव उस भू-भाग से जुड़ गया जिस जनपद में वे निवासरत थे। महर्षि पाणिनी द्वारा 450 ई. पू.के आस-पास ऐसे 40 जनपदों का उल्लेख किया गया है जिनका विस्तार-क्षेत्र उत्तर भारत, अफगानिस्तान से लेकर मध्यएशिया तक था।

10 .4 महाजनपद एवं उनका परिचय

बौद्ध साहित्य और जैन साहित्यों से हमें जनपद कालीन परिस्थितियों का एक स्पष्ट चित्रण मिलता है। बौद्ध साहित्य के अंगुत्तरनिकाय से हमें बुद्ध कालीन षोडश महाजनपदों की सूचना प्राप्त होती है इन महाजनपदों की सीमाएँ सुनिश्चित थी और ये अपनी स्वतन्त्र जन-सत्ता और प्राधिकारों का उपभोग करते थे। इस ग्रन्थ में महाजनपदों की उन सभी परिस्थितियों तथा राजनैतिक संघर्षों का उल्लेख किया गया है जिनके परिणामस्वरुप आगे चलकर मगध महाजनपद एक अखिल भारतीय साम्राज्य का स्वरुप ग्रहण कर सका।

अंगुत्तरनिकाय के मुताबिक 16 महाजनपदों में शामिल थे – १.काशी २.कोशल ३.अंग ४.मगध ५.वज्जि ६.मल्ल ७.चेदि ८.वत्स ९.कुरु १०.पांचाल ११.मत्स्य १२.शूरसेन १३.अश्मक १४.अवन्ति, १५.गांधार तथा १६.कम्बोज।

वहीं एक अन्य स्त्रोत (जैन ग्रंथ का **'भागवती सूत्र'**) इन सोलह महाजनपदों की एक भिन्न सूची प्रदान करता है, जो 'अंगुत्तर निकाय' से थोड़ा अलग है। इसके अनुसार १६ महाजनपदों की सूची निम्नवत है- १.अंग २.वग ३.मगध ४.मलय ५.मालव ६.अच्छ ७.वत्स ८.कक्ष ९.पाण्ड्य अथवा पौण्ड १०.लाट या राघ ११.वज्जि १२. मल्ल१३. काशी १४.कोशल १५.अवह १६.सम्मुत्तर (सुम्होत्तर)।

दोनों ग्रंथों की सूचियों से प्राप्त जानकारी के आधार पर हम कह सकते हैं कि अंग, मगध, वत्स, वज्जि, काशी तथा कोशल महाजनपद का उल्लेख दोनों ही ग्रंथों में किया गया है। इसके अलावा जैसा की हमने ऊपर भी बताया है, महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण ग्रंथ में लगभग ४० प्रकार के राज्यों की चर्चा करी है और इन राज्यों में प्रजातंत्र तथा गणतंत्र दोनों प्रकार के राज्यों की चर्चा की गई है। उन्होंने प्रजातन्त्र के लिये संघ या 'गण' शब्द तथा राज्यों के लिये 'जनपद' शब्द को प्रयुक्त किया है। महर्षि पाणिनि द्वारा बताये गए कुछ मुख्य

प्रजातन्त्रात्मक गणों में शामिल हैं- क्षुद्रक, मालव, अम्बस्थ, मद्र, मधुमन्त, आप्रीत, वासाती, भग्ग, शिबी, हास्तिनायण, प्रकण्ड या आधुनिक फरगाना, तथा अश्वकायण और उसकी राजधानी माश्कावती। इसके विपरीत राज्यों के सन्दर्भ में उन्होंने जिन साम्राज्यों का वर्णन किया है उनमें प्रमुख हैं- गांधार, अवंति, मगध, अंग, कुशीनारा, विदेह तथा कोशल। आगे इन प्रमुख महाजनपदों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

- **अंग:** इस महाजनपद का उल्लेख हमें पालि साहित्य में देखने को मिलता है। इसकी राजधानी चंपा थी और वर्तमान में बिहार राज्य का भागलपुर एवं मुंगेर इस महाजनपद में शामिल था। इसका पड़ोसी राज्य मगध था और इन दोनों राज्यों की सीमा को चंपा नामक नदी सीमांकित करती थी। कनिंघम के अनुसार भागलपुर के निकट अवस्थित दो गाँव चम्पानगर और चंपापुर इसकी प्राचीन राजधानी चंपा जिसे महाभारत और पुराणों में मालिनी भी कहा गया है; के अवशेष अपने में समेटे हुए हैं।

- **काशी: 'गुट्टिला' जातक** के अनुसार इस जनपद की राजधानी वाराणसी थी जो की वरुणा और अस्सी नदियों के संगम पर अवस्थित है| यह शहर तत्कालीन भारत वर्ष के 6 प्रमुख शहरों में से एक था। जैन धर्म के 23वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ इसी काशी के सम्राट अश्वसेन के पुत्र थे। काशी तथा कोसल राज्यों के मध्य प्रतिद्वंदिता प्रारंभ से ही थी और **कुनाल जातक तथा महावग्ग** से हमें पता चलता है कि काशी के सम्राट **ब्रह्मदत्त** ने कोशल पर अपना अधिकार कर लिया था। लेकिन बुद्ध काल आने तक काशी का कूटनीतिक रूप से पतन हो चला और यह कुछ समय तक कोसल प्रदेश का हिस्सा भी रहा। आगे मगध और कोसल में भी काशी को लेकर संघर्ष शुरू हुआ और अंततः अजातशत्रु के समय काशी मगध में पूर्णतः समाहित हो गया।

- **वत्स:** इसकी राजधानी कौशांबी थी जो आधुनिक प्रयागराज से 38 मील दूर **'कोशस'** नामक गाँव के रूप में आज भी सुप्रसिद्ध है। गंगा के दक्षिण में अवस्थित यह प्रदेश अत्यंत खुशहाल और अपने उच्चस्तरीय वस्त्र निर्माण के लिए जाना जाता था। बुद्ध काल में यहाँ का प्रसिद्ध शासक **उदयन** था और उसकी अवन्ति के राजा **चंडप्रद्योत** के साथ प्रतिद्वंदिता थी। दोनों के मध्य संप्रभुता को लेकर निरंतर संघर्ष होते थे जिसका उल्लेख हमें **भास** रचित **प्रतिज्ञा-योगन्धरायण, वासवदत्तम** और **श्रीहर्ष की रत्नावली एवं प्रियदर्शिका** आदि नाटकों से ज्ञात होता है। स्रोत बताते हैं कि उदयन को हाथी पकड़ने में अत्यंत रूचि थी और चंडप्रद्योत ने एक लकड़ी का कृत्रिम हाथी जिसमें उसके 60 सैनिक छिपे हुए थे को सीमा पर रखवाकर षडयंत्र रचा और उदयन इस चक्रव्यूह में फंस गया। आगे फिर इसी कथानक में वासवदत्ता और उदयन का प्रणय प्रसंग खास रूप से उल्लेखनीय है जिसकी चर्चा अन्य किसी अध्याय में की जाएगी।

- **कोशल:** उत्तरी भारत के प्राचीनतम राज्यों में से एक इस प्रदेश का क्षेत्र लगभग आज का पूरा अवध क्षेत्र था। इस राज्य का क्षेत्रविस्तार पूर्व में गंडक (सदानीरा), पश्चिम में पांचाल, दक्षिण में सई (स्यन्दिका) तथा

उत्तर में नेपाल की बर्फ से आच्छादित पर्वतमालाओं तक था। इसके मध्य भाग से सरयू नदी बहती थी जो इसे दो भागों मी बाँटती थी, उत्तरी कोशल की राजधानी श्रावस्ती तथा दक्षिणी कोशल की राजधानी कुशावती थी। महाकाव्य रामायण के अनुसार, कोसल पर सूर्यवंशी राजाओं का शासन था और श्री राम जिनकी राजधानी आधुनिक फ़ैज़ाबाद के पास अयोध्या में स्थित थी, का संबंध भी इसी राज्य से था। फिर एक जगह 'सुत्तनिपात' में गौतम बुद्ध ने स्वयं कहा है कि – ‘‘हिमालय पर्वत से दक्षिण में कोशल के निवासी रहते हैं जो अत्यन्त समृद्ध एवं बैभव सम्पन्न हैं। वे 'आदित्य' वंशी हैं तथा जन्म से 'शाक्य' हैं। मेरा भी जन्म उसी परिवार में हुआ है परन्तु मुझे सांसारिक भोग-विलास की लालसा नहीं है। मैंने इन्द्रिय-जनित आनन्द का परित्याग कर दिया है।" इस उद्धरण से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि कोशल सम्राट सूर्यवंशी थे तथा उनका रक्त सम्बन्ध 'कपिलवस्तु' के शाक्यों से भी था।

- **शूरसेन:** कौशाम्बी की ही भाति इस प्रदेश की राजधानी ‘मथुरा’ भी यमुना नदी के अंचल पर बसी हुई थी। महाभारत तथा पुराणों के अनुसार यहाँ यदुवंशियों का शासन था और ये यदु लोग अन्य कई छोटे-छोटे उपवंशों में विभाजित थे, जिनमें ‘सात्वत’ और ‘वितिहोत्र’ प्रमुख थे। मथुरा या शूरसेन की चर्चा हमें वैदिक साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलती, हालाँकि ग्रीक लेखकों ने ‘सौरसेनोई’ और ‘मेथोरा’ के रूप में इसकी चर्चा अवश्य की है। बौद्ध-ग्रंथों में यहाँ के एक शासक अवंतिपुत्र का जिक्र आता है इसी के समय इस प्रदेश में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। राजा के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरा एवं अवंति के मध्य वैवाहिक संबंध थे। इसके अलावा ‘काव्य-मीमांसा’ में भी एक शासक कुविंद की चर्चा शूरसेन सम्राट के रूप में की गई है। आगे जाकर इस प्रदेश का विलय भी मगध साम्राज्य में हो जाता है।

- **पांचाल:** यह प्रदेश आधुनिक रूहेलखंड और मध्य दोआब के क्षेत्र में अवस्थित था। जातक, महभारत और दिव्यावदान जैसे स्त्रोतों से हमें जानकारी मिलती है कि यह क्षेत्र दो भागों में विभक्त था- उत्तरी पांचाल जिसकी राजधानी **अहिच्छत्र** (आधुनिक बरेली के आसपास) थी, तथा दक्षिण पंचाल जिसकी राजधानी **काम्पिल्य** (गंगा से लेकर चम्बल तक विस्तार) थी। ‘उत्तराध्ययान सूत्र’ में एक संज्य नामक व्यक्ति का उल्लेख आता है जिसे पांचाल का शासक स्वीकार किया गया है, इसने राजधर्म और भोग विलासिता का जीवन छोड़कर जैनधर्म को अपना लिया था। अपने मूलस्वरूप में पांचाल एक राजतंत्र था लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य काल आने तक यह राज्य राजतंत्रात्मक व्यवस्था को त्यागकर गणराज्य में तब्दील हो गया था।

- **कुरु:** कुरु राज्य और पांचाल राज्य का उल्लेख हमें वैदिक साहित्य में मिलता है। इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रंथों में भी इन दोनों राज्यों के जोड़े को अत्यधिक शक्तिशाली बतलाया गया है, साथ ही इस बात की

जानकारी भी प्राप्त होती है कि इन दोनों राज्यों के शासकों ने अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया था। जातकों के अनुसार इस राज्य की राजधानी **इंद्रप्रस्थ** (आधुनिक दिल्ली) थी। 'महासुतसोम जातक' के मुताबिक इस साम्राज्य का विस्तार ११२ योजन तक था और इसकी राजधानी का विस्तार ७ योजन था। इतिहासकार राय चौधरी का मत है की संभवतः इस वंश के प्रमुख शासकों के कौशाम्बी (वत्स) स्थानानंतरण के पश्चात यह प्रदेश कई छोटी-छोटी रियासतों में विभक्त हो गया होगा इसलिए हमें इसमें इन्द्रप्रस्थ और इशुकार जैसी रियासतों के बारे में भी पढ़ने को मिलता है। संभवतः यह सब उस समय हुआ होगा जब कुरु प्रदेश का महत्वपूर्ण नगर हस्तिनापुर बाढ़ में विनष्ट हो गया होगा, हस्तिनापुर के उत्खननों से इस बात की पुष्टि भी होती है।

❖ **मत्स्य:** इस राज्य का क्षेत्र वर्तमान के जयपुर शहर के आस पास पड़ता है। इस प्रदेश की सीमाएं चम्बल से लेकर सरस्वती नदी के वन अंचलों तक फ़ैली हुई थी। इसकी राजधानी **विराटनगर** (वर्तमान का बैराट) का नाम इसके संस्थापक विराट के नाम पर रखा गया था। विभिन्न साहित्यिक स्रोतों से हमें 'अपर मत्स्य', 'वीर मत्स्य' आदि का उल्लेख भी प्राप्त होता है, संभवतः ये सब मूल मत्स्य राज्य की शाखाएँ रही होंगी।

❖ **चेदि:** आधुनिक बुंदेलखंड का क्षेत्र इस महाजनपद के आधीन शामिल था। यमुना नदी के किनारे अवस्थित इस प्रदेश की राजधानी **शुक्तिमती या सोत्थिमती** थी। महाकाव्यों में में शुक्तिमती नामक नदी की चर्चा भी मिलती है। पर्गीटर महोदय के अनुसार यह शुक्तिमती नगरी बांदा के आसपास कहीं अवस्थित थी और वर्तमान की केन नदी ही शुक्तिमती नदी रही होगी। इसके साथ ही चेदि के लोगों का प्रसंग हमें ऋग्वेद में भी देखने को मिलता है, यहाँ दानस्तुति के एक मन्त्र के अंत में चेदि सम्राट 'कस-वैद्य की प्रशंसा की गई है। कलिंग (ओडिशा) में जिस चेदि वंश का शासक खारवेल था, वह संभवतः इसी चेदि प्रदेश की शाखा ने ही स्थापित किया होगा।

❖ **10.अवन्ति:** यह राज्य वर्तमान मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र और निमाड़ इलाके में अवस्थित था जो कि विन्ध्य पर्वतमाला द्वारा दो भागों में बंटा हुआ था। इसके उत्तरी भाग की राजधानी **उज्जैन** तथा दक्षिणी भाग की राजधानी **महिष्मती** थी। बुद्ध काल के दौरान यहाँ का शासक चंड प्रद्योत था। अपने समय में यह राज्य बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध केंद्र था। चंड प्रद्योत के समय अवंति की वत्स, मगध एवं कोसल जैसे राज्यों के साथ प्रतिद्वंदिता जगजाहिर थी। आगे चलकर मगध सम्राट शिशुनाग ने इस प्रदेश को जीतकर मगध साम्राज्य में मिला लिया।

❖ **गांधार:** यह राज्य आधुनिक पाकिस्तान के पेशावर (पुष्पपुर) एवं रावलपिंडी के इलाके में अवस्थित था। इसकी राजधानी **तक्षशिला** विद्या तथा व्यापार दोनों का एक सुप्रसिद्ध केंद्र थी। 'शतपथ ब्राह्मण' के

मुताबिक यहाँ के शासकों को ब्राह्मण धर्मानुयायी कहा गया है। लगभग छठी सदी के उत्तरार्ध में इस प्रांत को फारसवासियों द्वारा जीत लिया गया था, इसकी पुष्टि डेरियस के 'बहिस्तान' में उत्कीर्णित लेख (५२० से ५१८ ई. पू.) से होती है जिसमें गांधार प्रदेश को अखमेनियन साम्राज्य का हिस्सा बतलाया गया है।

- **कम्बोज:** यह भी उत्तरापथ में अवस्थित एक प्रमुख प्रदेश था जो गांधार के आसपास कहीं पश्चिमी पाकिस्तान में ही अवस्थित था। महाभारत में राजपुर नामक नगर की पहिचान कम्बोज से की गई है-

- "कर्ण राजपुत्रं गत्वा काम्बोजानिर्जितास्त्वाया।"

इसके साथ ही ह्वेनसांग ने भी अपने लेखन में इस स्थल का उल्लेख किया है और वह अपनी रचना 'सी-यू-की' में कहता है कि कम्बोज के निवासी कुरूप, असभ्य, उद्दंड एवं भयानक हैं। इस प्रदेश की राजधानी महाकाव्य युग में 'राजपुर' थी। रायस डेविस नामक इतिहासकार ने द्वारका को इस प्रदेश की राजधानी स्वीकार किया है हालांकि यह बात भी सही प्रतीत होती है कि द्वारका नामक कोई भी नगर कम्बोज में नहीं था।

- **अश्मक:** गोदावरी नदी के तट पर अवस्थित इस प्रदेश की राजधानी **पोतन या पाटन** थी। इसका वर्णन हमें अंगुत्तरनिकाय में भी मिलता है। 'सुत्तनिपात' तथा जातक के अनुसार यह प्रदेश मूलक तथा कलिंग के बीच में अवस्थित था। वायु पुराण के अनुसार अश्मक तथा मूलक के शासक इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रिय थे। अश्मक प्रदेश के बारे में यह बात भी ध्यातव्य है कि 16 महाजनपदों में से यह अकेला दक्षिण भारत में अवस्थित महाजनपद है अन्य सभी १५ महाजनपद उत्तरी भारत के सीमांकन क्षेत्र में अवस्थित हैं।

- **वज्जि:** मगध के उत्तर में तथा हिमालय की तलहटी की ओर वज्जि संघ अवस्थित था। इस वज्जि संघ में कुल आठ गणराज्य थे और इनमें प्रमुख थे- विदेह, वज्जि, ज्ञात्रिक एवं लिच्छवि। जहाँ विदेह कुल की राजधानी 'मिथिला' थी वहीं लिच्छवि संघ की राजधानी 'वैशाली' थी; जो कि पूरे वज्जि संघ की भी राजधानी थी। ज्ञात्रिक कुल की राजधानी कुन्डग्राम में थी और आगे चलकर इसी वंश में महावीर स्वामी (जिन) का जन्म हुआ जिनके पिता सिद्धार्थ इस कुल ले प्रधान थे। महावस्तु से इस बात की जानकारी मिलती है कि गौतम बुद्ध लिच्छवियों के निमंत्रण पर वैशाली गए थे। बौद्ध साहित्य लिच्छवियों के सामाजिक व कूटनीतिक जीवन पर प्रकाश डालता है। लिच्छवियों का आंतरिक संगठन अच्छा था और गौतम बुद्ध के विचार में लिच्छवि गण इसी कारण अजेय था।

- **मल्ल:** मल्ल राष्ट्र भी दो भागों में विभाजित था जिसमें एक की राजधानी **कुशीनारा** और दूसरे की **पावा** थी। इसी कुशीनारा नामक स्थल पर महात्मा बुद्ध ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था। इस घटना के कुछ समय उपरान्त ही मल्ल राष्ट्र ने अपनी स्वतंत्रता खो दी और मगध राज्य ने इसे विजित कर अपने शासन क्षेत्र में

शामिल कर लिया। संभवतः इस प्रदेश में भी पहले राजतंत्रात्मक शासन था लेकिन कालांतर में वहां गणराज्य की स्थापना हुई। यह प्रदेश भी जैन एवं बौद्ध धर्म का एक लोकप्रिय स्थल था।

- **मगध:** इस राज्य का संस्थापक **बृहद्रथ** को माना जाता है। इस सर्व शक्तिशाली महाजनपद का उदय बिहार के नालन्दा व उसके आसपास की क्षेत्र में हुआ और इसकी प्रारंभिक राजधानी **राजगृह** थी बाद में इसकी राजधानी **पाटलीपुत्र** को बनाया गया। कालांतर में इस महाजनपद का स्वरुप साम्राज्य ने ले लिया। इसका विस्तार से अध्ययन हम इसी अध्याय में आगे करेंगे।

अभी तक आपने जिन १६ महाजनपदों के बारे में ऊपर अध्ययन किया है उन सभी के नाम एवं उनकी शासन-व्यवस्था को हम छन्दोबद्ध कर निम्न प्रकार से भी अभिव्यंजित कर सकते हैं -

"मगध, अवन्ति, वत्स कोसल में राजतन्त्र का दृढ स्वरूप था।
मल्ल, वज्जि के प्रबल राज्य में, शासन का संघीय स्वरूप था।
काशी, कुरु, कम्बोज, मत्स्य, पाञ्चाल, चेदि गणतंत्र राज्य थे।
इसी रूप में शूरसेन, अश्मक, गांधार और अंग राज्य थे ॥"

चित्र १: महाजनपद कालीन भारत

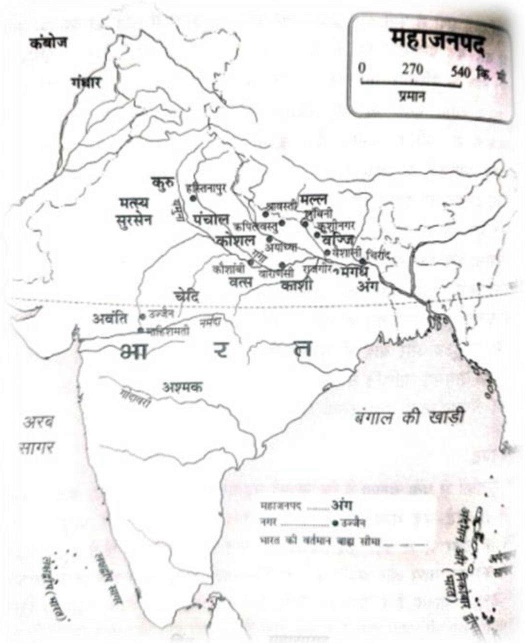
महाजनपद
0 270 540 कि. मी.
प्रमान
कंबोज
गंधार
कुरु
हस्तिनापुर
मत्स्य
सुरसेन
पंचाल
कोशल
श्रावस्ती
मल्ल
लुंबिनी
कपिलवस्तु
कुशीनगर
वज्जि
अयोध्या
वैशाली
कौशांबी
वाराणसी
राजगीर
मगध
वत्स
काशी
अंग
चेदि
अवंति
उज्जैन
माहिष्मती
नर्मदा
भा र त
अश्मक
गोदावरी
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
महाजनपद .... अंग
नगर .... ● उज्जैन
भारत की वर्तमान बाह्य सीमा

स्रोत: प्रारंभिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, संस्करण-2010

10 .5 महाजनपदों की प्रशासन प्रणाली

महाजनपदों का अध्ययन करने से हमें इस काल की शासन प्रणाली के बारे में भी जानकारी मिलती है। दरअसल इस समय के इन प्रदेशों में कहीं राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था तो कहीं गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था विद्यमान थी। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार इस समय पूर्व दिशा के राजाओं का (मगध, कलिंग, अंग आदि) साम्राज्य के लिए अभिषेक होता था और उन्हें सम्राट कहा जाता था। पश्चिम दिशा (सौराष्ट्र, कच्छ, सौवीर आदि) का शासन स्वराज्य कहलाता और उसके शासकों को स्वराट कहा जाता था। उत्तर दिशा में अवस्थित हिमालय के आसपास के राज्य (उत्तर कुरु, उत्तर मद्र, आदि) जहाँ वैराज्य प्रणाली स्थापित थी, वहाँ के शासक विराट कहलाते थे। दक्षिण दिशा के (यादव) शासकों को भोज कहा जाता था। इसी प्रकार मध्य देश (कुरु, पंचाल, कोसल आदि) के शासकों को राजा कहा जाता था। इस तरह ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्टतः इन पाँच प्रकार की शासन प्रणालियों का उल्लेख किया गया है।

सम्राट उन शासकों को कहा जाता था जिनका राजपद वंशानुगत हुआ करता था और यह अपने प्रदेश की सीअमों का निरंतर विस्तार करने के इच्छुक रहते थे। मगध के सम्राट इसी प्रवृती के थे। भोज उन शासकों के लिए प्रयुक्त किया जाता था जो वंशानुगत न होकर एक निश्चित कार्यकाल के लिए राजपद पर शुसोभित होते थे संभवतः यादव कुल में यह परम्परा विद्यमान थी। पश्चिम क्षेत्र की शासन प्रणाली में शासक की स्थिति दशा 'समानों में ज्येष्ठ' (Primus interpares-first among the equals) की थी। आगे मध्यकाल में भी अफगान शासकों के काल में भी इस परम्परा के दर्शन होते हैं। वस्तुतः इन स्वराज्यों में कुलीन वर्ग शासक श्रेणी के रूप में कायम था और इन कुलीन श्रेणियों की दशा एक समान मानी जाती थी। उतारी क्षेत्र में वे जनपद शामिल थे जहाँ जनता अपना शासन स्वयं चलाती थी अर्थात वहाँ राजा एक प्रकार से अनुपस्थित था। कुरु, पांचाल जैसे जनपद मध्यदेश में शामिल थे और यहाँ प्राचीन काल से चली आ रही परंपरागत शासन प्रणाली विद्यमान थी।

क्षेत्र	शासक
पूर्व	सम्राट
पश्चिम	स्वराट
उत्तर	'विराट'
दक्षिण	भोज
मध्य देश	राजा

गंगा की घाटी में बढ़ती जनसंख्या और उसी के साथ तकनीक में होने वाली उन्नति ने अधिशेष उत्पादन को बढ़ावा दिया और इसी के चलते व्यापार-वाणिज्य में भी प्रगतिशील तत्वों का

समावेश हुआ। इस सब ने एक तरफ जहाँ राज्य के करारोपण का आधार विस्तृत किया वहीं एक सबल नौकरशाही की नींव भी रखी। इस समय तक राजा की मदद के लिए विभिन्न पदाधिकारियों की एक श्रेणी का विकास हो चुका था जिन्हें रत्निन कहा जाता था। जिस में शामिल थे- संग्रहीत, सूत, ग्रामणी, भागदुध, पुरोहित आदि। ये सभी लोग सीधा राजा के प्रति उत्तरदायी थे और इन्हें नकद वेतन प्रदान किया जाता था। सेना के प्रधान को सेनानी कहा जाता था और पुरोहित धार्मिक मामलों में राजा का सर्वोच्च सलाहकार होता था। पुरोहित का मुख्य कार्य यज्ञ व कर्मकांड में देवताओं की प्रार्थना किया जाना और राजा के सर्वगुण संपन्न होने की कामना करना था। इन साब बातों ने राजा की शक्ति को अब पहले से अधिक बढ़ा दिया।

10 .6 महाजनपदों की आर्थिक स्थिति

विश्व के किसी भी क्षेत्र में आर्थिक महत्त्व की सबसे बड़ी घटना संभवतः लोहे का आगमन और इसके खनन की विधियों की जानकारी होना रहा, साथ ही इस समय तक कृषि का समुचित विकास हो चुका था इन दोनों घटनाओं ने व्यापार की प्रगति को तीव्रता प्रदान करी जिससे अर्थव्यवस्था में सिक्कों का प्रचलन बढ़ा साथ ही नगरों का महत्त्व बढ़ने लगा। वस्तुतः इन कस्बों और शहरों का उदय एक विजातीय जनसँख्या के रूप में हुआ जिसे राजा और व्यापारियों द्वारा ही नियंत्रित किया जाता था। ये कस्बे पुर, निगम तथा नगर आदि के रूप में उल्लेखित किये जाते रहे हैं। यह कस्बे और नगर, गाँवों की अपेक्षाकृत एक विशाल भू-भाग को खुद में समाहित किये होते थे, उदारहण स्वरुप समकालीन साहित्यों में अयोध्या तथा वाराणसी जैसे नगरों का विवरण मिलता है जिनका विस्तार क्रमशः ३० वर्ग किलोमीटर और ५० वर्ग किलोमीटर था। हालाँकि यह वर्णन अतिश्योक्ति पूर्ण प्रतीत होते हैं, क्योंकि इन स्थलों में हुआ उत्खनन इसके एक साधारण बस्ती होने का ही आभास देता है जिसका विस्तार किसी भी हाल में ५ वर्ग-किलोमीटर से अधिक नहीं था। बौद्ध और जैन साहित्यों हमें कई नगरों के उत्थान की जानकारी प्रदान करते हैं, इन नगरों में पाटलिपुत्र, वैशाली, अयोध्या, कौशांबी, वाराणसी, उज्जयिनी, चंपा, राजगृह, श्रावस्ती, आदि प्रमुख थे। इन नगरों में से भी वे नगर जो की व्यापारिक मार्गों में अवस्थित थे (काम्बोज, कौशांबी, कोसल, वाराणसी आदि) उनका अपना खास महत्त्व था। ये नगर उत्तरापथ और दक्षिणापथ के व्यापारियों द्वारा लाये गए वस्तुओं का निर्यात करने का प्रमुख स्थल हुआ करते जैसे उत्तरापथ से आकर व्यापारी बनारस में अपने घोड़े बेचा करते थे।

इन व्यापारी समूहों ने अर्थव्यवस्था में कृषि के अतिरिक्त अन्य उपक्रमों से भी धन प्राप्ति के नए द्वार खोल दिए, बौद्ध साहित्यों के अध्ययन से हमें जानकारी मिलती है की इस समय तक कई प्रकार के उद्योग-धंधे अस्तित्व में आ चुके थे उदाहरण के लिए सुनार, कुम्हार, रथकार, बढ़ई, हाथी दांत का काम करने वाले कारीगर, धातुकार, और रेशम बुनकरों की श्रेणी इत्यादि। इन सभी उद्योग-धंधों में कार्यरत श्रमिकों ने स्वयं को

श्रेणियों में संगठित किया हुआ था और प्रत्येक श्रेणी का अपना एक मुखिया होता था जिसे 'जेत्थक' कहते थे। इसके अलावा सेट्ठी या श्रेष्ठि भी श्रेणी के मुखिया को कहा जाता था, ये श्रेष्ठि बहुधा महाजन का कार्य भी किया करते थे तथा राजा द्वारा भी इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। इस प्रकार शहरों में दो वर्ग कारीगर और श्रेष्ठि महत्त्वपूर्ण वर्ग थे। इसी के विपरीत अभी भी महाजनपदों के आधीन स्वतंत्र गाँवों का अस्तित्व बना हुआ था, इन गाँवों का आकार एक या दो परिवारों से लेकर कई परिवारों तक विस्तृत था और अधिकांशतः ये परिवार एक ही गोत्र से जुड़े होते थे। वैदिककालीन गाँवों की अपेक्षा इस काल के गाँव ऐसी मानवीय बस्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे जहाँ के लूग पूर्णतः कृषि कार्य में सलंग्न थे तथा अधिशेष फसलों का उत्पादन किया करते थे। गाँवों में बड़े स्तर पर खेती करने वाले किसान परिवार भी हुआ करते थे जिनके खेतों में दास तथा कर्मकार काम किया करते थे। इस काल में आने तक भूस्वामित्व एवं विभिन्न प्रकार के काश्तकारी अधिकारों का भी उल्लेख मिलने लगता है। इस समय में शूद्र जाती के आम किसानों के लिए कसक या क्षेत्रिका शब्द का प्रयोग किया जाता था। गाँव के नेता को ग्रामीणी कहा जाता तथा हाथी व अश्व प्रशिक्षकों, सिपाही एवं मंच प्रबंधकों को गामीणी कहा जाता था। गाँवों में गहपतियों को वही दर्जा प्राप्त था जो की शहरों में श्रेष्ठियों को, इन गहपतियों के आधीन उर्वरा भूमि का एक बड़ा हिस्सा होता था। ये गहपति अपनी भूमि पर कृषि कार्य अपने दासों (युद्ध के दौरान बंदी बना लिए गए लोगों को दास बना लिया जाता था), कर्मकारों और शूद्रों से करवाया करते थे। समकालीन साहित्य के अनुसार एक ब्राह्मण गहपति के पास इतनी जमीन थी कि उसे खेत जोतने के लिए ५०० हलों की आवश्यकता पड़ती थी। बौद्ध साहित्य में भी ऐसे कई गहपतियों का उल्लेख आता है जो कृषि-भूमि के मामले में धनधान्य थे। इसी में गहपति मेंदक के बारे में विवरण है कि वह सेना को वेतन देता था और बौद्ध संघ की सेवा के लिए उसने 1,250 गायों के झुंड भेंट किया था। छठी शताब्दी ई. पू. में मुद्रा का उपयोग भी प्रारंभ हो चुका था और इसने अवश्य ही व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहित किया होगा। इस समय के चांदी की आहात मुद्राओं के साक्ष्य उत्खनन में लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष से पाए गए हैं। इसके अलावा भी शिल्प तथा अन्य कलाओं में बढ़ती हुई निपुणता व्यापार तथा संपन्न अर्थव्यवस्था का सूचक थी। अब यह स्पष्ट था कि शहर में रह रहे लोग जो कि अनाज उत्पादन नहीं करते थे वे अन्य ग्रामीण क्षेत्रों से अन्न प्राप्त करते रहे होंगे। प्रतीत होता है कि तकनीकी उपलब्धियों के कारण कृषि में सुधार हुआ और अधिशेष मात्रा में उत्पादन होने लगा जिसके फलस्वरूप राज्य को भी एक शक्ति के रूप में उदय होने में मदद मिली होगी।

अब तक आप जनपद और महाजनपद-कालीन विशेषताओं से भली-भांति परिचित हो चुके हैं अब आग आगे के पृष्ठों पर हम एक महत्त्वपूर्ण महाजनपद मगध की विकास यात्रा का अध्ययन करेंगे। आगे चलकर यही मगध क्षेत्र मौर्य-साम्राज्य का केन्द्र बिंदु बनकर उभरा।

10 .7 मगध की भौगोलिक स्थिति

भौगोलिक दृष्टिकोण से मगध साम्राज्य वर्तमान बिहार राज्य के पटना,नालंदा, गया इत्यादि क्षेत्रों में फैला हुआ था, यह क्षेत्र जलोढ़ और उपजाऊ मिट्टी का क्षेत्र तो था ही साथ ही इस क्षेत्र के आस पास घने जंगलों की भी उपस्थिति थी। इस जनपद की राजधानी 'राजगृह' नदी से दूर दक्षिण दिशा में अवस्थित थी जो कि पांच पर्वतमालाओं से घिरी हुई थी तथा इसके चारों और पत्थरों की दीवारें बनी हुई थी। इस स्थान को राजधानी बनाने के पीछे संभवतः सामरिक कारण रहे होंगे, साथ ही इस क्षेत्र में लौह की प्रचुर उपलब्धता तथा तांबे का सुलभता भी इसका एक प्रमुख कारण रही होगी। यही वो प्रमुख कारण रहे होंगे जिनके चलते मगध के शासकों ने गंगा घाटी के उपजाऊ मैदान को छोड़कर अपेक्षाकृत इस वीरान क्षेत्र को अपनी राजधानी के रूप में उपयुक्त पाया होगा। आगे चलकर इस साम्राज्य की नयी राजधानी पाटलिपुत्र शहर को बनाया गया जिसका मूल नाम पाटलिग्राम था। इस नगर का निर्माण गंगा, गंडक, सोन और पुनपुन जैसी नदियों के मुहाने पर किया गया था और यह एक जलदुर्ग की भाति अभेद्य और सुरक्षित था। इस स्थान पर राजधानी निर्माण के चलते अब मगध के शासक व्यापार के लिए नदी मार्गों का प्रयोग भी करने लगे, यह नदी मार्ग भारी सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का अधिक सुगम मार्ग तो थे ही साथ ही इसने मगध के अन्य राज्यों से भी संपर्क को और अधिक मजबूत किया। इसके साथ ही मगध के शासकों ने व्यापार के मार्ग 'उत्तरापथ' पर भी अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। यह व्यापारिक मार्ग हिमालय की तलहटी से गंगा के ऊपरी क्षेत्र को आपस में जोड़ता था। इन सब कारणों से अवश्य ही मगध को निश्चित तौर पर प्राकृतिक रूप से कुछ अनन्य लाभ प्राप्त हुए होंगे।

हाल के शोध इस बात की ओर इंगित करते हैं कि मगध ओर उसके पड़ोसी राज्य अवंति के विकास में इस क्षेत्र से पाए जाने वाले लोहे की सुलभता का योगदान अवश्य ही रहा होगा। लौह की सुलभता ने जहाँ एक ओर हथियार-निर्माण की प्रक्रिया में तेजी लायी वहीं इससे कृषि-औजार बनाने में भी सुविधा हुई। इन सब कार्यों की वजह से कृषि अर्थव्यवस्था का विकास हुआ, और अधिशेष उत्पादन के रूप में राज्य को कर भी प्राप्त होने लगा। निश्चित ही इस वजह से इन राज्यों को अपने क्षेत्रीय विस्तार और विकास में सहायता प्राप्त हुई होगी। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ समय तक अवंती मगध के लिए सबसे बड़ा खतरा था और पूर्वी मध्य प्रदेश में स्थित लोहे की खानें भी उसकी पहुंच से दूर नहीं थीं।

10 .8 मगध साम्राज्य की स्थापना और विस्तार

मगध की गद्दी पर कई राजवंशों ने शासन किया और शनैः-शनैः इस महाजनपद को एक साम्राज्य के आकार में परिवर्तित किया। मगध के राजसिंहासन पर बैठने वाला पहला वंश **'बृहद्रथ वंश'** था और **'बृहद्रथ'** को ही मगध साम्राज्य का **संस्थापक** माना जाता है। इस वंश के शासकों की राजधानी 'गिरिव्रज' थी और इसी के ध्वंशावशेषों पर आगे चलकर मगध की नयी राजधानी 'राजगृह' का निर्माण किया गया था। महाभारत में वर्णित साक्ष्यों के आधार पर इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक **'जरासंध'** था महाभारत-कालीन अनुश्रुतियों के अनुसार, जिस प्रकार सिंह महाहस्तियों को पकड़ कर गिरिराज की कन्दरा में बंद कर देता है ठीक उसी प्रकार जरासंध ने अन्य राजाओं को विजित कर उन्हें गिरिव्रज में बंदी बना लिया था। जरासंध की मृत्यु के पश्चात मगध का गौरव पतन की और अग्रसारित होने लगा था, इस वंश का अंतिम शासक **'रिपुंजय'** हुआ। रिपुंजय के मंत्री पुलिक ने उसके खिलाफ विद्रोह कर रिपुंजय की हत्या कर दी और अपने पुत्र को मगध के तख़्त पर सिहांसनारूढ कर दिया। इस तरीके से मगध के पहले शासक वंश का अंत हुआ।

हर्यक वंश – पुलिक ने अपने दो पुत्रों 'बालक' और 'प्रद्योत' को क्रमशः मगध और अवंति का शासक बना दिया। लेकिन पुलिक के वंशज मगध को अधिक समय तक अपने प्रभावक्षेत्र में रखने में असफल रहे। 'भट्टीय' नामक एक महत्वकांक्षी सामंत ने बालक की हत्या कर दी और उस के स्थान पर अपने १५ वर्षीय पुत्र **'बिम्बिसार'** को मगध का नया शासक घोषित कर दिया। चूंकि बिम्बिसार का जन्म हर्यक कुल में हुआ था इसलिए इस वंश को आगे हर्यक वंश के नाम से इतिहास में जाना गया है। इस वंश के प्रमुख राजाओं और उनकी नीतियों का संक्षिप्त परिचय आप आगे के पृष्ठों पर अध्ययन करेंगे।

हर्यक वंश के शासकों के आधीन ही मगध ने इतिहास में एक विशिष्ट स्थान को प्राप्त किया। इस वंश का प्रथम शासक **'बिम्बिसार'** था जिसे एक अन्य नाम **'श्रेणीक'** से भी जाना जाता है। बिम्बिसार महात्मा बुद्ध के समकालीन था और कहा जाता है कि वह राजगद्दी पर बुद्ध के निर्वाण से ६० वर्ष पूर्व बैठा था। जैसा की हम जानते हैं की बुद्ध को निर्वाण निर्वाण की प्राप्ति ४८३ ई.पू. हुई थी इस हिसाब से बिम्बिसार का राज्याभिषेक काल ५४३ या ५४४ ई.पू. के आस पास ठहराया जा सकता है। बिंबिसार ने ही मगध क्षेत्र में विजय और विस्तार नीति का सूत्रपात किया जो कि आगे चलकर अशोक के कलिंग विजय के साथ पूर्ण हुई। बिम्बिसार ने मगध के विस्तार के लिए युद्ध नीति, वैवाहिक संबंधों तथा वैदेशिक कूटनीति का प्रयोग किया। उसने युद्ध नीति के माध्यम से अपने पड़ोसी राज्य अंग देश को विजित किया और उसका शासन-प्रबंध अपने पुत्र अजातशत्रु को सौंप दिया।

उसने वैवाहिक संबंधों के चलते भी अपनी स्थिती को मजबूत बनाया, इस उद्देश्य के चलते उसने अन्य राजघरानों में अपने वैवाहिक संबंधों को स्थापित किया। उसने कुल तीन विवाह किये जिसमें पहला विवाह

उसने कोशलराज की पुत्री और प्रसेनजीत की बहिन **‘कोशला देवी’** से किया इस विवाह में दहेज-स्वरुप उसे काशी का एक ग्राम प्राप्त हुआ जिससे उसे प्रतिवर्ष १ लाख रूपए की आय प्राप्त होती थी यह बात इस और इंगित करती है की उस समय राजस्व की वसूली नकद या सिक्कों में होने लगी थी। इस विवाह के कारण एक और जहाँ उसकी कोशल राज्य से प्रतिद्वान्दिता समाप्त हो गई वहीं दूसरे राज्यों से आसानी से निपटने के लिए भी उसका मार्ग प्रशस्त हुआ। उसकी दूसरी पत्नी वैशाली के लिच्छवि राजा चेटक की पुत्री **‘चेल्लना’** थी। इस विवाह के पश्चात बिम्बिसार को नेपाल की उत्तरी सीमा तक अपना साम्राज्य फ़ैलाने में सुगमता हुई। आगे चलकर मगध का शासक बने उसके पुत्र अजातशत्रु का जन्म इसी के गर्भ से हुआ था। बिम्बिसार ने तीसरा विवाह पंजाब के शासक मद्र कुल के प्रधान की पुत्री **‘क्षेमा’** से किया। इन विभिन्न राजपरिवारों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने से जहाँ एक और बिम्बिसार को बड़ी राजनैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई वहीं यह इस बात का भी द्योतक है कि अब तक मगध एक ऐश्वर्यशाली साम्राज्य में परिणित हो चुका था।

इस समय मगध के समान ही प्रभुत्व रखने वाला और मगध का शत्रु राज्य अवंति भी काफी शक्तिशाली था जिसकी राजधानी उज्जैन थी। मगध के शासक बिम्बिसार और अवंति के शासक चंडप्रद्योत के बीच युद्ध हुआ और अंततः दोनों इस नतीजे पर पहुंचे की उन्हें मित्रता कर लेनी चाहिए, बाद में जब चंडप्रद्योत पीलिया रोग से ग्रसित हो गया था तब अवंति नरेश के अनुरोध पर बिम्बिसार ने अपने राज-वैद्य जीवक को उसका इलाज करने के लिए वहाँ भेजा था। गांधार के राजा ने भी बिम्बिसार के दरबार में अपना एक दूतमंडल भेजा था। इस प्रकार बिम्बिसार ने मगध को तत्कालीन राजनीति में सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बना दिया था। बताया जाता है कि उसके राज्य में लगभग ८० हजार गाँव थे, हालाँकि यह संख्या अतिशयोक्तिपूर्ण लगती है फिर भी उसके शासनकाल में यह कहा जा सकता है कि मगध सुसंगठित, सुव्यवस्थित तथा समृद्धशाली देश हो गया था।

बौद्ध ग्रंथों के अनुसार बिम्बिसार ने लगभग ५२ वर्षों तक शासन किया था। ४९२ ई.पू. में उसके पुत्र **‘अजातशत्रु’** ने उसकी हत्या कर सिहांसन पर कब्ज़ा कर लिया। अजातशत्रु का शासन काल ४९२-४६० ई. पू. तक रहा। इसे एक अन्य नाम **‘कुणीक’** के रूप में भी जाना जाता है इसी के समय में हर्यक वंश का वैभव अपने चरमोत्कर्ष पर था। उसने अपने शासनकाल में कुल दो लड़ाइयां लड़ी तथा तीसरे युद्ध के लिए भी पूरी तैयारियां करी थी। अजातशत्रु का पहला संघर्ष कोशल के राजा प्रसेनजीत से हुआ इस संघर्ष का मूल विवाद कोशल नरेश द्वारा काशी को वापस हड़प लेना था, कोशल नरेश का यह निर्णय अजातशत्रु को नागवार गुजरा और उसने प्रसेनजीत के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध काफी लंबा चला और अंततः इसमें अजातशत्रु को विजय प्राप्त हुई। इस संधि के साथ ही एक और जहाँ प्रसेनजीत को अपनी कन्या ‘वजिरा’ का हाथ अजातशत्रु को सौंपना पड़ा वहीं अब काशी को सैदेव के लिए मगध का अंग बना लिया गया। इसके बाद

से ही कोशल राज्य में उत्तरोतर हरास के लक्षण दृष्टिगत होने लगे और कालांतर में वह मगध राज्य में ही सम्मिलित कर लिया गया।

कोशल को विजित कर लेने के पश्चात अजातशत्रु ने लिच्छवि राजाओं के खिलाफ मोर्चा खोल लिया। इस दौरान उसने लिच्छवियों से अपनी रिश्तेदारी का लिहाज रखना भी उचित नहीं समझा और वैशाली पर आक्रमण कर दिया। लिच्छवियों पर आक्रमण करने के लिए उसने बहाना दिया की लिच्छवियों की मित्रता कोशल से है। उसने लिच्छवियों में फूट डालने के लिए षड्यंत्र रचा और 'वस्साकार' को वज्जि-संघ में फूट डालने के लिए भेजा। वैशाली को नष्ट करने में उसे पूरे १६ साल का वक्त लगा। आखिरकार उसे इस युद्ध में भी विजय-श्री प्राप्त हुई और लिच्छवि राज्य पर उसका आधिपत्य स्थापित हो गया।

अजातशत्रु के प्रतिद्वंदियों में सबसे मजबूत राज्य अवंति था, यहाँ के शासकों ने कौशाम्बी के वत्सों को हराया था और अब वे मगध के लिए आसन्न खतरा बनते जा रहे थे। इस खतरे को देखते हुए अजातशत्रु ने भी अपनी राजधानी राजगृह की किलेबंदी करवा ली थी जिसके अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। हालाँकि इन दोनों राज्यों के बीच संघर्ष की कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती, और आगे चलकर ५४५ ई.पू. में जाकर अवंति के शासक **'प्रद्योत'** की मृत्यु हो जाती है और इसी के साथ इन दोनों राज्यों के बीच प्रतिद्वंदिता का भी अंत हो गया।

अजातशत्रु की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र **'उदायिन'** (४६०-४४४ ई.पू.) मगध की गद्दी पर विराजमान हुआ। उसके शासनकाल की दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं में पहला अवंति राज्य को विजित करना रहा उसने यहाँ के राजा विशाखयूप को अपने आधीन कर लिया था, हालांकि उसने अवंति के शासन को मगध के शासन से अलग ही रखा। इसके साथ ही अब मगध पूरे उत्तर-भारत का सबसे विशाल तथा शक्तिशाली साम्राज्य बन गया। दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना उदायिन द्वारा गंगा तथा सोन नदी के संगम पर पाटलिपुत्र नगर की स्थापना करना था जिसका प्राचीन नाम कुसुमपुर था।

शिशुनाग वंश- उदायिन के पश्चात मगध की गद्दी पर अब एक नया वंश आरूढ़ हुआ और यह वंश था शिशुनाग वंश। नागवंशी प्रथम शासक **'शिशुनाग'** जो कि मगध के आधीन काशी प्रांत का एक योग्य मंत्री था को जनता ने स्वयं चुनकर शासक नियुक्त किया था। वह एक साहसी तथा महत्त्वाकांक्षी सम्राट था शासन संभालने के बाद उसने अपनी राजधानी को कुछ समय के लिए वैशाली स्थानांतरित कर लिया था संभवतः इसका कारण उसका अपने साम्राज्य के उत्तरी भाग को अधिक सुरक्षित बना लेना था। शासन संभालते ही उसने अवंति राज्य पर आक्रमण कर अवंति की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर अपने साम्राज्य में विलय कर लिया। यह उसकी एक महान उपलब्धि थी और इस के साथ ही अवंति तथा मगध के बीच पिछले १०० सालों

से चली आ रही शत्रुता का भी अंत हुआ। इसके बाद से अवंति मौर्य साम्राज्य के अंत तक मगध का अभिन्न हिस्सा बना रहा।

शिशुनाग ने १८ वर्ष तक मगध पर शासन किया, उसकी मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र **'कालाशोक'** मगध का नया शासक बना जिसे पुराणों में **'काकवर्ण'** के नाम से पुकारा गया है। यह भी एक दिग्विजयी सम्राट था कालाशोक ने अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर में कश्मीर तक और दक्षिण-पूर्व में कलिंग तक कर लिया था, हालाँकि उसने कश्मीर तथा पंजाब को कभी भी अपने राज्य का स्थाई अंग नहीं बनाया था। इसी के शासनकाल में बुद्ध के निर्वाण के लगभग १०० वर्ष उपरान्त वैशाली में दूसरी बौद्ध-संगति का आयोजन किया गया था। कालाशोक के बाद भी इस वंश के कई शासकों ने मगध पर शासन किया और इसके उपरान्त मगध में नंदों का शासन शुरू हुआ जो मगध के सबसे शक्तिशाली शासक सिद्ध हुए।

नन्द वंश- इस वंश का संस्थापक **'महापद्म नंद'** को माना जाता है। पुराणों के अनुसार वह शूद्र जाति से सम्बंधित था और वहीं जैन अनुश्रुति के अनुसार वह एक नाई का पुत्र था। इसका एक अन्य नाम **'उग्रसेन'** भी था। पुराणों में इसे सर्वक्षत्रान्तक कहकर संबोधित किया गया है जिसका अर्थ है सभी क्षत्रियों का संहार करने वाला। यहाँ तक की पौराणिक कथाओं में उसे एकराट कहा गया है। इसका शासन इतना शक्तिशाली था की सिकंदर जो की भारत के पंजाब क्षेत्र तक को विजित कर चुका था नंदों की सेना से टकराने का साहस न जुटा पाया। नन्द शासकों ने कलिंग क्षेत्र को भी जीता और वहाँ से विजय स्मारक के रूप में 'जिन' की मूर्तियों को मगध उठा लाए थे। महापद्म नंद के बारे में कहा जाता है की वह अत्यंत शक्तिशाली, धन-धान्य से परिपूर्ण तथा प्रतापी सम्राट था। इसकी सेना में २ लाख पदाति, २० हजार घुड़सवार और तीन हजार से लेकर ६,००० तक हाथी शामिल थे। इस वंश का अंतिम शासक **'घनानन्द'** था जिसे चंद्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की सहायता से पदच्युत किया और अब नन्द वंश के स्थान पर मगध के उत्तराधिकारी मौर्य बन बैठे। मौर्यों के ही शासनकाल में मगध अपने वैभव की पराकाष्ठाओं तक पहुँच सका| मौर्य वंश से सम्बंधित विशद जानकारी का अध्ययन आप अगले अध्याय में करेंगे।

10 .9 मगध की सफलता के कारण

मौर्यों से पहले मगध में राज कर रहे शासकों की महत्त्वाकांक्षा, नीतियों तथा उनकी योग्यताओं ने मगध को एक साम्राज्य के रूप में विकसित करने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया। इन शासकों ने अच्छे-बुरे हर उपायों का प्रयोग कर राज्य का विस्तार किया और राज्य में एक समुचित प्रशसनिक व्यवस्था का निर्माण किया। परन्तु मगध की सफलता का यह एकमात्र कारण नहीं था यहाँ कुछ दूसरे महत्त्वपूर्ण कारक भी उपस्थित थे जिन्होंने मगध के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। जैसे मगध की राजधानी क्षेत्र के आस-पास ही लोहे

के समृद्ध भंडारों का पाया जाना। इससे मगध के शासकों को अपने लिए प्रभावशाली हथियारों के निर्माण में सहायता उपलब्ध हुई। मगध के विपरीत उसके अन्य पड़ोसी राज्य इस प्रकार के उन्नत हथियारों का प्रयोग करने में अभी भी असक्षम थे। हालांकि लोहे की कुछ समृद्ध खानें पूर्वी मध्य-प्रदेश में भी अवस्थित थी, जिन पर अवंति राज्य का अधिकार था। निश्चित तौर पर इस राज्य के कर्मकार भी लोहे को गलाकर उस से संसाधित हथियारों के निर्माण में कुशल थे, संभवतः यही कारण रहा होगा कि इन दो प्रमुख राज्यों के मध्य कड़ी प्रतिद्वंदिता थी और मगध को उज्जैन को जीतने में लगभग १०० साल का समय लग गया।

इन सब के अलावा भी मगध को कुछ और अधिक अनुकूल प्राकृतिक लाभ प्राप्त थे। जैसे मगध की दोनों राजधानियाँ राजगीर तथा पाटलिपुत्र सामरिक दृष्टिकोण से अत्यधिक सुरक्षित स्थान पर अवस्थित होना। जहाँ राजगीर पांच पहाड़ियों से घिरा एक अभेद्य दुर्ग था वहीं पाटलिपुत्र गंगा, सोन, गंडक, घाघरा और पुनपुन नदियों के बीच में निर्मित एक जलदुर्ग की भाति था जिसके चारों तरफ संचार के साधनों को स्थापित किया गया था। तत्कालीन समय में यातायात के साधन सीमित होने के कारण नदी मार्ग ही व्यापार का महत्त्वपूर्ण मार्ग थे जिन पर अब मगध का वर्चस्व स्थापित हो चुका था साथ ही ये जलमार्ग सेना के आवागमन के लिए भी उपर्युक्त थे।

चौथा महत्तवपूर्ण कारक मगध क्षेत्र का मध्य गंगा के मैदान में उर्वर क्षेत्र में उपस्थित होना था। अब तक इस क्षेत्र के जंगलों को काटकर भूमि को कृषि योग्य बना दिया गया था। इस क्षेत्र का भारी वर्षा वाले क्षेत्र में पड़ने के कारण यहाँ के इलाके बिना सिंचाई के भी अत्यधिक उत्पादक थे। बौद्ध ग्रंथों के विहंगावलोकन से हमें इस बात की जानकारी मिलती है की इस प्रदेश में कई किस्म के चावल की फसल उपजायी जाती थी और संभव है की इस समय तक धान रोपाई की जानकारी भी कृषकों के पास थी। इन कारणों की वजह से राज्य के पास अधिशेष फसलों का उत्पादन संभव हुआ और इसी अधिशेष उत्पादन से राज्य को कर की प्राप्ति होती थी, जिसने मगध में एक सबल नौकरशाही की नींव रखी।

इसके अलावा अन्य कारणों में मगध के शासकों द्वरा एक नगरीय व्यवस्था को और अधिक प्रोत्साहन देने के लिए अर्थव्यवस्था में सिक्कों का प्रचालन प्रारंभ किया गया था। इससे वाणिज्य-व्यापार में तो वृद्धि हुई ही साथ ही मगध के शासकों को बिक्री की वस्तुओं पर चुंगी लेने का मौका भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार अब मगध के शासक एक विस्तृत नौकरशाही और अपनी सेना के खर्च के लिए धन जुटा सकते थे।

सैन्य संगठन के मामलों में भी मगध को खास सुविधाएँ उपलब्ध थी। जहाँ एक और वे घोड़े और रथ के प्रयोग से तो परिचित थे ही वहीं वे युद्ध में अपने शत्रुओं के खिलाफ हाथियों का बड़ी संख्या में प्रयोग करते थे। ये हाथी देश के पूर्वी हिस्से से मगध शासकों तक पहुँचते थे। यूनानी स्त्रोत इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि नंदों

की सेना में लगभग ६,००० हाथी शामिल थे जो किसी भी शत्रु राज्य के दुर्ग भेदने तथा उनकी सेना का मनोबल तोड़ने में सक्षम थे। इसके अलावा इन हाथियों का प्रयोग यातायात के रूप में ,भारी समान और रसद आपूर्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढोने में भी किया जा सकता था।

अंततः मगध की सफलता के कारणों में हम मगध के सामाजिक ढांचे का उल्लेख भी कर सकते हैं। यहाँ का तत्कालीन समाज रूढ़िविरोधी था। ब्राह्मणों का एक वर्ग इस क्षेत्र में आवासित किरात और मगध के लोगों को निम्न कोटि का समझा करते थे। चूंकि इस क्षेत्र का वैदिकीकरण अन्य राज्यों की अपेक्षा बाद में हुआ था इसलिए यहाँ के लोगों में विस्तार तथा विजय के लिए उत्साह भी अधिक था। बाद में वैदिक लोगों के इस क्षेत्र में बस जाने के कारण यहाँ जातियों का एक सुखद मिश्रण देखने को भी मिलता है। यही सब प्रमुख कारण थे जिन्होंने मगध को अन्य दूसरे राज्यों को हराने में और भारत में एक अखिल भारतीय साम्राज्य के निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

10 .10 सारांश

इस अध्याय में हमने छठी शताब्दी ईसा पूर्व के भारत में विद्यमान राजनैतिक परिस्थितियों को समझाने की कोशिश की है। इस अध्याय में हमने जाना की किस प्रकार तत्कालीन भारत वर्ष में १६ महाजनपदों का विकास हुआ। किन विशिष्ट परिस्थितियों में इन महाजनपदों ने अपना आर्थिक विकास किया। इसके अलावा हमने इस अध्याय में संक्षिप्त रूप में उन १६ महाजनपदों की जानकारी भी प्राप्त करी। इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात अब आप महाजनपदों की शासन प्रणाली और उनकी आर्थिक व्यवस्था के बारे में भी समझ पाए होंगे। इसके अतिरिक्त इस अध्याय के माध्यम से हमने आपको ऐतिहासिक मगध साम्राज्य से भी परिचित करवाने की कोशिश की है। इस अध्याय में आपको मगध साम्राज्य के उद्भव, उसके क्षेत्रीय विस्तार आदि के बारे में विस्तार से बताया गया है। हम आशा करते हैं कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः- मगध की भौगोलिक स्थिति, उसकी राजधानियों की सामरिक स्थिती, उसमें शासन करने वाले शासकों की नीतियों आदि के महत्व को बेहतर रूप से समझ गए होंगे इसके साथ ही आप इस अध्याय को पढ़ने के बाद मगध और इसके उत्थान में सहायक महत्वपूर्ण कारकों से भी परिचित हो चुके होंगे।

10 .11 तकनीकी शब्दावली

अधिशेष: इसका अर्थ है स्वयं की आवश्यकता की पूर्ति होने के बाद शेष बचा हुआ अतिरिक्त उतपादन।

उत्तरापथ: उत्तरी स्थल का व्यापारी मार्ग, जो हिमालय की पहाड़ियों को जोड़ता था।

खानाबदोश: उन लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द जो एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते थे।

शहरी बस्तियां: ऐसा स्थान जहाँ उपस्थित जनसंख्या खाद्य-उत्पादन में सलंग्न न होकर अन्य आर्थिक गतिविधियों में सलिंप्त हो।

10 .12 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न: सोलह महाजनपदों की सूची निम्नलिखित में से किस ग्रन्थ में मिलती है?

१. भागवती सूत्र २. अंगुत्तरनिकाय ३. दीपवंश ४. महावंश

प्रश्न: शासकों को उनसे संबंधित महाजनपदों के क्रम में रखिए:

१ अजातशत्रु - कोशल
२ प्रद्योत - वत्स
३ उदयन - अवंति
४ प्रसेनजित - मगध

प्रश्न: महाजनपदों को उनसे संबंधित राजधानी के क्रम में रखिए:

१. काशी - चम्पा
२. अंग - कोशाम्बी
३. वत्स - वैशाली
४. वज्जि - वाराणसी

प्रश्न: निम्नलिखित में से कौन सा महाजनपद दक्षिण भारत में अवस्थित था?

१. अश्मक २. अवंति ३. गंधार ४. मगध

10 .13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- प्राचीन भारत का इतिहास, द्विजेन्द्रनारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली, संस्करण-2002
- भारत का इतिहास, रोमिला थापर, संस्करण-2009
- प्राचीन भारत का इतिहास, श्रीनेत्र पांडे, संस्करण-2009
- प्रारंभिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, संस्करण-2010
- प्राचीन भारत का इतिहास, आर. के. परुथी और डॉ० दीपा भंडारी, संस्करण-2009
- https://mdu.ac.in/UpFiles/UpPdfFiles/2020/Jan/Ancient%20Society-final.pdf
- https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/64970/2/Unit3.pdf
- https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/19622/1/Unit-14.pdf

- https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/19635/1/Unit-18.pdf

10 .14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न: मगध उत्थान के प्रथम चरण में मगध की अवस्थिति एक महत्त्वपूर्ण कारक थी जिसमें इसके शासकों का योगदान किंचित मात्र ही था। इस कथन से आप किस हद तक सहमत हैं?

प्रश्न: महाजनपदों की आर्थिक स्थिती तथा प्रशासनिक प्रणाली पर टिप्पणी कीजिये?

इकाई ग्यारह

महावीर स्वामी : दार्शनिक विचारधारा, त्रिरत्न, जैन साहित्य एवं स्थापत्य कला

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 महावीर स्वामी

11.3 दार्शनिक विचारधारा

11.4 त्रिरत्न

11.5 जैन साहित्य

11.6 स्थापत्य कला

11.7 साराँश

11.8 शब्दावली

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

जैन धर्म भारत का एक प्राचीन धर्म है। जैनियों के अनुसार उनके धर्म का आरम्भ पहले जैन तीर्थकर ऋषभ के साथ हुआ था जिनका उल्लेख विष्णु और भागवत पुराणों में हुआ है। ऐसा माना जाता है कि जैन शब्द की उत्पत्ति 'जिन' से हुई है। 'जिन' का अर्थ है विजेता। 'जिन' ऐसा विजेता होता है, जो सभी प्रकार की मोहमाया के बन्धनों से मुक्त होता है। जैन दर्शन के मुताबिक प्रत्येक प्राणी में एक आत्मा होती है और मनुष्य के जीवन का मुख्य उद्देश्य मोहमाया से मुक्त होकर आत्मा को शुद्ध करना है। शुद्ध होने के बाद आत्मा सांसारिकता से मुक्त हो जाती है। जैन धर्म मानता है कि प्रत्येक आत्मा शुद्ध हो सकती है, लेकिन उसके लिए उसे तीर्थकर के बताए हुए रास्ते का अनुसरण करना होगा।

प्राचीन भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई0पू0 नए धार्मिक विचारों के उद्भव और विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काल था। इसी समय गंगा की उपजाऊ घाटी में नगरों का दूसरी बार उदय हुआ। कृषि के तरीकों

में सुधार विशेष रूप से धान को रोपने आदि के तरीकों के कारण अनाज की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई इसके अतिरिक्त उपज ने नगरों के विस्तार में प्रत्यक्ष मदद की। इसी दौर में व्यापार और वाणिज्य का विकास हुआ और समाज में नए वर्गों के उदय के कारण सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव आए। इस दौर में व्यापार के विकास का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष धातु की बनी मुद्राओं का उपयोग था और इस प्रकार मुद्रा अर्थव्यवस्था का आरम्भ हुआ। मुद्रा अर्थव्यवस्था ने वस्तुओं के विनिमय में मदद की और इससे व्यापार का विस्तार हुआ। अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों से सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को भी दूर तक प्रभावित किया। नगरीकरण, व्यापार और वाणिज्य ने नये सामाजिक समूहों की वृद्धि की और सामाजिक श्रेणीबद्धता की दृष्टि से समाज और अधिक जटिल बन गया। नगरीकरण और व्यापार की वृद्धि के परिणामस्वरूप क्षत्रियों और वैश्यों के बढ़ते महत्व ने ब्राह्मणों के सामाजिक और अनुष्ठान सम्बन्धी वर्चस्व के लिए चुनौती खड़ी कर दी। विद्यमान ब्राह्मणवादी विचारधारा और अनुष्ठान के नये उभरते सामाजिक समूहों की अपेक्षाओं के पूर्णतः विपरीत थे। इस दौर की बदलती सामाजिक-आर्थिक संस्कृति ने काफी हद तक नये धार्मिक विचारों के उदय के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

क्षत्रिय वर्ग ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता के साथ-साथ उनके धर्म और अनुष्ठानों को भी चुनौती दी। नई शहरी संस्कृति की जरूरतों के फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म की परिधि के बाहर नए धार्मिक विचारों की खोज शुरू हो गई। छठी शताब्दी ई0पू0 में मक्खली गोशाल और पूरन कश्यप जैसे कई श्रमण शिक्षक और उपदेशक सामने आए जिन्होंने भारतीय धार्मिक परम्परा को नए रूप में ढाला। वैदिक ग्रन्थों में सभी गैर धार्मिक ब्राह्मण पद्धतियों को श्रमण कहा गया है जिसमें आजीविक, जैन, बौद्ध आदि शामिल हैं। इन सभी श्रमण उपदेशकों की धार्मिक विचारधारा में कुछ सामान्य विशेषताएं मिलती हैं जो इस प्रकार हैं:

- उपदेश और रीति-रिवाज पुरोहित प्रधान वैदिक धर्म के विरूद्ध थे,
- सामाजिक ऊँच-नीच और धार्मिक पद का ख्याल न करते हुए समुदाय के सब लोग समान सदस्य के रूप में स्वीकार्य थे,
- कतिपय नैतिक सिद्धान्तों के पालन पर बल,
- आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म में आस्था,
- प्रेरक और निर्धारक शक्ति के रूप में कर्म के दर्शन में विश्वास,
- तपस्या और वैराग्य पर बल।

11.1. उद्‌देश्य

पिछले खण्डों में आपको हड़प्पा संस्कृति तथा आर्यों के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गयी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी।इस इकाई का उद्देश्य आपको महावीर स्वामी तथा उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म और समसामयिक भारत से संबंधित अन्य तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हुये सामाजिक परिवर्तन
2. महावीर के उपदेश
3. जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में भाषा (अर्द्धमागधी) के योगदान।

11.2 महावीर स्वामी

जैन धर्म के 24वें और अन्तिम तीर्थकर वर्द्धमान महावीर (599 ई0पू0-527 ई0पू0) का जन्म वैशाली के निकट कुंडग्राम में हुआ था, जो पटना से 27 मील उत्तर में स्थित है। जैन परम्परा के अनुसार 24 तीर्थकर हुए हैं। ऋषभ पहले तीर्थकर थे और उनके बाद समय-समय पर 23 और तीर्थकर हुए। 23वेंतीर्थकर पार्श्वनाथ थे जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वे महावीर के पहले 250 वर्ष तक विद्यमान थे। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था, जो उस क्षेत्र के राजा थे और मां त्रिशला का सम्बन्ध लिच्छवी राज परिवार से था। 30 वर्ष की उम्र में महावीर सबकुछ छोड़कर आध्यात्मिक खोज में निकल पड़े और 12 वर्षों तक कठिन तपस्या और उपासना करते रहे, तब जाकर उन्हें ‘कैवल्य’, अर्थात् ज्ञानोदय की प्राप्ति हुई। उन्होंने 30 वर्षों तक जैन धर्म का प्रचार किया और भिक्षुओं से लेकर गृहस्थ तक बड़ी संख्या में लोग उनके शिष्य बने। 527 ई0पू0 में 72 वर्ष की उम्र में बिहार में राजगृह के निकट पावापुरी में उनका देहांत हुआ और उनका स्थान उनके शिष्य इन्द्रभूति ने लिया। जैन भिक्षुओं के कठिन और तपस्वी जीवन से शासक वर्ग और व्यापारी समुदाय काफी प्रभावित हुआ। कई राज्य वंशों के शासकों ने भी इस धर्म को अपना संरक्षण एवं सहयोग प्रदान किया जिनमें चन्द्रगुप्त मौर्य, कलिंग के राजा खारवेल और दक्षिण के कई राजवंश जिनमें गंग, कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूट जैन धर्म के संरक्षक बने। पूर्वी और उत्तरी भारत से जैन धर्म का प्रभाव पश्चिम और भारत के दक्षिणी हिस्सों में फैला। कहा जाता है कि उत्तरी भारत में आए अकाल के कारण भिक्षुओं का एक दल भद्रबाहु के नेतृत्व में दक्षिण भारत गया और फिर बाद में यह जैन संगठन के बंटने का एक कारण भी बना।

11.3 दार्शनिक विचारधारा

जैन धर्म के अनुसार यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड दो मूलभूत और स्वतन्त्र वर्गों यानी जीव (आत्मा) और अजीव (अनात्मा) में बंटा हुआ है। जैन धर्म जीव और अजीव की प्रकृति और अंतःक्रिया पर आधारित है और यह माना जाता है कि इन दोनों की अंतःक्रिया के कारण ही इस ब्रह्मांड में इतनी अनेकरूपता और बहुरूपता दिखाई पड़ती है। जैन धर्म के अनुसार आत्मा में बदलते रहने की क्षमता है परन्तु यह परिस्थितियों और कर्म की प्रकृति पर निर्भर है। जैन मत के अनुसार प्रत्येक जीवित प्राणी में आत्मा का निवास होता है। जीवन का मुख्य उद्देश्य अपनी इच्छाओं का दमन कर आत्मा को शुद्ध करना है और जब आत्मा अपने अजीव बंधन से मुक्त हो जाती है तो फिर आत्मा संसार के इस चक्र से मोक्ष पा जाती है। जीवन का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है ताकि जीवन और मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिल सके। जैन धर्म के अनुयायी ब्रह्मांड और जीवन के रहस्यों की व्याख्या को ईश्वर के अस्तित्व से नहीं जोड़ते। उनके अनुसार यह ब्रह्मांड छह वस्तुओं या तत्वों से बना है। ये हैं: आत्मा, पदार्थ के कण, देश, काल, गति और विराम। ये सब चीजें हमेशा मौजूद होती हैं और जो चीजें हमेशा मौजूद रहती हैं उनका सृजन नहीं किया जा सकता। इसलिए जैन मत के अनुसार न इस विश्व का कभी सृजन हुआ है और न इसका कोई सर्जक है। जैन धर्म तर्क पद्धति और कार्य-कारण सम्बन्ध का सहारा लेता है और जीव तथा अजीव से जुड़े यथार्थ को व्याख्यायित करता है।

जैन धर्म इस अर्थ में ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह ईश्वर को इस दुनिया का सर्जक और शासक नहीं मानता। जैन दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में ईश्वर बनने की सम्भावना निहित है। वह वस्तुतः आत्मा की ऐसी दशा है जो भौतिक बन्धनों से मुक्त होती है। जैन मत के अनुसार, पूर्ण आत्मा या मुक्त आत्मा (तीर्थकर) ही परमात्मा है। मुक्त आत्मा को ईश्वर माना जाता है और जैनी उसकी पूजा करते हैं। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक आत्मा कर्म के विधान के अनुसार नीचे से ऊपर की ओर विकसित है। अतीत के जीवन में कर्म पूरा नहीं हो पाता है तो आत्मा चोला बदलकर नए शरीर में प्रविष्ट होती है। उपासना, तपस्या और अपनी आकांक्षाओं पर विजय प्राप्त कर आत्मा मोक्ष की प्राप्ति करती है। प्रत्येक आत्मा ज्ञान का शुद्ध आगार है और इसमें अनन्त सम्भावनाएं निहित हैं। जैन धर्म भी अन्य भारतीय धर्मों के समान मोक्ष की अवधारणा को स्वीकार करता है परन्तु इसमें मोक्ष प्राप्ति के लिए स्वयं प्रयत्न करने पर बल दिया गया है। यह ईश्वर की कृपा नहीं बल्कि अपने प्रयत्न पर निर्भर करता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए सही आस्था, सही ज्ञान और सही आचरण का होना जरूरी है।

जैन दर्शन में कर्म की स्थिति का विशेष महत्व है। जैन धर्म में कर्म की नई व्याख्या की गई है। 'कर्म' पद का मतलब है कार्य और भारतीय दर्शन में कर्म की अवधारणा का विशिष्ट स्थान है। जैन धर्म में कर्म के सिद्धान्त को निम्नलिखित तरीके से व्याख्यायित किया गया है।

यह आत्मा हमेशा परिष्कृत तत्व यानी कर्म से आच्छादित होती है। जब भी आत्मा असंतुलन की स्थिति में होती है तो कर्म आत्मा में प्रवेश कर जाता है। जब भी मनुष्य के शरीर, हृदय या वाणी में अनैतिकता, मोह यानी इच्छा, घमंड, लालच, छल-कपट आदि का समावेश होता है तो कर्म आत्मा में प्रवेश कर जाता है।

कर्म ही हमारे वर्तमान और भविष्य के सौभाग्य और दुर्भाग्य को तय करता है। अपने कर्मों के अनुसार जीव एक के बाद एक विभिन्न शरीरों में कैद होते जाते हैं। जैन साहित्य में कर्म की कई कोटियां और उपकोटियां बताई गयी हैं। जैन धर्म में कर्म के सिद्धान्त में विश्वास के कारण ही नैतिक संहिता पर विशेष बल दिया गया है। जहाँ तक इसके व्यवहार का सम्बन्ध है यह नैतिक संहिता भिक्षुओं की अपेक्षा गृहस्थों के लिए कम कड़ी है। एक गृहस्थ के लिए पाँच नियम लागू किए गए हैं:

- अहिंसा, किसी भी जीव या प्राणी के प्रति अहिंसा,
- सत्य, सच बोलना,
- अस्तेय, चोरी न करना,
- ब्रह्मचर्य,
- अपरिग्रह, भौतिक इच्छाओं पर नियन्त्रण।

इन्हें अणुव्रत के नाम से जाना जाता है और जब भिक्षु इन नियमों और प्रतिज्ञाओं का पालन पूरी कड़ाई से करते हैं, तो उन्हें महाव्रत कहा जाता है। इसके अलावा सात प्रतिज्ञाएं और हैं जो आत्म संयम, आत्म निषेध और सन्यास जैसे गुणों के विकास में मदद करती हैं। भिक्षुओं को अपने शरीर, वाणी और मस्तिष्क की गतिविधियों के प्रति विशेष सावधानी रखने का निर्देश दिया जाता है क्योंकि इन पर कड़ा नियंत्रण स्थापित करके ही कर्म को नष्ट किया जा सकता है जिसमें आत्मा लिप्त होती है। आत्मा और कर्म इच्छा के कारण एक दूसरे में लिप्त होते हैं इसलिए 'क्षमा, नम्रता, स्पष्टवादिता, संयम, सच्चाई, तपस्या, शुद्धता, पवित्रता और आत्म त्याग' जैसे सद्गुणों के विकास पर बल दिया जाता है। जैन धर्म में भिक्षुओं के लिए 28 आधारभूत गुण बताए गए हैं और इन सद्गुणों के विकास द्वारा ही आत्मा में कर्म के प्रवेश को रोका जा सकता है। केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए 14 आध्यात्मिक चरणों से गुजरना पड़ता है। जैन धर्म में ज्ञान प्राप्ति से ही मोक्ष का द्वार खुलता है।

स्यादवाद का सिद्धांत जैन धर्म का एक प्रमुख सिद्धान्त है। ज्ञान का लक्ष्य बहुत ही जटिल होता है। जैन धर्म के अनुसार यथार्थ कई विरोधाभासी परिस्थितियों से युक्त होता है। इसमें अस्मिता और भिन्नता, स्थायित्व

और रूपांतरण के कई आयाम होते हैं। यथार्थ अनेकात्मक होता है और इसके कई रूप होते हैं। जैन दर्शन में किसी भी प्रकार के अन्तिम अनुमान को नकारा गया है और यथार्थ के बारे में साथ प्रकार के अनुमानों की चर्चा की गई है। जैन धर्म के अनुसार अन्तिम निष्कर्ष हो ही नहीं सकता इसलिए इसमें तुलनात्मक निष्कर्ष की ही बात की गई है। प्रत्येक ढंग की व्याख्या में शायद या 'स्याद' का समावेश होता है। इस विविधता के बीच कुछ भी निश्चिता या अविवादित नहीं है। किसी भी चीज की व्याख्या करने के साथ ढंग हो सकते हैं:

- यह है,
- यह नहीं है,
- यह है, और नहीं है,
- यह अवर्णनीय है,
- यह है और अवर्णनीय है,
- यह नहीं है और अवर्णनीय है,
- यह है, यह नहीं है और अवर्णनीय है।

इसे निम्नलिखित ढंग से समझा जा सकता है:

एक पुरूष पिता है, और पिता नहीं है और दोनों है - यदि कोई इन वक्तव्यों के अवलोकन बिन्दु को समझ जाए तो इसका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगा। किसी खास बच्चे का तो वह पिता है लेकिन किसी दूसरे बच्चे का वह पिता नहीं है; यदि दोनों बच्चों के सन्दर्भ में बात की जाए तो वह पिता है भी और नहीं भी है। यदि एक ही साथ शब्दों में दोनों विचार प्रस्तुत नहीं किए जा सकते तो वे अवर्णनीय हैं।

स्यादवाद के सिद्धान्त में सकारात्मकता और नकारात्मकता के बीच के परस्पर सम्बन्ध पर बल दिया जाता है। जैन धर्म ज्ञान की वस्तु के स्वरूप के सन्दर्भ में न्याय के सापेक्षिक या सशर्त स्वरूप पर बल देता है। इस दृष्टिकोण के कारण जैन दर्शन यथार्थ को विभिन्न कोणों से देखने की मुक्त दृष्टि प्रदान करता है।

11.4 त्रिरत्न

जैन धर्म में सम्यक् (सही) आस्था, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण से क्या तात्पर्य है। जैन धर्म में इस बात पर बल दिया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति की वास्तविकता को, अपने आपको, धार्मिक लक्ष्य और मार्ग को जानने और पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यक्ति को तीर्थकर के उपदेशों और जैन धर्म के ग्रन्थों पर पूर्ण आस्था होनी चाहिए। सम्यक् ज्ञान का मतलब है यथार्थ और उपयुक्त तत्वों का समुचित और प्रासंगिक ज्ञान। व्यक्ति को छह सार्वभौमिक तत्वों का ज्ञान होना चाहिए - आत्मा, पदार्थ, गति, विराम, देश और काल; और सात तत्व या सिद्धान्त है:

- जीव (आत्मा),
- अजीव (अनात्मा),
- आस्रव (आत्मा में कार्मिक पदार्थ की बहुलता),
- बंध (कार्मिक पदार्थों द्वारा आत्मा का बंधन),
- सम्वर (आस्रव का रोकना),
- निर्जर (कार्मिक पदार्थों से धीरे-धीरे मुक्ति),
- मोक्ष (निर्वाण की प्राप्ति),

सम्यक् ज्ञान में संदेह, मोह और अनिश्चितता के लिए कोई स्थान नहीं है। जिस आत्मा को सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आस्था प्राप्त होती है, वह सम्यक् आचरण करने लगता है। व्यक्ति को पसंद और नापसंद की सीमा से ऊपर उठकर सभी आकांक्षाओं और इच्छा से मुक्त होकर पाँच शपथ लेनी चाहिए; अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अनासक्ति और ब्रह्मचर्य। सम्यक् आस्था, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् आचरण, ये तीनों सफल जीवन और मोक्ष के पक्ष पर अग्रसर होने के लिए अनिवार्य हैं।

महावीर की मृत्यु के बाद जैन धर्म के अनुयायी मुख्य रूप से दो प्रमुख पंथों यानी श्वेताम्बर और दिगम्बर में बंट गए। दोनों ही पंथों की उत्पत्ति के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। श्वेताम्बरों की उत्पत्ति के बारे में दिगम्बरों का यह मानना है कि उत्तर भारत में आए अकाल के कारण जैन भिक्षुओं का एक दल दक्षिण भारत गया। दक्षिण भारत में जो जैन बच गए उन्होंने अपने आचरण के नियमों में कुछ परिवर्तन किया और श्वेत वस्त्र पहनने लगे। परन्तु श्वेताम्बरों का अपनी उत्पत्ति के बारे में कहना है कि 'शिवभूति नामक एक श्वेताम्बर ने भिक्षु धर्म ग्रहण किया क्योंकि उसकी सास ने एक रात उसे कोठरी में बन्द कर दिया था। इसके बाद उन्होंने महावीर क पथ पर चलने की प्रतिज्ञा ली और मठ के कपड़े त्याग दिये।' हालांकि अन्य प्रमाणों से यह पता चलता है कि कपड़े पहनने और न पहनने को लेकर जैन धर्म कके अनुयायी दो पंथों यानी श्वेताम्बर और दिगम्बर में एक लम्बे समय में विभक्त हुए। महावीर और उनके अनुयायी नग्न भिक्षु थे और श्वेताम्बर रूप में वस्त्र धारण कई शताब्दियों बाद हआ। प्रथम शताब्दी ई0 में यह मतभेद सामने आने लगा था और पांचवीं शताब्दी ई0 के उत्तरार्द्ध में वल्लभी में हुए परिषद के समय यह भेद स्पष्ट हो चुका था। इन दो पंथों के बीच मुख्य रूप से विवाद धर्म सिद्धांत, मिथकीय विवरणों और सन्यासी जीवन बिताने को लेकर था। दिगम्बर परम्परा के अनुसार एक भिक्षु को गर्व और शर्म जैसे सामाजिक मानदण्डों की चिंता नहीं करनी चाहिए और अपनी सभी वस्तुएं त्याग देनी चाहिए। एक दिगम्बर भिक्षु के पास मोरपंख से बना झाड़न और धोने के लिए और पानी रखने के लिए एक कमंडल होना चाहिए। दिगम्बर सन्यासिनी उजली साड़ी पहनती हैं। दिगम्बर परम्परा में महिलाएं मोक्ष नहीं प्राप्त

कर सकती हैं। इसके लिए उन्हें पहले पुरूष के रूप में जन्म लेना होगा। श्वेताम्बर भिक्षु और सन्यासिनी सफेद कपड़े तीन टुकड़ों में पहनती हैं और उनके पास भिक्षा मांगने का एक पात्र होता है और कीड़े मकोड़ों से बचने के लिए एक छोटा सा ऊन से बना झाड़न होता है। इसे बाद कई उपपंथ भी सामने आए जैसे मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापंथी। ये सब श्वेताम्बर समूह के अन्तर्गत ही आते हैं। असल में, जैन धर्म के अनुयायियों ने तीर्थकरों के उपदेशों को जिस प्रकार व्याख्यायित किया, उससे अलग-अलग लोग सहमत और असहमत होते हुए विभिन्न पंथों और उपपंथों से जुड़ते चले गए। जैन धर्म ग्रन्थों की वैधता को स्वीकार करने के सन्दर्भ में भी उनमें अन्तर है।

11.5 जैन साहित्य

जैन धर्म ग्रन्थ किसी एक खास अवधि में नहीं लिखे गए। इनमें समय-समय पर कई संशोधन हुए। गांधार कहे जाने वाले महावीर के उपदेश जो उन्होंने अपने प्रमुख शिष्यों को प्रदान किए थे - को पहले चौदह पूर्वों में संकलित किया गया। ऐसा कहा जाता है कि चौथी शताब्दी ई0पू0 में स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में एक महापरिषद बुलाई और जैन सिद्धान्तों को बारह अंगों में पुनर्सरचनाकृत किया। बाद में वल्लभी में पांचवीं शताब्दी ई0 में हुई परिषद में मौजूदा ग्रंथों को संरचनाकृत किया गया और उन्हें लिखा गया। ये ग्रन्थ अर्धमागधी और शौरसेनी में लिखे गए। श्वेताम्बरों ने इन ग्रन्थों को स्वीकार किया और उन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया:

12 अंग
12 उपांग
10 प्रकीर्ण
6 छेदसूत्र
2 सूत्र
4 मूलसूत्र

इन सभी धार्मिक ग्रन्थों में आचार संहिता, विभिन्न अनुश्रुतियों, जैन सिद्धांतों और अधिभौतिक तत्वों की चर्चा की गई है।

दिगम्बर का मानना है कि अधिकांश मौलिक ‘पूर्व’ खो चुके हैं। इस प्रकार श्वेताम्बर द्वारा स्वीकृत मौजूदा जैन ग्रन्थों को दिगम्बर स्वीकार नहीं करते। महावीर के मौलिक उपदेशों पर आधारित ग्रन्थों का लेखन महान आचार्यों ने किया। दिगम्बर उन्हीं के आधार पर अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। कुछ दिगम्बर ग्रन्थों को शटखंड-आगम, कषाय-पाहुद, प्रथम-अनुयोग, चरण-अनुयोग, करण-अनुयोग, द्रव्य-अनुयोग के नाम से जाना जाता है। ये सभी साहित्य मिलकर जैन धर्म को एक बृहद धार्मिक व्यवस्था बनाते हैं।

11.6 स्थापत्य कला

स्थापत्य कला के क्षेत्र में जैनियो का महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी कलात्मक कृतियाँ स्मारक, स्तूप, मूर्तियाँ, मन्दिर, मठ और गुफाओं के रूप में है। बराबर व नागार्जुनी पहाड़ियों पर स्थित गुफाएँ प्राचीनतम जैन गुफाएँ हैं। उड़ीसा के पुरी, उदयगिरि और खण्डगिरि नामक स्थानों पर जैन गुफाएँ हैं, जिनके सबसे अधिक आकर्षक अंग खम्भों के ऊपर अंकित ब्रैकेट (ठतंबामजे) हैं, जो पेड़-पौधों के रूप में बने हुए हैं। उदयगिरि की रानीगुफा और गणेशगुफा सबसे अधिक सुन्दर है। एलोरा में प्राप्त होती हैं, जिसमें इन्द्रसभा नामक दो मंजिली गुफा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसकी ऊपर की मंजिल में जैन तीर्थकारों की मूर्तियाँ हैं और नीचे की मंजिल की दीवारों तथा स्तम्भों पर बहुत सुन्दर चित्र खनित हैं। इनके अतिरिक्त राजगिरि की सोन भण्डार, जूनागढ़ की बाब प्यारा मठ के समीप की गुफाएँ, प्रयाग तथा कौशाम्बी के पास की पभोसा की गुफाएँ, बादामी की जैन गुफा आदि प्रसिद्ध जैन गुफाएँ हैं।

प्राचीनतम जैन मन्दिरों में प्राप्त जैन मन्दिरों में एहोल का नेघुटी मन्दिर उल्लेखनीय है। इसके अवशेष उसकी वास्तुकला का परिचय देते हैं। यह मन्दिर गुप्त व चालुक्य काल की स्थापत्य शैली का परिचायक है इसमें जो कलात्मकता और अलंकरण हैं, वह तत्कालीन मन्दिरों में अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। मध्य भारत में 10वीं और 12वीं शताब्दी में निर्मित पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ और आदिनाथ नामक मन्दिर खजुराहों में प्राप्त होते हैं, जिनकी कार्निशों पर हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इन मंदिरों में पार्श्वनाथ का मन्दिर सबसे विशाल है तथा इसकी बाह्य भित्तियों पर अंकित अप्सराओं की मूर्तियाँ अत्यन्त सजीव है। शान्तिनाथ मन्दिर में तीर्थंकर शांतिनाथ की 15 फुट ऊँची विशाल प्रतिमा है। देवगढ़ नामक स्थान 31 जैन-मन्दिर प्राप्त हुए हैं। जैन-मन्दिर का सर्वोत्कृष्ट कलात्मक रूप आबू पर्वत पर दिलवाड़ा नामक स्थान पर स्थित मन्दिरों में दिखायी पड़ता है। इन मन्दिरों में दो विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनकी निर्माण विमलशाह तथा वस्तुपाल एवं तेजपाल ने 1032 और 1232 ई0 में कराया था। ये दोनों मन्दिर श्वेत संगमरमर से निर्मित हैं। उनके रंगमण्डप, गूढ़, मण्डप, गर्भगृह तथा स्तम्भ का अलंकरण दर्शनीय है। गिरनार (काठियावाड़, पालीताना, पहाड़ियों पर रानपुर (जोधपुर) और श्रवणवेलगोला (कर्नाटक) में भी जैन मन्दिरों के समूह प्राप्त होते हैं।

मथुरा से प्राप्त जैन मूर्तियों में वासुदेव के समय की आदिनाथ की मूर्ति उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त यहाँ से पार्श्वनाथ तथा नेमिनाथ की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। राजगिरि के वैभार पर्वत की नेमिनाथ की मूर्ति, विदिशा के समीप उदयगिरि की गुफा में उत्कीर्ण पार्श्वनाथ की मूर्ति, कहाऊँ (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त चार तीर्थंकरों सहित पार्श्वनाथ की मूर्ति, वेसनगर, बूढ़ी चन्देरी तथा देवगढ़ से प्राप्त जैन मूर्तियाँ गुप्तकालीन जैन मूर्तिकला का परिचय प्रदान करने वाली प्रसिद्ध मूर्तियाँ हैं।

जैन चित्रकला के प्राचीनतम उदाहरण तमिल प्रदेश के तंजोर की सित्तान्नवासल गुफा में प्राप्त होते हैं। इस गुफा की समस्त भित्तियाँ व छत चित्रित थी। अधिकांश चित्र अब नष्ट हो चुके हैं, किन्तु शेष चित्रों से उसके अलंकरण का अनुमान किया जा सकता है। आकाश में मेघों के बीच नृत्य करती हुई अप्सरा, कमल तोड़ते स्त्री-पुरूष की युगल आकृति, क्रीड़ा करते हसंयुगल आदि सुन्दर चित्र है। एलोरा के कैलाश मन्दिर में एक दिगम्बर मुनि की यात्रा का चित्रण है। एलोरा के श्रवणबेलगोला के जैनमठ में अंकित भित्ति-चित्र भी आकर्षक है।

11.7 सारांश

जैन धर्म कई वर्षों में एक धार्मिक परम्परा के रूप में विकसित हुआ। इस दौर में लोगों के भौतिक जीवन में परिवर्तन आया। चारागाही समाज कृषि समाज बना। व्यापार और वाणिज्य का विस्तार हुआ। अनुष्ठानों और पुरोहितों के वर्चस्व के खिलाफ प्रतिक्रिया हुई। नये धार्मिक आन्दोलनों का उदय हुआ। छठी शताब्दी ई0पू0 में भारत में दो महत्वपूर्ण धार्मिक परम्पराएं जैन धर्म और बौद्ध धर्म विकसित हुई। जैनों का मानना है कि कुल मिलाकर चौबीस तीर्थकर हुए और महावीर उनमें अन्तिम तीर्थकर हैं। ऐसा माना जाता है कि मुख्य रूप से महावीर और उनके पूर्वज पार्श्वनाथ ने जैन धर्म को आकार दिया था। जैन धर्म के अनुसार यह ब्रह्मांड शाश्वत है और उसके निर्माण में ईश्वर का कोई योग नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार इस विश्व को जीव और अजीव में विभक्त किया जाता है। जैन धर्म का मानना है कि अनन्त काल से आत्मा कर्म के बन्धनों में जकड़ी हुई है। इस ब्रह्मांड की प्रत्येक परिघटना कार्मिक ऊर्जा का ही प्रतिफलन है। जैन दर्शन में विभिन्न प्रकार के कार्मिक पदार्थों और कामों की चर्चा की गई है। संग्रहीत कार्मिक पदार्थ ज्ञान और प्रसन्नता के मार्ग में बाधक होते हैं। सम्यक् आस्था, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् आचरण व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन को पाने के लिए और मोक्ष की प्राप्ति के लिए नियम बनाए गए हैं। गृहस्थ या सन्यासी के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का पालन करना अनिवार्य है। इसका पालन करके ही आत्मा एक उच्च आदर्श पर पहुँचती है और उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। जैन धर्म अनेकांतवाद या यथार्थ के अनेक पहलुओं पर विश्वास रखता है। इसके अनुसार इस दुनिया में कई विरोधी दृष्टिकोण उपस्थित हैं। इन सबों को मिलाकर एक समग्र दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए।

11.8 शब्दावली

1. आस्रव : आस्रव का अर्थ ‘बहना’ पुद्गलरूपी कर्म का जीवन की ओर आकृष्ट होना आस्रव है।

2. निर्जरा : निर्जरा भी सात तत्वों में से एक तत्व है। पहले से प्राप्त कर्मों के त्याग को निर्जरा कहा जाताहै।

3. सम्वर :नए कर्मों को आत्मा में प्रवेश करने और रोकने की प्रक्रिया को सम्वर बोलते हैं। यह अपनी इच्छा पर विजय प्राप्त कर तपस्या, संयम, ध्यान और प्रार्थना से सम्भव होता है।

4.अचेलक :पार्श्वनाथ के शिष्य।

5.संल्लेखना :उपवास द्वारा मृत्यु।

6.बसदि :जैन मठ।

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेहता, मोहन लाल, जैन धर्म दर्शन, बैंगलूर, 1999
2. जैन, हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, 1962
3. जैन, जगदीश चन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, वाराणसी, 1965
4. जैन, भालचन्द्र, जैन संस्कृति कोश I, II,III वाराणसी, 2002
5. जैन, बलभद्र, जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, दिल्ली, वि0सं0, 2500

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. छठी शताब्दी ईसा पूर्व की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. महावीर की शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए।
3. जैन धर्म के स्यादवाद की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए?
4. जैन धर्म में जीव और अजीव के महत्व पर प्रकाश डालिए?
5. जैन धर्म के श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए

इकाई-बारह

महात्मा बुद्ध: बौद्ध धर्म, बौद्ध धर्म का विस्तार, बौद्ध धर्म-दर्शन ,महायान ,हीनयान ,भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन ,पतन के कारण

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 महात्मा बुद्ध
12.3 बौद्धधर्म
12.4 बौद्ध धर्म का विस्तार
12.5 बौद्ध धर्म दर्शन
  12.5.1. महायान
  12.5.2. हीनयान
12.6. भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन
12.7 पतन के कारण
12.8 साराँश
12.9. शब्दावली
12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

नेपाल के बिथरी जिले में तथा हिमालय की तराई में स्थित शाक्य गणराज्य के कपिलवस्तु में राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म 563 ई0पू0 में हुआ था। 29 वर्ष की अवस्था में उन्होंने सत्य की खोज में तथा दुःखों से परिपूर्ण समस्त मानवता के कल्याण के लिए गृह त्याग किया, जिसको बौद्ध साहित्य में महाभिनिष्क्रमण कहा जाता है।

कठोर तपस्या एवं साधना के पश्चात् बोधगया नामक स्थान पर उन्हें सम्बोधि की प्राप्ति हुई। ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने उस ज्ञान को मानव के कल्याणार्थ उपदेश देने का निश्चय किया और अपने 5 साथियों को जो उनका साथ छोड़कर चले गए थे, सर्वप्रथम ज्ञान दिया। जिसे बौद्ध जगत में प्रथम धर्मचक्रप्रवर्तन के नाम से जाना जाता है। 45 वर्षों तक उन्होंने घूम-घूम कर मानव के कल्याण हेतु उपदेश दिया। उनका धर्म एक ऐसा सिद्धान्त था जो मानववाद की बुनियाद पर आश्रित था।

बुद्ध ने मानव जीवन को दुखों से परिपूर्ण बताया तथा उसके निवारण पाने का उपाय भी बताया और 80 वर्ष की अवस्था में कुशीनगर नामक स्थान पर उनका महापरिनिर्वाण हुआ। बुद्ध ने अपने उपदेशों से जनमानस में जागरूकता उत्पन्न करने तथा कर्मवाद पर अत्यधिक बल दिया।

12.1 उद्देश्य

☐ छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हुए धार्मिक परिवर्तन का जनमानस पर प्रभाव।

☐ ईसा पूर्व छठी शताब्दी में बौद्ध धर्म के उपदेशों को प्रचारित-प्रसारित करने में पाली भाषा का योगदान।

☐ बौद्ध धर्म के उदय में तत्कालीन परिस्थितियों का योगदान।

12.2 महात्मा बुद्ध

कोशल देश के उत्तर में कपिलवस्तु शाक्य क्षत्रियों का एक छोटा सा गणराज्य था। यहाँ शुद्धोधन नामक एक राजा थे। 563 ई0पू0 राजा शुद्धोधन की कोलियवंशीय पत्नी महामाया अथवा मायादेवी के गर्भ से गौतम (जो बाद को महात्मा बुद्ध कहलाये) नेपाल की तराई में स्थित लुम्बिनी वन में जन्म हुआ था जो कपिलवस्तु से लगभग 14 मील दूरी पर है। कालान्तर में यहीं पर सम्राट अशोक ने एक स्तम्भ स्थापित करवाया था। जिस पर आज भी 'हिदे बुद्धे जातेति साक्यमुनिति हिदं भगवा जातेति' (यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए थे-यहाँ भगवान उत्पन्न हुए थे) पढ़ा जाता है। गौतम के जन्म के सातवें दिन ही उनकी माता का देहान्त हो गया। अतः उनका पालन-पोषण उनकी विमाता महाप्रजापती गौतमी बालक गौतम को पुस्तकीय शिक्षा के अतिरिक्त क्षत्रियोचित सामरिक शिक्षा भी दी गई। शीघ्र ही वे घुड़सवारी, तीरंदाजी, मल्ल-कला आदि क्षेत्रों में सिद्धहस्त हो गये। लेकिन प्रकृत्या चिन्तनशील होने के कारण उनका मन इन सब सांसारिक विषयों में नहीं लगता था। वे सदैव किसी चिन्ता में चिन्तित रहते थे। प्रायः लोग उन्हें अपने घर से दूर एक जम्बूवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न अवस्था में बैठे देखा करते थे। उनकी चिन्ता का विषय क्या था, यह तो बाद को ही संसार को ज्ञात हुआ।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बड़ी सुख-समृद्धि के बीच व्यतीत हुआ। उनके रहने के लिए ऐश्वर्य की समस्त सामग्री उपलब्ध थी। उनके घूमने-फिरने के लिए अनेक रम्य उपवनों का निर्माण हुआ। 16 वर्ष की अल्पायु में

उनका विवाह रूपवती एवं गुणसम्पन्न क्षत्रिय कन्या यशोधरा से हुआ। कुछ समय पश्चात् यशोधरा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम राहुल था।

त्रिपिटक में अनेक ऐसे दृश्यों और घटनाओं का उल्लेख है जिनसे उनके वैराग्य-प्रधान स्वभाव को उद्दीपन मिला। कहते है कि नगर दर्शन हेतु भिन्न-भिन्न अवसरों पर बाहर जाते समय उनको को मार्ग में पहले जर्जर शरीर, वृद्ध, शव और अन्त में प्रसन्नचित संन्यासी के दर्शन हुए। इन दृश्यों के भाव प्रवण उनके हृदय में प्रवृतिमार्ग की निस्तारता और निवृत्तिमार्ग की सन्तोष भावना को मजबूत किया। उन्होंने सांसारिक दुःखों से निवृत्ति का मार्ग खोजने तथा अपनी भार्या तथा शिशु को छोड़कर 29 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग कर दिया।

डी0डी0 कौसाम्बी गौतम बुद्ध के गृह त्याग का एक राजनीतिक कारण भी बताते हैं। उनका कथन है कि शाक्यों के पड़ोसी और सम्बन्धी कोलीय राजा थे। इन दिनों क्षत्रिय जातियों में रोहिणी नदी के पानी के विषय पर बहुधा युद्ध हुआ करता था। इसी प्रकार के अवसर पर कोलियों के दमन का भार शाक्यों ने गौतम को देना चाहा। परन्तु गौतम इस पारस्परिक शत्रुता से खिन्न रहते थे। अतः उन्होंने शस्त्र ग्रहण करने से इन्कार कर दिया, परन्तु इस इन्कार से भयंकर परिणाम हो सकता था। सम्भव था कि शुद्धोधन के समस्त परिवार को राज्य से बाहर निकाल दिया जाता। इस संकट से अपने परिवार की रक्षा करने हेतु गौतम ने स्वयं गृह त्याग कर दिया। परन्तु यह राजनीतिक त्याग के पीछे एक मात्र पारिवारिक संरक्षा की चिन्ता न थी। वे तो सम्पूर्ण मानव जाति के लिए व्याकुल थे।

गृह त्याग करने के पश्चात् गौतम ने 7 दिन अनूपिय नामक आम्रवन में व्यतीत किये। इसके पश्चात् एक लम्बी यात्रा करके वे राजगृह पहुँचे। वहाँ के राजा ने उन्हें भारी ऐश्वर्य प्रदान करना चाहा, परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया और आगे चल दिये। कालान्तर में वे आलार कालाम नामक एक तपस्वी के पास पहुँचे, जो संख्योपदेशक थे। उन्होंने उन्हीं के पास रहकर ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न करने लगे। परन्तु अन्त में यह जानकर कि आलार कालाम का यह धर्म न निर्वेद के लिए, न वैराग्य के लिए, न निरोध के लिए, न उपशम के लिए, न अभिज्ञा केलिए, न सम्बोधि के लिए और न निर्वाण के लिए उन्होंने उनका साथ छोड़ दिया। इसके बाद वे उरूवेला की सुरम्य वनस्थली में पहुँचे। यहाँ पर उन्हें कौडिन्य, बप्पा, भद्दिय, महानाम, अश्वजीत पाँच तपस्वी मिले। अन्य व्यक्तियों की सहायता से सफलता मिलती न देखकर

गौतम ने अब स्वयं आत्म-पौरूष (प्रधान) का अवलम्बन लिया।उन्होंने गया के एक वट वृक्ष के नीचे बैठकर धुरव समाधि लगाई। वे सात दिन और सात रात समाधि में स्थित रहे। आठवें दिन वैशाख पूर्णिमा पर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। उस दिन से वे तथागत कहलाये। उनके बोध प्राप्ति से सम्बन्धित होने के कारण गया 'बोध

गया' और वट वृक्ष जिसके नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था, बोधिवृक्ष के नाम से प्रख्यात हुए आज भी ये विश्व के एक विशाल जन-समूह की प्रगाढ़ श्रद्धा-भक्ति के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध है।

12.3 बौद्धधर्म

तथागत बुद्ध ने यह निश्चय किया कि पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए उनका उपदेश आवश्यक है। अतः उन्होंने धर्म प्रचार करने का निश्चय किया। सदियों से चली आ रही रूढिवादी परम्परा से बौद्ध धर्म ने अपनी नई मान्यता सामने रखी। बौद्ध दर्शन अमूर्त-चिंतन पर वल नहीं देता है और न ही ईश्वर के अस्तित्व या विश्व के आरम्भ और अन्त जैसे प्रश्नों पर विचार-विमर्श करता है। उनका कहना था कि ''यदि परम सत्ता से तात्पर्य यदि ऐसी कोई चीज से है जिसे हम जान नहीं सकते तो इसके अस्तित्व को किसी भी तर्क से स्थापित नहीं कर सकते।'' वे बोधगया से ऋषिपत्तन (सारनाथ) पहुँचे और वहाँ उन्होंने सर्वप्रथम धर्मोपदेश अपने पुराने पाँच साथियों को धर्मोपदेश दिया, जो उनका साथ छोड़कर चले गये थे। उनके द्वारा दिया गया उपदेश प्रथम धर्म चक्र परिवर्तन कहा जाता है। उन्होंने अपने उपदेश में किसी भी ऐसी चीज के बारे में अनुमान नहीं किया जिससे वे परिचित न हो और उन्होंने इसे रोजमर्रा के जीवन में घटने वाली घटना से जोड़कर ही रखा। बौद्ध धर्म ने अपने को अनुष्ठानों, धर्म सिद्धांतों और अलौकिकता से दूर रखा और चरित्र की पवित्रता और सद्गुणों के विकास पर बल दिया। बौद्ध दर्शन के अनुसार स्व का विचार एक छलावा है। एक कल्पना है जो 'मैं' या 'मेरा' का विनाशकारी विचार पैदा करता है। यही गलत विचार दुनिया की हर बुराई की जड़ है। उनका उपदेश इस बात पर प्रकाश डालता है कि मनुष्य का जीवन कष्ट और दुःख से घिरा हुआ है और उन्हेंने इस दुःख और कष्ट से राहत पाने के अनेक मार्ग बताए हैं। बुद्ध का दर्शन तीन शब्दों में व्याख्यायित किया जा सकता हैः अनामन, अनित्य और दुःख। निर्वाण के सिवा सब कुछ अनित्य है, इसलिए दुःख कारण है और वह नश्वर है।

उन्होंने चार आर्य सत्य का उपदेश दिया जो इस प्रकार हैं-

- दुःख।
- दुःख समुदय।
- दुःख निरोध।
- दुःख निरोध प्रतिपदा गामिनी।

इस अष्टमार्ग से मनुष्य में सद्गुण, मनन और बुद्धि का विकास होता है जो इस प्रकार हैः-

- सम्यक् समझ
- सम्यक् सोच
- सम्यक् वाणी

- सम्यक् आचरण
- जीवन-यापन के सम्यक् साधन
- सम्यक् उद्यम
- सम्यक् स्मृति
- सम्यक् ध्यान

सम्यक् समझ का मतलब है कि दुनिया को सही दृष्टि से देखना और उसे सही रूप से व्याख्यायित करना। यह दुनिया में फैले सभी बुरे विचारों और दृष्टियों को त्यागने पर बल देता है और इस सत्य से परिचित कराता है कि दुनिया अनन्त दुःखों से परिपूर्ण है और इसका कारण स्वार्थ और अनियंत्रित इच्छाएँ हैं। 'लालच और लाभ से मुक्त, ईर्ष्या से मुक्त, कूररता से मुक्त सोच ही सम्यक् सोच है।' बिना दूसरे की भावनाओं को चोट पहुँचाए और बिना झूठ बोले हुए बातचीत करना ही समयक् साधन का मतलब है कि व्यक्ति को सही जीवन-यापन करने के लिए गलत चीजों का प्रयोग न करते हुए ईमानदार बने रहना चाहिए। सम्यक् उद्यम का मतलब है सही मानसिक स्थिति और बुरे विचारों को हावी होने से रोकना। सही मानसिक स्थिति के जरिये मनुष्य लगाव, क्रोध, ईष्या आदि इच्छाओं, भावनाओं को नष्ट कर सकता है। सम्यक् स्मृति को एक ऐसी तकनीक माना जा सकता है जिसके जरिए दुनिया के बुरे तत्वों की समाप्ति के लिए लोगों को प्रार्थना करने या ध्यान लगाने की ओर प्रक्त किया जाए। सम्यक् ध्यान के द्वारा व्यवस्थित उपासना और प्रार्थना के जरिए एक समग्र चेतन को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता हैं मनुष्य को सम्पूर्ण बनाना बौद्ध धर्म का प्रमुख लक्ष्य हे जिसे जीवन का असल उद्देश्य माना जाता हैं खुशी, संतोष और भय से मुक्ति प्राप्त करने के लिए बुद्ध द्वारा सुझाए गए रास्ते पर चलना अत्यंत आवश्यक है।

भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया, भिक्षुओं दो अतिवाद हैं। जिन्होंने इस दुनिया को त्याग दिया है उन्हें इनसे दूर रहना चाहिए। ये दो अतिवाद क्या हैं? सुख और ऐशोआराम में लिप्त जीवनः यह उमानवोचित, कामुक, अभद्र, अधम और अकल्याणकारी हैं। इन दो अतिवादों को त्यागकर भिक्षुओं, ततागत में मध्यमाग्र का ज्ञान प्राप्त किया है जो अंतर्द्रष्टि प्रदान करता है, जो सुबुद्धि देता है, जो शांति, ज्ञान, संबोधित, निर्वाण की ओर ले जाता है।

ये भिक्षुओं, तथागत ने इसी मध्यमार्ग ज्ञान प्राप्त किया है जो अंतर्द्रष्टि प्रदान करता है जो सुबुद्धि देता है, जो शन्ति, ज्ञान, संबोधि निर्वाण की ओर ले जाता है। यह अष्टमार्ग हैः सम्यक् आस्था, सम्यक् इच्छा, सम्यक् वाणी, सम्यक् आचरण, जीवन-यापन का सम्यक् साधन, सम्यक् उद्यम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् ध्यान। ये भिक्षुओ, तथागत ने इसी मध्यमाग्र का ज्ञान प्राप्त किया है जो अंतर्द्रष्टि प्रदान करता है जो सुबुद्धि देता है, जो

शांति, ज्ञान, संबोधित निर्वाण की ओर ले जाता है। ये भिक्षुओं, यह दुःख एक परम सत्य हैः जन्म दुःख है, ह्रास दुःख ह, बीमारी दुःख है, मृत्यु दुःख है। वस्तुओं से घृणा करना दुःख है जिनसे हम प्यार करते हैं उनसे विछृड़ना दुःख है, जो हम पाना चाहाते हैं, उसका न मिलना दुःख है। संश्रेय में इस जीवन के इन पाँच प्रकारों से चिपके रहना ही दुःख है।

ये भिक्षुओं, इस दुःख की समाप्ति भी एक परम सत्य है। मनोविकारों के अंत के साथ इसका भी अंत हो जाता है। अपनी इच्छाओं को नष्ट कर, इस प्यास को त्यागकर, छोड़कर, इससे दूर रहकर हम अपने दुःखों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

ये भिक्षुओं, यही परम सत्य मार्ग है जिस पर चलकर हम अपने दुःखों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। यह पवित्र अष्टमार्ग हैः सम्यक् आस्था, सम्यक् इच्छा, सम्यक् वाणी, सम्यक् आचरण जीवन-यापन का सम्यक् साधन, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् समृति, सम्यक् ध्यान।

45 वर्षों के अनवरत धर्मोपदेश के पश्चात् महात्मा बुद्ध की वृद्धावस्था आ पहुँची। उनके शरीर पर जरा के समस्त लक्षण प्रकट हो गए। अपना अवसान-काल आया देख कर एक दिन महात्मा बुद्ध ने आनन्द से कहा-में जीर्ण, वृद्ध उध्वगत् वयः प्राप्त हूँ। अस्सी वर्ष की मेरी आयु है। आनन्द, जैसे-पुरानी गाड़ी बाँध-बूँधकर चलती है, वैसे ही आनन्द, तथागत का शरीर बाँध-बूँधकर चल रहा है .... इसलिए आनन्द। आत्मदीप, आत्मशरण, अनन्यशरण, धर्मदीप, धर्मशरण, अनन्यशरण होकर विहरो,। वैशाली से महात्मा बुद्ध पांवा गये और वहाँ चुन्द कमरि-पुत्र (सोनार) के घर पर भोजन किया। इसके प्श्चात् पेचिश हो गई। किन्तु उस वेदना को किसी प्रकार सहन करते हुए वे कुशीनारा पहुँचे। अब उनका निर्वाण अति सन्निकट था। इसलिए उन्होंने भिक्षुओं को बुलाकर अंतिम उपदेश दिया, आनन्न। शायद तुम ऐसा सोचो कि हमारे रास्ता चले गये अब हमारा रास्ता नहीं है आनन्द। इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश दिये हैं, मेरे बाद वे ही तुम्हारे रास्ता होंगे।

12.4 बौद्ध धर्म का विस्तार

सर्वविदित है कि मौर्य सम्राट अशोक के शासन-काल में उसके पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए श्री लंका गए थे। यही नही, अशोक के समय में अन्य बौद्ध धर्म के प्रचारक मध्य एशिया तथा दक्षिण-पूर्व-एशिया के देशों में गए थे। धीरे-धीरे बौद्ध धर्म के प्रवाह ने मध्य एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया को आप्लावित कर लिया और इसके बाद वह यूरोप तक पहुँच गया। बौद्ध धर्म में प्रारम्भ से ही व्यापारियों एवं वणिकों की रूचि थी। ये व्यापारी समुद्र पार करके तथा लम्बी-2 यात्राएं कर सुदूर प्रदेशों में जाया करते थे और उन देशों में जाकर व्यापार के साथ-साथ बौद्ध धर्म का प्रसार भी करते थे। इस प्रकार व्यापारियों एवं धर्म

प्रचारकों के द्धारा बौद्ध धर्म का व्यापक प्रसार-प्रचार हुआ।सोपागा तथा सेलेबीज द्वीप समूहों से प्राप्त ई0पू0 चौथी शताब्दी की मूर्ति इस बात को प्रमाणित करती है कि उन देशों में इस समय बौद्ध धर्म का प्रसार था और यह भी कहा जाता है कि बोर्नियो द्वीप के नामकरण में बौद्ध यापारियों का ही योगदान रहा है। मलाया में भी बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ। पहली सदी से ही दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में इस धर्म का प्रचार होने लगा था।

श्री विजय बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र-स्थल बन गया वहां दूर-दूर से आकर लोग बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। दीपांकर श्रीज्ञान जैसे विद्धान भी वहां शिक्षा प्राप्त करने के लिए गये थे। दक्षिण-पूर्व एशिया की तरह मध्य एशिया के देशों में भी इस धर्म का प्रचार हुआ।

तजाकिस्तान से प्राप्त बुद्ध की विशालकाय मूर्तियाँ तथा बौद्ध धर्म के अवशेष स्पष्ट करते हैं कि कनिष्क के समय बौद्ध धर्म उन क्षेत्रों में फैल चुका था। चीन के कानसू प्रान्त की सीमा पर तुनह्यंग से ऐसे प्रमाण मिले हैं, जो वहाँ पर बौद्ध धर्म के प्रधान केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। वस्तुतः चीन के सांस्कृतिक जीवन में बौद्ध धर्म का अभूतपूर्व योगदान है। यहाँ से कुमारजीव जैसे विद्वान जाकर ज्ञान और दर्शन के प्रसार में संलग्न रहे। चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार-प्रचार वहाँ के यात्रियों द्वारा किये गये।

चीन से बौद्ध धर्म कोरिया और जापान गया तथा वहाँ के धार्मिक और सामाजिक जीवन का आधार बन गया। तिब्बत में बौद्ध का प्रसार तेजी से हुआ और लोग पूर्णतः बौद्ध धर्मानुयायी हो गये। वहाँ के प्रसिद्ध विद्वान लामा तारानाथ है जिसने बौद्ध धर्म एवं दर्शन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया है।

अलबरूनी ने लिखा है कि मुसलमान होने से पहले ईरान, ईराक जैसे देशों के निवासी बौद्ध थे। सम्राट अशोक ने ग्रीस, सीरिया आदि पश्चिमी देशों के पीड़ित प्राणियों के लिए औषधियाँ बँटवाकर तथागत के संदेश प्रसारित करवाए थे। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार विश्व के विभिन्न देशों में हुआ।

12.5 बौद्ध धर्म दर्शन

ऐसा माना जाता कि बुद्ध की मृत्यु के तुरन्त बाद बौद्धों की एक बहुत बड़ी सभा हुई जिसमें बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों उपाली और आनन्द ने विनय पिटक और सुत्त पिटक का वाचन किया। बुद्ध की मृत्यु केलगभग 100 वर्षो बाद वैशाली में दूसरी बौद्ध परिषद् आयोजित की गई। इस समय तक बौद्ध भिक्षुओं में कई मुद्दों पर मतभेद उभर सामने आ चुके थे। बौद्ध धर्म में दो प्रमुख दलों का उदय हुआ जिसे स्थिविरवदिन(थेरावदिन) और महासंघिक कहा गया। तीसरी बौद्धपरिषद् अशोक काल में पाटिलपुत्र में आयोजत हुई। इस परिषदमें केवल विनय को लेकर ही नहीं बल्कि धम्मको लेकर भी मतभेद उभरे। परिषद के अध्यक्ष मोगलिपुत्त तिस्सा ने कथावस्तु नामक एक पुस्तक का संपादन किया जिसमें कुछ पंथों द्वारा प्रचारित किए जा रहे विधर्मों, झूठे दृष्टिकोणों का खण्डन किया गया।

यहीं पर अभिधम्म पिटक को शामिल किया गया। चौथी बौद्ध परिषद् कश्मीर में कनिष्क के शासन काल में वसुमित्र और अश्वघोष के नेतृत्व में आयोजित की गयी। इस प्रकार धीरे-धीरे बौद्ध दर्शन की व्याख्या को लेकर भिक्षुगण लगातार इन परिषदों की बैठक में दो भागों में विभक्त हो गई जिन्हें हीनयान और महायान के नाम से जाना गया। वस्तुतः हीनयान और महायान दोनों ही शाखाएँ बुद्ध के उपदेशों से ही सूत्र ग्रहण करती हैं परन्तु ये इन उपदेशों की व्याख्या अलग-अलग ढंग से करते हैं। हीनयान शाखा के अनुयायी भी थेरावादियों के समान यह मानते हैं कि कोई भी स्थाई आत्मा नहीं होती और एक व्यक्ति पाँच तत्वों से बना होता है ये हैं- पदार्थ, संस्पर्श, दृष्टिकोण, पूर्ववृत्ति और चेतना अज्ञान, लोभ और स्वार्थ के उन्मूलन के जरिए कर्म और पुनर्जन्म से मुक्ति पाई जा सकती है और निर्वाण प्राप्त किया जा सता है। हीनयान का मानना है कि व्यक्ति अपने प्रयत्नों से धीरे-धीरे ज्ञानोदय की ओर बढ़ सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मुक्ति या मोक्ष के लिए खुद कार्य करना होगा। ज्ञानोदय की प्राप्ति के लिए उपासना और आत्मविश्लेषण को प्रोत्साहित किया गया। श्रीलंका, थाईलैण्ड, बर्मा, कम्बोडिया और लाओस जैसे देशों में अभी भी थेरावद परम्परा मौजूद है।

बौद्ध धर्म के अनुसार व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक घटना उसके पुनर्जन्म के कर्म से निर्धारित होती है। जीवन एक लगातार चलने वाली श्रंखला है और व्यक्ति का मौजूदा अस्तित्व उसके पिछले जन्म की गतिविधि का फल है। बौद्ध अवधारणा में कर्म भाग्यवादी नहीं है। वह नैतिकता और कार्य-कारण सम्बन्ध पर आधारित है। उपनिषदों में भी कर्म में आस्था व्यक्त की गयी है परन्तु बुद्ध ने इस सिद्धांत को अलग ढंग से व्याख्यायित किया है। बुद्ध के अनुसार सभी प्राणियों के कर्म उनके अपने जीवन उनकी विरासत, उनके जन्म, उनके रिश्तेदार और उनके परिवेश से निर्धारित होता है। बुद्ध आत्मा में विश्वास नहीं करते थे लेकिन उनका मानना था कि मृत्यु के बाद व्यक्ति की चेतना मरती नहीं है। बौद्ध धर्म में फिर से जन्म लेना पुनर्जन्म नहीं है बल्कि यह जीवन की एक श्रृंखला है। एक प्रक्रिया है जिसमें कर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नैतिकता के निर्धारण और उसके पालन में कर्मकारण भी होता है और प्रेरणा भी अंगुलिमाल की कहानी से कर्म की बौद्ध अवधारणा ही सामने आती है। यहाँ तक कि बौद्ध होने के बावजूद वह एक दिन लोगों के गुस्से से बच नहीं पाता हैं क्योंकि लोग अभी भी उसे पुराने रूप में ही पहचानते थे। जब अंगुलिमाल ने बुद्ध से इसकी शिकायत की तो बुद्ध ने कहा, ‘जो तुमने इस जीवन में किया है तुम्हें उसी का दुःख झेलना पड़ रहा है इसका सामना करो, सब कुछ ठीक हो जाएगा। अगले जन्म में बड़े दण्ड और कष्ट सहने की अपेक्षा वर्तमान जीवन में छोटे-मोटे जीवन सह लेना बेहतर है।’

कर्म के बाद पुनर्जन्म और निर्वाण की संकल्पना सामने आती है। बुद्ध आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते थे परन्तु फिर भी पुनर्जन्म कैसे होता है इसे इस तरह से समझाया गया है:-

एक बौद्ध मठ में एक मोमबत्ती जल रही थी वह जलते-जलते इतनी छोटी हो गयी थी कि उसका बुझना तय था। एक भिक्षु ने उस पुरानी मोमबत्ती से एक नई मोमबत्ती जला दी। पुरानी मोमबत्ती बुझ जाती है और नई मोमबत्ती जल उढ़ती है। पुरानी मोमबत्ती में किसी चीज का स्थानांतरण हुआ इन दोनों में कार्यकारण सम्बन्ध तो है ही लेकिन कुछ भी हस्तांतरित नहीं हुआ। इसी प्रकार आपके पिछले जीवन और वर्तमान जीवन के बीच एक कारणात्मक सम्बन्ध तो है परन्तु इसमें आत्मा का स्थानांतरण नहीं होता है। जब एक मनुष्य मरता है तो उसका शरीर नष्ट हो जाता है परन्तु उसके जीवन की मरती चेतना एक नये शरीर में नई चेतना के साथ प्रस्फुटित होती है। जातक कथाओं में बौद्ध धर्म के पुनर्जन्म की कथाओं के जरिए पुनर्जन्म की अवधारणा को काभी प्रचारित किया गया है।

निर्वाण की प्राप्ति बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है। निर्वाण का अर्थ मनोविकार, घृण और माया का विनाश। निर्वाण सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति दिलाता है। आत्मनियंत्रण के द्वारा और अष्टमार्ग पर चल कर कोई व्यक्ति अपने जीवन में निर्वाण प्राप्त कर सकता है। बौद्ध धर्म वस्तुतः एक शाश्वत परिवर्तन का दर्शन है। बौद्ध धर्म के उपदेश में मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया जाता है कि हर एक व्यक्ति अपने कर्म के लिए खुद ही जिम्मेदार होता है। कोई ईश्वर या पुजारी या कोई भी आपको दुष्कर्मों से बाहर निकालने से बाहर करता। यहाँ तक कि बुद्ध भी इससे आपको नहीं बचा सकते। बौद्ध धर्म में देवताओं के स्थान पर कर्म पर बल दिया गया है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि इसके जरिए धार्मिक मतभेदों को कर्म करने और एक सार्वभौम धर्म की स्थापना पर जोर दिया गया था।

12.5.1 महायान

महायान परम्परा पहली शताब्दी ई0पू0 और दूसरी शताब्दी ई0 के बीच विकसित हुई। महायान दर्शन बुद्ध के मौलिक दर्शन परआधारित है परन्तु परम्परागत व्याख्याओं में उसकी आस्था नहीं है। इसमें नए सिद्धांतऔर प्रथाओं को जोड़ने का प्रयत्न किया गया ताकि बौद्ध धर्म के आम अनुयायी भी इसे आसानी सेसमझ सकें। उन्होंने निर्वाण के बाद बुद्ध को भगवान बना दिया ताकि बुद्ध केअस्तित्व से सम्बन्धित सभी प्रश्नों और संदेहों का निराकरण किया जा सके।महायान दर्शन के अनुसार कोई भी पवित्र प्राणी बुद्ध बन सकता है। लेकिन यदि अपने कार्य और मानसिक स्थिति को विकसित नहीं कर सकता है तो उसे ज्ञानोदयकी प्राप्ति नहीं होगी। इसमें बोधिसत्व के आदर्श को प्रोत्साहत किया गया है। जो लोग दुनिया की सेवा करने के लिए जन्म और मृत्यु के इसकष्टप्रद चक्र में अपनी इच्छा से बने रहना चाहते हैं उनके लिए निर्वाण प्राप्तकरना जरूरी नहीं है। इस परम्परा के अनुयायियों का यह मानना है कि कुछ शाश्वत सत्ता है जिसकी पूजा की जा सकती है। इस प्रकार यह धर्म बहुदेववादी हो गया। इसे महायान के रूप में जाना गया क्योंकि इसमें बोधिसत्व के आदर्श से युक्त मुक्ति का

दृष्टिकोण और सभी प्राणियों को मुक्त करने की आकांक्षा शामिल है। करूणा और सुबुद्धि को ज्ञानोदय का मार्ग माना गया। बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए बोधिसत्व की प्रार्थना और उपासना को मूल मंत्र माना गया।

12.5.2 हीनयान

हीनयान दुःख को यथार्थ मानता है जबकि महायान परम्परा में इसे भ्रम माना जाता है। हीनयान परम्परा में बुद्ध के उपदेशों पर बल दिया जाता है जबकि महायान परम्परा में बुद्ध और मूर्ति पूजा को प्रमुख माना गया है। हालांकि दोनों ही मतों में बौद्ध दर्शन आधारभूत तत्व हैं परन्तु बौद्ध दर्शन और इससे जुड़ी प्रथाओं की व्याख्या को और इनमें विरोध है। हीनयान बौद्ध धर्म श्रीलंका, बर्मा और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में लोकप्रिय हुआ जबकि महायान बौद्ध धर्म भारत, मध्य एशिया, तिब्बत, चीन और जापान में लोकप्रिय हुआ।

बौद्ध धर्म में हीनयान का तात्कालिक लक्ष्य निर्वाण और व्यक्तिगत मोक्ष की प्राप्ति है जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपने कार्य से अपनी नियति तय करता है। दूसरी ओर महायान में धर्म के अनुयायियों का तात्कालिक लक्ष्य बोधिसत्व की प्राप्ति है। वह व्यक्ति बोधिसत्व होता है जो आध्यात्मिक ज्ञानोदय प्राप्त करता है। परंतु वह हसमस्त विश्व और इसमें रहने वाले प्राणियों की सेवा करने के लिए निर्वाण को स्थगित करता है।

वज्रयान बौद्ध धर्म के विकास का प्रमुख अंतिम चरण है। व्रजयान भी है और हीरा भी। ये शब्द मुख्य रूप से योग प्रधान और चमत्कारिक हैं। यह महायान शाखा का ही विकसित रूप है, परन्तु इसमें कुछ तत्व और जोड़ दिये गये हैं। व्रजयान का लक्ष्य मानसिक और शारीरिक शून्यता की प्राप्ति है। इसमें आध्यात्मिक विकास के लिए यौगिक क्रियाओं और अभ्यासों पर बल दिया जाता है और यह भी माना जाता है कि आध्यात्मिक शक्ति के लिए एक प्रबुद्ध गुरू की आवश्यकता होती है। उत्तर भारत के कुछ हिस्सों में और तिब्बत में बज्रयान का विकास हुआ।

12.6 भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन

भारतीय धर्म, चिन्तन, दर्शन, कला, शिक्षा-साहित्य तथा विदेशी सम्पर्क पर विशेष रूप से पड़ा। ज्ञान और दर्शन की दिशा में इसने विश्व को प्रभावित किया और अपनी नवीन चिन्तन-पद्धति से आकृष्ट किया। बौद्ध धर्म ने भारतीय जनमानस को सर्वप्रिय धर्म प्रदान किया जिसमें नैतिक आचरण और सच्चरित्रता थी तथा आडम्बर और कर्मकाण्ड का अभाव था। बौद्ध धर्म प्रचार की वस्तु नहीं, वह जीने की कला थी।

☐- जाति-पाँत और ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाकर इसने सामाजिक समरसता का प्रयास किया।

☐- यह धर्म विश्व-धर्म था। अतः इसने अन्तर्राष्ट्रीय चेतना और विश्व-बन्धुत्व को जन्म दिया।

☐- बौद्ध धर्म के अनुससार वही सिद्धान्त स्वीकार किया जो उसे तर्क्रसंगत लगे। तर्कवाद का समर्थन किया।

☐ भारतीय समाज में संघ और संघाराम का प्रचलन बौद्धों ने प्रारम्भ किया, जिसमें भिक्षु निवास करते थे। इसके पहले हिन्दू तपस्वी-संन्यासी जंगलों और पहाड़ों पर रहा करते थे। सामूहिक रूप से भिक्षुओं के रहने की प्र्रणाली का विकास बौद्ध धर्म ने ही किया।

☐ बौद्ध धर्म संघ की गणतन्त्रात्मक प्रणाली ने राज्यों को अनेक गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तों को स्वीकार करने में सहायता की। खुली बहस, बहुमत पर आधारित निर्णय, न्याय-पालिका का महत्व, कलयाणकारी शसान की कल्पना को भारत में बौद्ध से बल मिला।

☐ बौद्ध भिक्षु निःस्वार्थ भाव से धर्म प्रचार में संलग्न रहते थे और जनता के कष्टों को दूर करने का प्रयास करते थे। भारतीय समाज में निःस्वार्थ सेवा-भावना और धर्म-भावना का प्रारम्भ बौद्ध धर्म ने ही किया था।

☐ बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्कृति को एक विशाल साहित्य प्रदान किया, जिससे समय-समय पर अनेकानेक बौद्ध धर्म-ग्रन्थों की रचनाएँ विशेषकर पाली में की गईं, जो उस समय की प्रचलित जनभाषा थी।

☐ भारतीय स्थापत्य और वास्तुकला को बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण देन है,अनेकानेक बौद्ध विहारों, संघारामों, स्तूपों और चैत्यों का निर्माण समय-समय पर होता रहा, जिससे भारतीय संस्कृति समृद्ध और उन्नत होती रही, यही नहीं, बौद्ध धर्म से सम्बन्धितअशोक जेसे सम्राटों ने विशालकाय प्रस्तर स्तम्भों का निर्माण करवाया, जो भारतीय कला की अमूल्य निधि है। बौद्ध और बोधिसत्वों की भी अनेक प्रकार की मूर्तियाँ बनीं, जो तत्कालीन शैली की विशेषता को व्यक्त करती हैं। अजन्ता जैसी गुहाएँ निर्मित की गईं जिनकी दीवारों पर विविध प्रकार के रंग-बिरंगे चित्रों की सजीवता के साथ उरेहा गया है। बौद्ध धर्म के माध्यम से भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध विभिन्न देशों से स्थापित हुआ।बौद्ध धर्म ने एक सेतु का काम किया। कुषाण जैसे पश्चिमोत्तर प्रत्येक राजवंश ने भी बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था। कनिष्क जिसने बौद्ध अपना कर मध्य एशिया के विस्तृत प्रदेश में इसका प्रसार किया।

☐ भारत और बाहर दूसरे देशों में अहिंसा और दया जैसी भावना ने बौद्ध भिक्षुओं को एक स्थान पर सम्मिलित और संगठित होकर रहने की प्रेरणा प्रदान की थी जो बौद्ध सिद्धान्त औरे मत की अपनी देन है। भिक्षुओं में परस्पर सौहार्द्र और सौजन्य से रहने की भावना का बीच बौद्ध धर्म ने ही वपन किया था।

☐ बौद्ध धर्म ने अपने अहिंसा और प्राणियों के प्रति दया भावना से बड़े-बड़े शासकों को प्रभावित कर उनकी राजनीतिक प्रसारवादी महत्वाकांक्षा को अवरूद्ध किया तथा उनके सम्पूर्ण ही परिवर्तित कर दिया। महान मौर्य सम्राट अशोक के मन औेर मस्तिष्क को इस धर्म ने पूर्णतः बदल दिया तथा उसे साम्राज्यवादी क्रियाओं से विमुख कर अहिंसात्मक और करूणाजनित कार्यो की ओर संलग्न किया। यह बौद्ध धर्म की ही देन

थी कि उस जैसे महान सम्राट ने युद्ध और संघर्ष के मार्ग को सर्वदा के लिए त्यागकर अहिंसास और शान्ति को अपनाया। उसके बाद अनेक सम्राटों ने बौद्ध की अहिंसा और दया की शिक्षा का अनुसरण किया।

☐ दर्शन के क्षेत्र में बौद्ध आचार्य नागार्जुन के शून्यवाद का प्रभाव सम्भवतः शंकराचार्य के मायावाद पर पड़ा। दोनों विद्वानों की कुछ समताओं के आधार पर कुछ विचारकों ने शंकराचार्य पर प्रच्छत्र-बुद्ध होने का आरोप लगाया। बौद्धिक और प्रारम्भिक हिन्दू धर्मों में आध्य के रूप में मांस को ग्रहण किया जाता था। इस निमित्त विभिन्न पशुओं और पक्षियों का बध किया जाता था। बौद्ध धर्म में मांसाहार का निषेध है। विदेशों में भी बौद्ध धर्म के प्रभाव से हिंसा का परित्याग किया गया और निरामिष आहार को अपेक्षाकृत उत्तम माना गया। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने समाज के सभी पक्षों को अपने सिद्धान्तों एवं आदर्शों से प्रभावित कर एक नवीन चिन्तनपरक धर्म प्रदान किया, जो पूर्णतः मानवतावादी था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य/असत्य दर्शाइये।

1. बौद्ध धर्म जात-पांत पर विश्वास करता था (सत्य/असत्य)
2. नागार्जुन बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा का अनुयायी था (सत्य/असत्य)
3. बौद्ध धर्म में अहिंसा के प्रति आग्रह मिलता है (सत्य/असत्य)
4. बौद्ध धर्म का विस्तार केवल भारत के भीतर ही रहा (सत्य/असत्य)

12.7 पतन के कारण

जिस तरह से भारत में बौद्ध धर्म का उद्भव एवं विकास हुआ लेकिन उसका प्रचार बहुत अधिक नहीं हो सका था, जो कुछ हुआ भी था उसकी जड़े बहुत अधिक प्रभावित नहीं कर सकी थी। इसी कारण शीघ्र ही इसका पतन भारत में प्रारम्भ हो गया। इसके पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं-

☐ सातवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच का काल बौद्ध धम्र के पतन काल हैं, इसके पतन के सबसे बड़े दोषी बौद्ध ही थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के अवतारवाद, मूर्तिपूजा और मन्दिरों को अपना लिया। महात्मा बुद्ध, कृष्ण की भाँति अपने भक्तों के उद्धारक बन गये हिन्दू अवतारों की भाँति बोधिसत्वों तथा तारा आदि बौद्ध देवियों की पूजा होने लगी।

☐ हिन्दू आचार्यों, विशेष रूप से शंकराचार्य के बौद्ध सिद्धान्तों का खण्डन किया, कुमारिल और रामानुज ने हिन्दू धर्म की नवीन व्याख्यायें करके उसे अपूर्व लोकप्रियता दी। बौद्ध संघ में स्त्रियों के भिक्षुणी बनने से वहाँ के भिक्षुओं का जीवन-यापन और पवित्र नहीं रह सका, इसलिए बौद्ध धर्म के प्रति साधारण जनता की रूचि

घटने लगी। चरित्रहीनता के इस प्रकार के जीवन का बौद्ध धर्म में कोई स्थान नहीं था किन्तु बौद्ध संघ इसी आचरण हीनता के मार्ग से अग्रसार हो रहा था जिससे उसका पतन प्रारम्भ हो गया।

☐ बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय आपस में संघर्ष करने लगे। हीनयान और महायान सम्प्रदाय एक दूसरे से तीव्रतापूवक लड़ रहे थे। इसे बौद्ध धर्म का प्रभिमान घटा। विभिन्न समयों में होने वाले बौद्ध संगीतियों ने उपर्युक्त बौद्ध सम्प्रदायों को एक साथ मिलाकर कार्य करने के लिए प्रयास किया किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला।

☐ तन्त्रवाद के विस्तार से बौद्ध धर्म पतन की ओर अग्रसर हुआ। बज्रयान और गुहा समाज के विकास से समय कलंकित हुआ, जिसमें तामसी-विलासी क्रियायें की जाती थीं। साधारण जनता बौद्ध धर्म के इस अधःपतन से असंतुष्ट होकर इसके विरूद्ध हो गई। तान्त्रिक-धार्मिक क्रियाओं के नाम पर विलासी क्रियायें सम्पन्न की जाने लगी, जिससे बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ। बौद्धों ने लोकभाषा (पाली) को छोड़कर संस्कृत में अपने धर्म-ग्रन्थों की रचना शुरू की जिससे वह साधारण जनता से दूर होता गया।

☐ मुसलमान विजेताओं से भी बौद्ध धर्म को आघात लगा तथा देश से बौद्ध मतानुयायी हटने लगे। मुसलमानों ने धन की लोलुपता के कारण अनेक बौद्ध मठों और विहारों को तोड़ दिया जिससे उसके अनुयायी इधर-उधर जाने लगे।

☐ वस्तुतः बौद्धों के अनीश्वरवाद, अनात्मवाद तथा हिन्दू धर्म के प्रति विद्रोह भावना के कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव भारत से धीरे-धीरे कम होने लगा। बौद्ध संघ, मठ, विहार, संघाराम जैसे पवित्र स्थान भिक्षु - भिक्षुणियों के अनाचार के करण अपवित्र होने लगे, जिससे इस धर्म के प्रति जनता की अरूचि भी बढ़ती गई। बौद्ध धर्म का पतन धीरे-धीरे अनेक तत्वों की वजह प्रारम्भ हो गया और त्वरित गति पतन हो गया।

12.8 सारांश

सातवीं शताब्दी ई0पू0 के आस-पास बौद्ध धर्म पूर्वी एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में फैल गया और इस प्रकार सम्भवतः दुनिया का सबसे बड़ा धर्म बन गया। शताब्दियों तक बौद्ध धर्म को भारत में सम्राटों और व्यापारियों का संरक्षण प्राप्त था परन्तु सातवीं शताब्दी के बाद भारत में बौद्ध धर्म का धीरे-धीरे पतन होने लगा। हालांकि यह पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ। माना जाता है कि बौद्ध धर्म के बजाए हिन्दू धार्मिक संस्थानों को शाही संरक्षण मिलने, बुद्ध के मूल उद्देश्यों से भटक ने और हिन्दू धार्मिक परम्पराओं को अपनाने, नये हिन्दू धार्मिक पंथों के उचित होने आदि के कारण भारत में बौद्ध धम्र धीरे-धीरे समाप्त होता गया। इसमें हमने उन परिस्थितियों पर विचार किया है, जिसमें बौद्ध धर्म का विकास हुआ है।

12.9 शब्दावली

1. प्रवारण (पवांरग)-वर्षावास में भिक्षुओं के नियम
2. पातिमोक्ख-बौद्ध भिक्षुओं के निमित्त विधि निषेधों का संग्रह
3. कम्मवाचा-प्रस्ताव को प्रस्तुत करना 'अनुसावन'
4. उपसम्पदा-बौद्ध धर्म में प्रविष्ट
5. प्रवज्या-धर्म में दीक्षित होने को प्रवज्या कहते हैं।
6. उपोसथ-भिक्षुजन द्वारा 15वें दिन पूर्णिमा तथा अमावस्या की शाम को अपने कुकर्मों की स्वीकारोक्ति हेतु होने वाली सभा।

12.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 12.6 के प्रश्न संख्या 1 का उत्तर- असत्य

इकाई 12.6 के प्रश्न संख्या 2 का उत्तर- असत्य

इकाई 12.6 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर- सत्य

इकाई 12.6 के प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- असत्य

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रीज-डेविड्स, टी0 डब्ल्यू0, बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1926
2. मेहता, रतिलाल, प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया, (पुनर्मुद्रित) दिल्ली, 1984
3. एस0, राधाकृष्णन, इण्डियन फिलासफी खण्ड-एक, लन्दन, 1975
4. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1976
5. सरकार, एच0, स्टडीज इन अर्ली बुद्धिस्त आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 1966
6. सेकेल, डीट्रिच, दि आर्ट ऑफ बुद्धिज्म (ऑर्ट ऑफ दि वर्ल्ड सीरीज), लन्दन, 1964

12.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

सेकेल, डीट्रिच, दि आर्ट ऑफ बुद्धिज्म (ऑर्ट ऑफ दि वर्ल्ड सीरीज), लन्दन, 1964

रीज-डेविड्स, टी0 डब्ल्यू0, बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1926

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बौद्धधर्म के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डालिए।

2. बौद्धधर्म के हीनयान-महायान के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
3. बौद्धधर्म ब्राह्मण धर्म के कर्मकाण्डों की बलवती प्रक्रिया थी। स्पष्ट कीजिए।
4. बौद्धधर्म दर्शन के प्रमुख लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
5. बुद्ध के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

इकाई तेरह

मौर्य साम्राज्य:चन्द्रगुप्त मौर्य ,बिन्दुसार तथा अशोक एवं उसका धम्म

13 .1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13 .3 चन्द्रगुप्त मौर्य का परिचय
  13.3.2 चन्द्रगुप्त मौर्य
    13 .3.2.1 चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य निर्माण
    13 .3.2.2 चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ
    13 .3.2.3 नन्दो का उन्मूलन
    13.3.2.4. सेल्यूकश के विरूद्ध युद्ध
    13 .3.2.5. पश्चिमी भारत की विजय

13 .3.2.6. दक्षिण भारत

13 .3.2.7. साम्राज्य विस्तार

13 .3.3 बिन्दुसार (अमित्रघात) 298 ई0पू0 273 ई0पू0 तक

13 .3.4 अशोक प्रियदर्शी (273-236 ई0पू0)

13 .3.4.1 अशोक का प्रारम्भिक जीवन

13 .3.4.2 कलिंग का युद्ध तथा उसके परिणाम

13.3.4.3 अशोक का साम्राज्य विस्तार

13 .3.4.4. मौर्य शासन प्रबन्ध

13 .3.4.5. अमात्य, मन्त्री तथा परिषद

13 .3.4.6. केन्द्रीय अधिकारी तंत्र

13.3.4.7. प्रान्तीय शासन

13 .3.4.8. मण्डल, जिला एवं नगर प्रशासन

13 .3.4.9. ग्राम प्रशासन

13 .3.4.10. न्याय प्रशासन

13 .3.4.11. गुप्तचर विभाग

13.3.4.12. भूमि तथा राजस्व

13 .3.4.13 सेना का प्रबन्ध

13.3.4.14. लोकोपकारी कार्य

13 .3.4.15. अशोक का धम्म

13 .4 सारांश

13 .5 तकनीकी शब्दावली

13 .6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

13 .7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13 .8 सहायक उपयोगी पाठ्य, सामग्री

13 .9 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई0पू0 में प्राचीन भारत में मगध साम्राज्य के उत्कर्ष की एक महत्पपूर्ण चरण है। मगध साम्राज्य को संगठित करने में हर्यकवंश के शासक विम्विसार, अजातशत्रु, एवं उद्यन के योगदान का अध्ययन हम कर चुके है। हर्यक वंश के उपरान्त शिशुनाग वंश एवं नन्द वंश के शासको ने मगध पर शासन किया और उसकी शक्ति एवं साम्राज्य विस्तार में अहम् योगदान दिया।

मगध पर नन्दो के शासन काल के समय में यवन शासक सिकन्दर महान का भारत पर आगमन हुआ। लेकिन उसके सैनिको ने जब नन्द वंश की शक्ति के बारे में सुना तो उन्होने अपने हथियार डाल दिये और मगध पर आक्रमण करने से इन्कार कर दिया। अतः सिकन्दर को वापस जाना पड़ा।

सिकन्दर महान के वापस जाते ही पश्मिोत्तर भारत पर चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरू कौटिल्य की सहायता से सिकन्दर द्वारा विजित क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया और उसने सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया और इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इस पाठ में मौर्य साम्राज्य का राजनैतिक एवं प्रशासनिक इतिहास प्रस्तुत है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य चन्द्रगुप्त मौर्य बिन्दुसार एवं अशोक के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना है। इस इकाई में अध्ययन के उपरान्त आय अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेगे-

(क) चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार एवं शासन व्यवस्था।
(ख) बिन्दुसार की प्रशासनिक नीतियाँ।
(ग) अशोक के प्रारम्भिक जीवन एवं उसके साम्राज्य विस्तार।

13.3 मौर्य वंश का परिचय

भारतीय इतिहास के अनेक महान वंशों में मौर्य वंश एक है। मौर्य वंश की उत्पत्ति के विषय में ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में परस्पर विरोधी विवरण मिलते हैं। फलस्वरुप उसकी जाति का निर्धारण भारतीय इतिहास की एक जटिल समस्या है। ब्राह्मण ग्रन्थ उसे एक स्वर में शूद्र अथवा निम्न कुल से सम्बन्धित कहते हैं जबकि बौद्ध तथा जैन ग्रन्थ उसे क्षत्रिय सिद्ध करते हैं।

ब्राह्मण साहित्य में सर्वप्रथम पुराणों का उल्लेख किया जा सकता है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि शैश नांग वंशी शासक महानन्दी के पश्चात शूद्र योनि के राजा पृथ्वी पर शासन करेंगे। कुछ विद्वानों ने इस कथन के आधार पर मौर्यों को शूद्र सिद्ध करने का प्रयास किया है। विष्णु पुराण में एक भाष्यकार श्रीधर स्वामी ने

चन्द्रगुप्त को नन्दराज की पत्नी 'मुरा' से उत्पन्न बताया है उनके अनुसार चन्द्रगुप्त 'मुरा' से उत्पन्न होने के कारण मौर्य कहा गया। विशाखदत्त का मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त को नन्दराज का पुत्र माना गया है। इस ग्रन्थ में चन्द्रगुप्त को 'वृषल' तथा 'कुलहीन' कहा गया है। शूद्र उत्पत्ति के समर्थक विद्वानों ने इन दोनों शब्दों को शूद्र जाति के अर्थ में ग्रहण किया है।

यदि हम सावधानी पूर्वक उपर्युक्त मतों की समीक्षा करें तो ऐसा प्रतीत होगा कि वे ठोस तथ्यों पर कम आधारित है। जहां तक पुराणों का प्रश्न है, वे चन्द्रगुप्त की जाति के विषय में बिल्कुल मौन हैं किन्तु एक स्वर में नन्दों को शूद्र कहते हैं। वह बताते हैं कि द्विजर्षभ (श्रेष्ठ ब्राह्मण) कौटिल्य सभी नन्दों को मारकर चन्द्रगुप्त को सिंहासनासीन करेगा। विष्णु पुराण का कथन केवल नन्दों पर ही लागू होता है न कि बाद के सभी राजवंशों पर। मुद्राराक्षस का साक्ष्य भी मौर्यों की जाति के विषय में प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

ब्राह्मण परम्परा के विपरीत बौद्ध ग्रन्थों का प्रमाण मौर्यों को क्षत्रिय जाति से सम्बन्धित करता है। यहां चन्द्रगुप्त 'मोरिय' क्षत्रिय वंश का कहा गया है। ये 'मोरिय' कपिलवस्तु के शाक्योंं की ही एक शाखा थे। जिस समय कोशल नरेश विडूडूभ ने कपिलवस्तु पर आक्रमण किया, शाक्य परिवार के कुछ लोग कोशल नरेश के अत्याचारों से बचने के लिए हिमालय के एक सुरक्षित क्षेत्र में आकर बस गये। यह स्थान मोरों के लिए प्रसिद्ध था। अतः यहां के निवासी मोरिय कहे गये।

13.3.1 चन्द्रगुप्त मौर्य

अनेक बौद्ध ग्रन्थ बिना किसी सन्देह के चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय घोषित करते हैं। महावोधिवंश उसे राजकुल से सम्बन्धित बताता है, जो मोरिय नगर में उत्पन्न हुआ था। महावंश में चन्द्रगुप्त को 'मोरिय' नामक क्षत्रिय वंश में उत्पन्न कहा गया है। महापरिनिब्बान सुत्त में मौर्यों को पिप्लाविन का शासक तथा क्षत्रिय वंश का कहा गया है। यह प्राचीनतम बौद्ध ग्रन्थ है अतः अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय माना जा सकता है।

हेमचन्द्र कृत परिशिष्टपर्वन में चन्द्रगुप्त को मयूर पोषकों के ग्राम के मुखिया की पुत्री का पुत्र बताया गया है। इस प्रकार जैन एवं बौद्ध दोनों ही साक्ष्य मौर्यों को 'मयूर' से सम्बन्धित करते हैं। इस मत की पुष्टि अशोक लौरियानन्दनगढ़ के स्तम्भ के नीचे के भाग में उत्कीर्ण मयूर की आकृति से भी हो जाती है। अतः उपरोक्त विवरण से निष्कर्ष निकलता है कि मौर्य कौन थे इस विषय पर निश्चित मत देना कठिन है। लेकिन विविध स्रोतों के आधार बौद्ध एवं जैन ग्रन्थ सत्यता के अधिक निकट दिखाई देते हैं।

13.3.2.1 चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य निर्माण

चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन की जानकारी सीमित है। इसके प्रारम्भिक जीवन के ज्ञान के लिए हमें मुख्यतः बौद्ध स्रोतों पर ही निर्भर करना पड़ता है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार चन्द्रगुप्त का पिता मोरिय नगर का

प्रमुख था। जब वह अपनी माता के गर्भ में था तथी उसके पिता की किसी सीमान्त युद्ध में मृत्यु हो गयी। पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ। जन्म के साथ ही वह एक गोपालक को समर्पित कर दिया गया। गोपालक ने गोशाला में अपने पुत्र के समान उसका लालन-पालन किया। बड़ा होने पर उसने एक शिकारी के हाथों बेंच दिया। शिकारी के ग्राम में वह बड़ा हुआ तथा उसे पशुओं की देख भाल के लिए रख दिया। वह बालकों की मण्डली का राजा बनकर रहता था और उनके आपसी झगड़ों का फैसला किया करता था। इसी प्रकार एक दिन जब वह ‘राजकलिभ’ नामक खेल में व्यस्त था चाणक्य उधर से जा निकला। अपने सूक्ष्म दृष्टि से उसने बालक के भावी गुणों का अनुमान लगा लिया और उसने शिकारीसे 1000 कार्षापण में चन्द्रगुप्त को खरीद लिया।

चन्द्रगुप्त के साथ चाणक्य तक्षशिला आया। तक्षशिला उस समय विद्या का प्रमुख केन्द्र था और चाणक्य वहां का आचार्य था। उसने चन्द्रगुप्त को सभी कलाओं तथा विद्याओं की विधिवत शिक्षा दी। शीघ्र ही चन्द्रगुप्त धनुर्विद्या, युद्ध विद्या आदि से पारंगत हो गया।

13.3.2.2 चन्द्रगुप्त की उपलब्धियाँ

चाणक्य ने जिस कार्य के लिए चन्द्रगुप्त को तैयार किया था उसके दो उद्देश्य थे-

(1) यूनानियों के विदेशी शासन से देश को मुक्त कराना।

(2) नन्दों के घृणित एवं अत्याचार पूर्ण शासन की समाप्ति करना।

सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य ने पंजाब तथा सिन्ध को विदेशियों की दासता से मुक्त कराया था। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने विदेशी शासन की निन्दा की है तथा उसे देश एवं धर्म के लिए अभिशाप कहा है। चन्द्रगुप्त का सौभाग्य था कि पंजाब एवं सिन्ध की राजनीतिक परिस्थितियाँ उसके पूर्णतः अनुकूल थीं। सिकन्दर के प्रस्थान के साथ ही इन प्रदेशों में विद्रोह उठ खड़े हुए तथा अनेक यूनानी क्षत्रप मौत के घाट उतार दिये गये। 325 ई.पू. के लगभग ऊपरी सिन्धुघाटी के प्रमुख यूनानी क्षत्रप फिलिप की हत्या कर दी गयी। 323 ई.पू. में सिकन्दर की मृत्यु के बाद इन प्रदेशों में घोर अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी जिसने चन्द्रगुप्त का कार्य सुगम कर दिया। जस्टिन लिखता है कि ”सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात भारत ने अपनी गर्दन से दासता का जुआ उतार फेंका तथा अपने गर्वनरों की हत्या कर दी। इस स्वतंत्रता का जन्मदाता सान्ड्रोकोट्स (चन्द्रगुप्त) था।“

13.3.2.3 नन्दों का उन्मूलन

पंजाब एवं सिन्ध में अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के बाद चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य मगध साम्राज्य की ओर अग्रसर हुए। मगध में इस समय धननन्द का शासन था। अपने असीम सैनिक साधनों तथा सम्पत्ति के बावजूद वह जनता में लोकप्रियता अर्जित कर सकने मे असफल रहा और यही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता थी। उसने एक बार ‘चाणक्य’ को भी अपमानित किया था जिससे क्रुद्ध होकर उसने नन्दों को समूल नष्ट करने की

प्रतिज्ञा की थी। प्लूटार्क के विवरण से पता चलता है कि नन्दों के विरुद्ध सहायता याचना के उद्देश्य से चन्द्रगुप्त पंजाब में सिकन्दर से मिला।

दुर्भाग्यवश हमें किसी भी साक्ष्य से नन्दों तथा मौर्यों के मध्य हुए इस युद्ध का विवरण नहीं मिलता। बौद्ध तथा जैन स्रोतों से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त ने नन्द साम्राज्य के केन्द्रीय भाग पर आक्रमण किया लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली और उसकी सेना नष्ट हो गयी। उसे अपनी भूल ज्ञात हुई अतः उसने दूसरी बार सीमान्त प्रदेशों की विजय करते हुए नन्दों की राजधानी पर धावा बोला। मिलिन्द पन्हों के अनुसार युद्ध बड़ा ही घमासान रहा। अन्ततः धननन्द को मार डाला गया और चन्द्रगुप्त का मगध साम्राज्य पर अधिकार हो गया।

13.3.2.4 सेल्यूकस के विरुद्ध युद्ध

सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् 305 ई.पू. में सेल्यूकस भारत पर चढ़ाई की तथा सिन्धु तक आ पहुंचा। परन्तु इस समय का भारत सिकन्दर कालीन भारत से पूर्णतयः भिन्न था अतः सेल्यूकस को छोटे-छोटे प्रदेशों के सरदारों के स्थान पर संगठित भारत के महान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से युद्ध करना था। अप्पिआनुस लिखता है कि 'सिन्धु नदी पार करके सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से युद्ध किया। कालान्तर में दोनों में सन्धि हो गयी तथा एक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। सन्धि की शर्तें निम्नवत हैं-

(1) सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को आरकोसिया (कान्धार) पेरोपनिसडाई (काबुल) के प्रान्त तथा एरिया (हेरात) एवं जेट्रोसिया के क्षत्रपियों को कुछ भाग दिये।

(2) चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 भारतीय हाथी उपहार में दिये।

(3) दोनों नरेशों के बीच एक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार सेल्यूकस ने अपनी एक पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया परन्तु उपलब्ध प्रमाणों से इस प्रकार की कोई सूचना सिद्ध नहीं है।

(4) सेल्यूकस ने मेगस्थनीज नामक अपना एक दूत चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा। वह बहुत दिनों तक पाटलिपुत्र में रहा तथा भारत का उसने इण्डिका नामक एक पुस्तक की रचना की।

चन्द्रगुप्त की इस महत्वपूर्ण सफलता से उसकी साम्राज्य सीमा का अतिक्रमण कर पारसीक साम्राज्य की सीमा का स्पर्श करने लगा तथा उसके अन्तर्गत अफगानिस्तान का एक बड़ा भाग भी सम्मिलित हो गया।

13.3.2.5 पश्चिमी भारत की विजय

शक महाक्षत्रप रूद्रदामन के गिरिनार अभिलेख (150 ई.) से इस बात की सूचना मिलती है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमी भारत में सुराष्ट्र तक का प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत कर लिया। इस

अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस प्रदेश में पुण्यगुप्त वैश्य चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल था और उसने सुदर्शन नामक झील का निर्माण करवाया।

13.3.2.6 दक्षिण भारत

दक्षित भारत में कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश के कई स्थानों से अशोक के अभिलेख मिल हैं जैसे जटिंग रामेश्वर, सिद्धपुर, ब्रह्मगिरि, गोविमठ, मास्की तथा गूटी (आन्ध्र प्रदेश के करनूल में स्थित)। अशोक स्वयं अपने अभिलेखों में चोल, पाण्डयं, सत्तियपुत्त तथा केरल पुत्र जातियों का उल्लेख करता है। उसके 13वें शिलालेख से ज्ञात होता है दक्षिण में उसने केवल कलिंग विजय की थी जिसके पश्चात उसने युद्ध कार्य बिल्कुल बन्द कर दिया। ऐसी स्थिति में दक्षिण की विजय का श्रेय चन्द्रगुप्त या बिन्दुसार को देना पड़ेगा। बिन्दूसार की विजय अत्यन्त संदिग्ध है अतः मानना तर्क संगत है कि चन्द्रगुप्त ने ही इन प्रदेशों को विजित किया।

13.3.2.7 साम्राज्य विस्तार

इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य सम्पूर्ण भारत में फैल गया। प्लूटार्क ने लिखा है कि ‘उसने छः लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत को रौंद डाला और उस पर अधिकार कर लिया। जस्टिन के विवरण से भी पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत उसके अधिकार में था। मगध साम्राज्य के उत्कर्ष की जो परम्परा बिम्बिसार के समय में प्रारम्भ हुई चन्द्रगुप्त के समय में वह अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी। उसका साम्राज्य विस्तार उत्तर में ईरान की सीमा से लेकर दक्षिण में वर्तमान उत्तरी कर्नाटक तक विस्तृत था पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में सुराष्ट्र तक सम्पूर्ण प्रदेश
उसके साम्राज्य के अधीन था।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये-

(क) नन्द वंश।

(ख) सेल्यूकश।

(ग) चन्द्रगुप्त मौर्य प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख कीजिए।

(घ) चन्दगुप्त मौर्य के साम्राज्य विस्तार पर टिप्पणी लिखिए।

13.3.3 बिन्दुसार ‘अमित्र घात’

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। बिन्दुसार के जीवन तथा उपलब्धियों के विषय में हमारा ज्ञान अत्यल्प है। उसकी महानता इस तथ्य में निहित है कि उसने अपने पिता से जो विशाल साम्राज्य प्राप्त किया था, उसे अक्षुण्ण बनाये रखा।

जैन परम्परा के अनुसार बिन्दुसार की माता का नाम दर्धटा मिलता है। यूनानी लेखक ने उसे ‘अमित्रोकेडीज’ कहा है जिसका संस्कृत रूपान्तर ‘अमित्रघात’ (शत्रुओं का नाश करने वाला) होता है। यह उसकी उपाधि थी। जैन ग्रन्थ उसे सिंहासन कहते हैं। इन उपाधियों से स्पष्ट है कि वह कोई दुर्बल या विलासीशासक नहीं था। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने बिन्दुसार की उपलब्धियों का इस प्रकार विवरण दिया है-उसने छः नगरों को नष्ट कर पूर्वी एवं पश्चिमी समुन्द्रों के बीच के सम्पूर्ण भाग पर अधिकार कर लिया। दिव्यावदान तक्षशिला में होने वाले विद्रोह का वर्णन करता है जिसको दबाने के लिये बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को भेजा था। अशोक ने उदारतापूर्ण नीति का अनुसरण करते हुए वहां शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित की थी।

बिन्दुसार के समय में भी भारत का पश्चिमी यूनानी राज्यों के साथ मैत्री सम्बन्ध कायम रहा। स्ट्रैबो के अनुसार सीरिया के राजा एन्टियोकस ने डाइमेकस नामक अपना एक राजदूत बिन्दुसार की राज्यसभा में भेजा था। यह मेगस्थनीज के स्थान पर आया था। प्लिनी बताता है कि मिस्र के राजा टालमी द्वितीय फिला डेल्फस (285-247 ई.पू.) ने ‘डायोनिसस’ नामक एक राजदूत को मौर्य दरबार में भेजा। एथेनियस नामक एक अन्य यूनानी लेखक ने बिन्दुसार तथा सीरिया के राजा एन्टियोकस के बीच एक मैत्री पूर्ण पत्र-व्यवहार का विवरण दिया है जिसमें भारतीय शासक ने सीरियाई नरेश से तीन चीजों की मांग की थी-मीठी मदिरा, सूखी अन्जीर व एक दार्शनिक (सोफिस्ट)। सीरियाई सम्राट ने प्रथम दो वस्तुएं भिजवाई परन्तु तीसरी वस्तु अर्थात् दार्शनिक के सम्बन्ध में कहा कि यूनानी दार्शनिकों का विक्रय नहीं किया जा सकता।

प्रशासन के क्षेत्र में बिन्दुसार ने अपने पिता की नीति का अनुगमन किया। अपने साम्राज्य को उसने प्रान्तों में विभाजित किया तथा प्रत्येक प्रान्त के ‘कुमार’ (उपराजा) नियुक्त किये। प्रशासनिक कार्यों के लिए अनेक महापात्रों की भी नियुक्ति की गयी। उसके शासन की विस्तृत सूचना नहीं मिलती। सम्भवतः उसने 25 वर्षों तक राज्य किया और उसकी मृत्यु 273 ई.पू. के लगभग हो गयी।

13.3.4 अशोक ‘प्रियदर्शी

बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् उसका सुयोग्य पुत्र अशोक विशाल मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। अशोक विश्व इतिहास के उन महानतम सम्राटों में अपना सर्वोपरि स्थान रखता है, जिन्होंने अपने युग पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी तथा भावी पीढ़ियाँ जिनका नाम अत्यन्त श्रद्धा एवं कृतज्ञता के साथ स्मरण करती है।

13.3.4.1 अशोक का प्रारम्भिक जीवन

यद्यपि अशोक के बहुत से अभिलेख प्राप्त हुए हैं तथापि हमें उसके प्रारम्भिक जीवन के लिए मुख्यतः बौद्ध साक्ष्यों, दिव्यावदान तथा सिंहली अनुश्रुतियों पर ही निर्भर करना पड़ता है। इनसे ऐसा पता चलता है कि

अशोक अपने पिता के शासन काल में अवान्ति (उज्जयिनी) का उपराजा था। बिन्दुसार की बीमारी का समाचार सुनकर वह पाटिलपुत्र आया। सिंहली अनुश्रुतियों से पता चलता है कि उसने 99 भाइयों की हत्या कर राजसिंहासन प्राप्त किया। परन्तु उत्तराधिकार के इस युद्ध का समर्थन स्वतंत्र प्रमाणों से नहीं होता है। बौद्ध ग्रन्थ अशोक को बौद्ध होने से पूर्व के जीवन को हिंसा, अत्याचार तथा निर्दयता से युक्त बताते हैं और उसे 'चण्ड अशोक' कहते हैं।

दिव्यावदान में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी मिलता है जो 'चम्पा' के एक ब्राह्मण की कन्या थी। दक्षिणी परम्पराओं में उसे धर्मा कहा गया है जो प्रधान रानी थी। कुछ विद्वान उसे सेल्यूकस की कन्या बताते हैं परन्तु इस विषय में निश्चित कुछ भी कहना कठिन है। सिंहली परम्पराओं से ज्ञात होता है कि उज्जयिनी जाते हुए अशोक विदिशा में रुका, जहां उसने एक श्रेष्ठी की पुत्री 'देवी' से विवाह कर लिया। महावोधिवंश में उसका नाम 'वेदिश महादेवी' मिलता है तथा उसे 'शाक्य' जाति का बताया गया है। उसी से अशोक के दो सन्तान महेन्द्र एवं संघमित्रा का जन्म हुआ। दिव्यावदान में उसकी पत्नी तिष्यरक्षिता मिलता है। उसके लेख में केवल उसकी पत्नी 'कारूवाकि' का ही नाम है जो 'तीवर' की माता थी। दिव्यावदान में उसके दो भाईयों सुशीम तथा विगत शोक नामक दो अन्य भाईयों का उल्लेख मिलता है। कुछ कथाओं के अनुसार बिन्दुसार अशोक को राजा न बनाकर सुशीम को राजगद्दी देना चाहता था। बौद्ध परम्पराएं इस बात की पुष्टि करती हैं कि अशोक ने बिन्दूसार की मृत्यु के बाद अमात्यों की सहायता से राजगद्दी हथिया लिया तथा उत्तराधिकार के युद्ध में अन्य सभी राजकुमारों की हत्या कर दी। राजगद्दी प्राप्त होने के पश्चात् अशोक को अपनी आन्तरिक स्थिति सुदृढ़ करने में चार वर्षों का समय लग गया। इसी कारण राज्यारोहण के चार वर्षों बाद (269 ई.पूर्व में) अशोक का विधिवत राज्याभिषेक हुआ।

अशोक 273 ई.पू. के लगभग मगध के सिंहासन पर बैठा। उसके अभिलेखों में सर्वत्र उसे देवानांपिय, देवानांपियदासी (देवताओं के प्रिय) तथा 'राजा' आदि की उपाधियों से सम्बोधित किया गया। मास्की तथा गुर्जरा के लेखों में उसका नाम 'अशोक' मिलता है। पुराणों में उसे अशोकवर्धन कहा गया।

13.3.4.2 कलिंग का युद्ध तथा उसके परिणाम

अपने राज्याभिषेक के बाद अशोक ने अपने पितामह को दिग्विजय की नीति को जारी रखा। इस समय कलिंग का राज्य मगध साम्राज्य की प्रभुसत्ता को चुनौती दे रहा था जो अशोक जैसे महत्वाकांक्षी शासक के लिए असह्य था। रोमिला थापर का विचार है कि कलिंग उस समय व्यापारिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य था तथा अशोक की दृष्टि उसी समृद्ध व्यापार पर भी थी। अतः अपने अभिषेक के आठवें वर्ष (261 ई.पू.) उसने कलिंग के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया।

कलिंग का प्राचीन राज्य दक्षिणी उड़ीसा में स्थित था। अशोक के तेरहवें अभिलेख कलिंग युद्ध के परिणामों के बारे में सूचना मिलती है कि युद्ध बड़ा भयंकर था जिसमें भीषण रक्तपात तथा नरसंहार की घटनाएं हुई। अंततः अशोक इस राज्य की अपने साम्राज्य में मिलाने में सफल रहा। तेरहवें शिलालेख में इस युद्ध के भयानक परिणामों का उल्लेख मिलता है-'इसमें एक लाख पचास हजार व्यक्ति बन्दी बनाकर निर्वासित कर दिये, एक लाख लोगों की हत्या की गयी तथा इससे कई गुना अधिक मर गये।'

कलिंग युद्ध की हृदय विदारक हिंसा एवं नरसंहार की घटनाओं ने अशोक के हृदय स्थल को स्पर्श किया और उनके दूरगामी परिणाम हुए। अतः इस युद्ध के पश्चात् नये युग का सूत्र पात हुआ, यह युग था शान्ति, सामाजिक प्रगति और धार्मिक प्रचार का। यहीं से सैन्य विजय एवं दिग्विजय का युग समाप्त हुआ तथा आध्यात्मिक विजय और धम्म विजय का युग प्रारम्भ हुआ।

13.3.4.3 अशोक का साम्राज्य विस्तार

अशोक के अभिलेखों के आधार पर हम निश्चित रूप से उसकी साम्राज्य सीमा का निर्धारण कर सकते हैं। उत्तर पश्चिम भारत में दो स्थानों से उसके शिलालेख प्राप्त हुए हैं-(1) पेशावर जिले में स्थित शाहवाजगढ़ी तथा हजारा जिले में स्थित मानसेहरा से इसके अतिरिक्त कन्धार कन्दाहर के समीप शेखुना तथा जलालाबाद के निकट काबुल नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित 'लघमान' से अरामेईक लिपि के लेख मिले हैं। इन अभिलेखों के प्राप्ति स्थलों से यह स्पष्ट होता है कि उसके साम्राज्य में हिन्दुकश, एरिया (हेरात) आरकोसिया (कन्धार) तथा जेड्रोसिया सम्मिलित थे। इन प्रदेशों को चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्युकस से प्राप्त किया था। हुएनसांग कपिशा में अशोक के स्तूप का उल्लेख करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अशोक के साम्राज्य में अफगानिस्तान का एक बड़ा भाग सम्मिलित था। उत्तर भारत में कालसी (देहरादून जिले में) उसका शिलालेख मिला है। रुम्मिन्देई तथा निग्लीवा के स्तम्भ लेखों से पता चलता है कि उत्तर में हिमालय क्षेत्र का एक बड़ा भाग (नेपाल की तराई भी उसके साम्राज्य का अंग था) दक्षिण की ओर वर्तमान कर्नाटक राज्य के ब्रह्मगिरि (चित्तलदुर्ग जिला) मास्की (रायचूर जिला) जटिंग रामेश्वर (चित्तलदुर्ग जनपद) सिद्धपुर (ब्रह्मगिरि से एक मील पश्चिम में) से उसके शिलालेख मिलते हैं। इसमें उसके साम्राज्य की दक्षिणी सीमा कर्नाटक राज्य तक जाती थी द्वितीय शिलालेख में अशोक अपनी दक्षिणी सीमा पर स्थित चोल, पाण्डय, सतीयपुत्त, केरलपुत्त तथा ताम्रपार्णि नाम बताता है। ये सभी तमिल राज्य में थे तथा साम्राज्य से बाहर थे। इससे स्पष्ट है कि सुदूर दक्षिण के भाग को छोड़कर सम्पूर्ण भारत अशोक के अधिकार में था।

तेरहवें शिलालेख में अशोक के राज्यों की सूची इस प्रकार मिलती है-योन, कम्बोज, गन्धार, रठिक, भोजक, पितिनिक, आन्ध्र, नामक, नामपम्पि पारिमिदस आदि। इनमें योन अथवा यवन, कम्बोज और गन्धार प्रदेश

उत्तरी पश्चिमी सीमा पर स्थित थे। भण्डारकर महोदय ने इन्हें काबुल तथा सिन्ध के मध्य स्थित बताते हैं। भोज बरार तथा कोंकण में तथा रठिक या राष्ट्रिक, महाराष्ट्र में निवास करते थे। पितनिक पैठन में तथा आन्ध्र राज्य कृष्णा एवं गोदावरी राज्य में स्थित था। नामक या नामपमिश राज्य पश्चिमी तट तथा उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त के बीच कहीं बसा था। परिमिदस के विषय में विवाद है। रायचौधरी इसे विन्धय क्षेत्र में तथा भण्डारकर इसे बंगाल के उत्तरी पूर्वी भाग में स्थित बताते हैं।

पश्चिम में काठियावाद में जूनागढ़ के समीप गिरिनार पहाड़ी तथा उसके दक्षिण में महाराष्ट्र के थाना जिले के सोपरा नामक स्थान से अशोक के शिलालेख मिलते हैं।

उड़ीसा के दो स्थानों धौली और जौगढ़ से भी उसके शिलालेख मिलते हैं कलिंग राज्य को अशोक ने अपने अभिषेक के आठवें वर्ष जीता था। बंगाल में ताम्रलिपि से प्राप्त स्तूप उसके वहां आधिपत्य की सूचना देता है। हुएनसांग हमें बताता है कि समतट, पुण्ड्रवर्धन, कर्णसुवर्ण आदि में भी अशोक के स्तूप थे। इन सभी अभिलेखों के प्राप्ति स्थानों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका साम्राज्य उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त (अफगानिस्तान) से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक तथा पश्चिम में काठियावाड़ से लेकरी पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत था। कश्मीरी कवि कल्हण की राजतरंगिणी से पता चलता है कि कश्मीर पर भी अशोक का अधिकार था। उसने वहां धर्मारिणी विहार में अशोकेश्वर नामक मन्दिर की स्थापना करवायी थी। कल्हण अशोक को कश्मीर का प्रथम मौर्य शासक बताता है। अतः साम्राज्य की उत्तरी सीमा हिमालय पर्वत तक जाती थी। इस प्रकार वह विशालतम साम्राज्यों में से एक था।

13.3.4.4 मौर्य शासन प्रबन्ध

मौर्य शासकों की शासन व्यवस्था के विषय में कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मेगस्थनीज की इण्डिका के उद्धरणों से महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं। पहली बार कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ही हम राज्य की सस्पष्ट परिभाषा पाते हैं जहां वह इसे सात प्रकृतियों की समाष्टि कहता है। इनमें सम्राट की 'कूटस्थनीय' होती थी। राजा में सभी अधिकार एवं शक्तियां निहित थीं। सम्राट अपनी दैवीय उत्पत्ति में विश्वास नहीं करता था फिर भी वह ईश्वर का प्रिय पात्र समझा जाता था। वह सैनिक, न्यायिक, वैधानिक एवं कार्यकारी मामलों में सर्वोच्च अधिकारी था। वह सेना का सबसे बड़ा सेनापति, न्याय का प्रधान न्यायाधीश, कानूनों का निर्माता तथा धर्म प्रवर्तक माना जाता था। वह साम्राज्य के सभी महत्वपूर्ण अधिकारियों की नियुक्ति करता था। इस प्रकार वह प्रशासन का मुख्य स्रोत था। मेगस्थनीज हमें बताता है कि वह पूरे दिन नहीं सोता था अपितु निर्णय देने या अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए पूरे दिन राज्य सभा में बैठा रहता था और प्रजा के प्रतिवेदनों को सुना करता था। कौटिल्य का मत है कि 'राजा को प्रजा की शिकायतें सुनने के लिए सदैव सुलभ रहना चाहिए।"

सम्राट राजधानी में रहता था तथा विशाल राजा प्रासाद में निवास करताथा। उसकी राज्यसभा ऐश्वर्य एवं शान-शौकत से परिपूर्ण थी। वह अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान रखता था। वह सदैव सशस्त्र अंग रक्षकों से घिरा रहता था।

इस प्रकार कौटिल्य की व्यवस्था में राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर सम्राट का पूर्ण नियंत्रण था। राज्य के सप्तांग सिद्धान्तों में वह सम्राट (स्वामी) को ही सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। राज्य के शेष छः अंग-अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, बल, मित्र; सम्राट द्वारा ही संचालित होते थे।

13.3.4.5 अमात्य, मन्त्री तथा परिषद

सम्राट अपने कार्यों में अमात्यों, मन्त्रियों तथा अधिकारियों से सहायता प्राप्त करता था। अमात्य या सचिव एक सामान्य संज्ञा थी जिससे राज्य के सभी प्रमुख पदाधिकारियों का बोध होता है। यूनानी लेखक इन्हें 'सभासद तथा निर्धारक' कहते थे। वे सार्वजनिक कार्यों में सम्राट की सहायता करते थे। राजा अपने अमात्यों में से जो सभी प्रकार के आकर्षणों से परे होता था उसे 'मंत्री' नियुक्त किया जाता था। ये मंत्री एक छोटी उपसमिति के सदस्य होते थे जिसे मन्त्रिणः कहा जाता था।

मन्त्रिणः के अतिरिक्त एक नियमित परिषद भी होती थी जिसकी सदस्य संख्या अवश्य ही काफी बड़ी रही होगी क्योंकि कौटिल्य के अनुसार बड़ी मंत्री परिषद रखना राजा के अपने हित में होता था और इससे उसकी 'मन्त्रिशक्ति' बढ़ती थी।

'अर्थशास्त्र' में मन्त्रिपरिषद को एक वैधानिक आवश्यकता बताया गया है। उसके अनुसार 'राजत्व' केवल सबकी सहायता से ही सम्भव है सिर्फ एक पहिया नहीं चला सकती। अतः राजा को सचिवों की नियुक्ति करनी चाहिए और उनसे मन्त्रणा लेनी चाहिए' इसी प्रकार अन्यत्र वर्णित है-राजवृत्ति तीन प्रकार की होती है प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष तथा अनुमेय। मन्त्रिपरिषद के कार्य "अनारबधकार्य को प्रारम्भ करना, आरम्भ कार्य को पूरा करना, पूरे हुए कार्य में सुधार करना तथा राजकीय आदेशों का कठोरता के साथ पालन करवाना" बताया गया है।

13.3.4.6 केन्द्रीय अधिकारी तन्त्र

अर्थशास्त्र में केन्द्रीय प्रशासन का अत्यन्त विस्तृत विवरण मिलता है। शासन की सुविधा के लिए केन्द्रीय प्रशासन अनेक विभागों में बंटा हुआ था। प्रत्येक विभाग को तीर्थ कहा जाता था। अर्थशास्त्र में 18 तीर्थों के प्रधान पदाधिकारियों का उल्लेख हुआ है- (1) मंत्री और पुरोहित (2) समाहर्ता (3) सन्निधाता (4) सेनापति (5) युवराज (6) प्रदेष्टा (7) नायक (8) कर्मान्तिक (9) व्यवहारिक (10) मन्त्रीपरिषदाध्यक्ष (11) दण्डपाल (12) अन्तपाल (13) दुर्गपाल (14) नागरक (15) प्रशास्ता (16) दौवारिक (17) अन्तर्वाशिक तथा (18) आरविक।

इनमें मंत्री तथा पुरोहित प्रधानमंत्री तथा प्रमुख धर्माधिकारी होते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में ये दोनों ही विभाग कौटिल्य के अधीन थे। समाहर्ता राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी था, सन्निधाता राजकीय कोषाधिकरण का प्रमुख अधिकारी होता था। सेनापति युद्धाविभाग का मंत्री था युवराज राजा का उत्तराधिकारी, जो अपने पिता के शासन काल में प्रशासनिक कार्यों में उसकी मदद करता था। प्रदेष्टा फौजदारी न्यायालय का न्यायाधीश, नायक सेना का संचालक, कर्मान्तिक देश के उद्योग धन्धों का प्रधान निरीक्षक आदि विभागों का संचालन किया करते थे।

उपर्युक्त पदाधिकारियों के अतिरिक्त अनेक अन्य पदाधिकारियों का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। इन्हें अध्यक्ष कहा जाता था। अर्थशास्त्र में विभागीय अध्यक्षों तथा उनके कार्यों की एक लम्बी सूची प्राप्त होती है जैसे-पण्याध्यक्ष (वाणिज्य का अध्यक्ष) सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष (बूचड़खाने का अध्यक्ष), गणिकाध्यक्ष (वैश्याओं का निरीक्षक), सीताध्यक्ष (राजकीय कृषि विभाग का अध्यक्ष), आकाराध्यक्ष (खानों का अध्यक्ष), कोष्ठागाराध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष (वन तथा उसकी सम्पदा का अध्यक्ष) आयुधगाराध्यक्ष, शुल्काध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष (कताई-बुनाई का अध्यक्ष), लोहाध्यक्ष (धातु विभाग का अध्यक्ष), लक्षणाध्यक्ष (छापे खाने का अध्यक्ष), सुवर्णाध्यक्ष, गोध्यक्ष (पशुधन विभाग का अध्यक्ष), वीवीताध्यक्ष (चारागाह का अध्यक्ष), मुद्राध्यक्ष (पासपोर्ट विभाग का अध्यक्ष), नवाध्यक्ष (जहाजरानी विभाग का अध्यक्ष), पत्तनाध्यक्ष (बन्दरगाह का अध्यक्ष), संस्थाध्यक्ष (व्यापारिक मार्गों का अध्यक्ष), देवताध्यक्ष (धार्मिक संस्थाओं का अध्यक्ष)।

मौर्यों के केन्द्रीय प्रशासन में अध्यक्षों का महत्वपूर्ण स्थान था तथा उन्हें 1000 पण वार्षिक वेतन मिलता था। मजिस्ट्रेटों के कार्यों का वर्णन करते हुए मेगस्थनीज लिखता है कि ''इनमें से कुछ बाजार, कुछ नगर, कुछ सेना के अधिकारी थे।

13.3.4.7 प्रान्तीय शासन

चन्द्रगुप्त मौर्य का विशाल साम्राज्य अवश्य की प्रान्तों में विभाजित रहा होगा, परन्तु साम्राज्य के प्रान्तों की निश्चित संख्या हमें ज्ञात नहीं है। उनके पौत्र अशोक के अभिलेखों में हमें उसके निम्नलिखित प्रान्तों के नाम ज्ञात होते हैं-

(1) उदीच्य - (उत्तरा पथ)-इसमें पश्चिमोत्तर प्रदेश सम्मिलित था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

(2) अवन्तिरट्ठ - इस प्रदेश की राजधानी उज्जायिनी थी।

(3) कलिंग - यहां की राजधानी तोसलि थी।

(4) दक्षिणापथ - इसमें दक्षिण भारत के प्रदेश शामिल थे इसकी राजधानी 'सुवर्णगिरि' थी।

(5) प्राच्यथा प्रासी - इससे तात्पर्य पूर्वी भारत से है इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

उपर्युक्त प्रान्तों में उत्तरापथ, अवन्तिरट्ठ तथा प्राच्य निश्चित रूप से चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में विद्यमान थे। यह भी असम्भव नहीं कि दक्षिणापथ भी इसके साम्राज्य का ही अंग रहा हो। प्रान्तों के राज्यपाल प्रायः 'राजकुल' से सम्बन्धित 'कुमार' होते थे। किन्तु कभी-कभी योग्य व्यक्तियों को भी राजा बनाया जाता चन्द्रगुप्त मौर्य ने पुण्यगुप्त वैश्य को काठियावाढ़ का राज्यपाल बनाया था।

13.3.4.8 मण्डल, जिला एवं नगर प्रशासन

प्रत्येक प्रान्त में कई मण्डल होते थे जिनकी समता हम आधुनिक कमिश्नरियों से स्थापित कर सकते हैं। अर्थशास्त्र में उल्लिखित 'प्रदेष्टा' नामक अधिकारी मण्डल का प्रधान होता था। अशोक के लेखों में इसी को प्रादेशिक कहा गया है। मण्डल का विभाजन जिलों में होता था। जिन्हें आहार या विषय कहा जाता था। जिले के नीचे स्थानीय होता था जिसमें 800 ग्राम थे। स्थानीय के अन्तर्गत दो द्रोणमुख थे। प्रत्येक के चार-चार सौ ग्राम होते थे। द्रोणमुख के नीचे खार्वटिक था और खार्वटिक के अन्तर्गत 20 संग्रहण होते थे। इन संस्थाओं के प्रधान, न्यायिक, कार्यकारी तथा राजस्व सम्बन्धी अधिकारों का उपभोग करते 'युक्त' नामक पदाधिकारी की सहायता से अपना कार्य करते थे। संग्रहण का प्रदान अधिकारी 'गोप' होता था। मेगस्थनीज अधिकारियों को 'एग्रोनोमोई' कहता है।

मौर्य युग में प्रमुख नगरों का प्रशासन नगरपालिकाओं द्वारा चलाया जाता था। नगर प्रशासन के लिए एक सभा होती थी जिसका प्रमुख 'नागरम' अथवा 'मुरमुख्य' कहा जाता था।

13.3.4.9 ग्राम प्रशासन

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम था। ग्राम का अध्यक्ष 'ग्रामिणी' होता था। वह ग्रामवासियों द्वारा निर्वाचित होता था तथा वेतन भोगी कर्मचारी नहीं था। अर्थशास्त्र 'ग्राम वृद्ध-परिषद' का उल्लेख करता है। इसमें ग्राम के प्रमुख व्यक्ति होते थे जो ग्राम शासन में ग्रामिणी की मदद करते थे। राज्य सामान्यतः ग्रामों के शासन में हस्तक्षेप नहीं करता था।

13.3.4.10 न्याय प्रशासन

मौर्यों के एक तन्त्रात्मक शासन में सम्राट सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। वह सभी प्रकार के विवादों की सुनवाई की अन्तिम अदालत था। इसके अतिरिक्त साम्राज्य में न्यायालय मुख्यतः दो प्रकार के होते थे-(1) धर्मस्थीय (2) कण्टक शोधन। इन न्यायालों में बहुत ज्यादा अन्तर नहीं, फिर भी हम इन्हें सामान्यतः दीवानी तथा फौजदारी न्यायालय कह सकते हैं।

13.3.4.11 गुप्तचर विभाग

मौर्यों के विस्तृत प्रशासन की सफलता बहुत कुछ अंशों में कुशल गुप्तचर विभाग पर आधारित थी। यह विभाग एक प्रथक अमात्य के अधीन रखा गया जिसे ‘महामात्यापसर्प’ कहा जाता था। गुप्तचरों को अर्थशास्त्र में गूढ़ पुरुष कहा गया है। इस विभाग में वे व्यक्ति नियुक्त किये जाते थे जिनके चरित्र की शुद्धता एवं निष्ठा की परीक्षा सब प्रकार से कर ली जाती थी। अर्थशास्त्र में दो प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है-संस्था-अर्थात् एक ही स्थान पर रहने वाले तथा ‘संचरा’ अर्थात् प्रत्येक स्थान पर भ्रमण करने वाले।

13.3.4.12 भूमि तथा राजस्व

मौर्य प्रशासन में कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। भूमि पर राज्य एवं कृषक दोनों का अधिकार होता था। राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी ‘सीताध्यक्ष’ था जो दासों, बन्दियों, कर्मकारों से कृषि करवाता था। राज्य को आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर था। यह सिद्धान्ततः उपज का 1/6 होता था। परन्तु व्यवहार में आर्थिक स्थिति के अनुसार कुछ बढ़ा दिया जाता था।

13.3.4.13 सेना का प्रबन्ध

मौर्य शासकों के पास अत्यन्त विशाल सेना थी। इसमें 6 लाख पैदल, 30 हजार अश्वारोही, 9 हजार हाथी तथा सम्भवतः 8000 रथ थे। सेना का प्रधान सेनापति होता था। उसे 48000 पण वार्षिक वेतन दिया जाता था। युद्ध क्षेत्र में सेना का संचालन करने वाला अधिकारी ‘नापक’ होता था।

13.3.4.14 लोकोपकारी कार्य

मौर्य शासकों द्वारा अपनी प्रजा के भौतिक जीवन को सुखी तथा सुविधापूर्ण बनाने के उद्देश्य से अनेक उपाय किये। यातायात पाल की सुविधा के लिए राजमार्गों का निर्माण किया गया। पश्चिमी भारत में सिंचाई की सुविधा के लिये चन्द्रगुप्त के सुराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल तुषाष्प ने सुदर्शन नामक इतिहास प्रसिद्ध झील का निर्माण करवाया। कौटिल्य सिंचाई के साधनों की आवश्यकता पर बल देता है। अशोक के समय में झील से पानी के निकास के लिए मार्ग बनवाये थे। इससे इस झील की उपयोगिता बढ़ गयी। इस झील को हम मौर्य कालीन अभियन्त्रण कला का उत्कृष्ट नमूना कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त नागरिकों के स्वास्थ्य एवं शिक्षा के लिये अनेक प्रकार के औषधालयों तथा विद्यालयों की स्थापना भी राज्य की ओर से करवायी गयी।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि मौर्यों की शासन व्यवस्था लोकोपकारी थी। सरकार के विषय में उसकी धारणा पितृपरक थी। स्वयं निरंकुश होते हुए भी व्यवहार में वह धर्म, लोकाचार तथा न्याय के अनुसार ही शासन करता था।

13.3.4.15 अशोक का धम्म

अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिए अशोक ने जिन आचारों की संहिता प्रस्तुत की उसे उसके अभिलेखों में ‘धम्म’ कहा गया है। ‘धम्म’ संस्कृत के धर्म का ही प्राकृत रूपान्तर है परन्तु अशोक के लिए ‘इस शब्द का विशेष महत्व है।

अपने दूसरे स्तम्भलेख में अशोक स्वयं प्रश्न करता है-किमंचु धम्मे ? (धम्म क्या है) इसका उत्तर वह स्वयं दूसरे तथा सातवें लेखों में देता है। वह हमें उन गुणों को गिनाता है जो धम्म का निर्माण करते हैं। इन्हें हम इस प्रकार रख सकते हैं-अपासिनवेबहुकयाने दयादाने सचे सोचपे माददे साधवे च। अर्थात् धम्म-

(1) अल्प पाप है (अपासिनवे), (2) अत्याधिक कल्याण है (वहुकयाने), (3) दया है (4) दान है (5) सत्यवादिता है (6) पवित्रता है (सोचपे) (7) मृदता है (मादवे) (8) साधुता है (साधवे)। इन गुणों को व्यवहार में लाने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक बतायी गयी हैं। (1) अनारम्भो प्राणानाम् (प्राणियों की हत्या न करो) (2) अविहिंसा भूतानाम् (प्राणियों को क्षति न पहुंचाना) (3) मातरि पितरि सुसूरसा (माता पिता की सेवा करना) (4) थेर सुस्रूसा (वृद्धों की सेवा करना) (5) गुरुणाम अपचित (गुरुजनों का सम्मान करना) (6) मित संस्तुत नाटिकानांम् वहमण-समणानां दान सपरिपति (मित्रों परिचतों, ब्राह्मणों तथा ग्रामीणों के साथ अच्छा व्यवहार करना) (7) दास-भतकम्हि सम्प प्रतिपति (दासों तथा नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार करना) (8) अप-व्ययता (अल्पव्यय) (9) अपभाण्डता (अल्पसंचय)।

ये धम्म के विधायक पक्ष है। इसके अतिरिक्त अशोक के धम्म का एक निषेधात्मक पक्ष भी है जिसके अन्तर्गत कुछ दुर्गुणों को गणना की गयी है। ये दुर्गुण व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में बाधक होते हैं। इन्हें ‘असिनव’ शब्द में व्यक्त किया गया है। असिनव को अशोक तीसरे स्तम्भ लेख में ‘पाप’ कहता है। मनुष्य ‘असिनव’ का कारण सद्गुणों से विचलित हो जाता है। उसके अनुसार निम्नलिखित दुर्गुणों के कारण मनुष्य दुर्गुणों से आसिनव हो जाता है। (1) चंडिये अर्थात् प्रचण्डता (2) क्रोधे अर्थात् क्रोध (3) निठुलिपे अर्थात् निष्ठुरता (4) मनो अर्थात् घमण्ड (5) इस्सा अर्थात् इर्ष्या।

अतः धम्म का पूर्ण परिपालन तभी हो सकता है जब मनुष्य उसके गुणों के साथ इन विकारों से भी अपने को मुक्त रखे।

धम्म तथा उसके उपादान अशोक को बहुत प्रिय थे। साधारण मनुष्यों में धम्म को बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से वह इसकी तुलना जीवन के विभिन्न आचरणों से करता है तथा धम्म को उसमें सर्वश्रेष्ठ घोषित करता है। नवें शिलालेख में वह मानव जीवन के विविध अवसरों पर किये जाने वाले मंगलों का उल्लेख करता है। उसके अनुसार धम्म-मंगल महाफल वाला है। 11वें शिलालेख में धम्मदान की तुलना सामान्य दान से की गयी है

तथा धम्मदान को श्रेष्ठतर बताया गया है। धम्मदान का अर्थ है-धम्म का उपदेश देना, धम्म में भाग लेना तथा धम्म से अपने आपको सम्बन्धित कर लेना।

अशोक के धम्म और बौद्ध धर्म के परस्पर सम्बन्ध के विषय में इतिहासकारों ने गहन चिंतन किया है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये-

(क) बिन्दुसार 'अमितद्यात' (298 ई0पू0 से 273 ई0पू0 तक)।
(ख) अशोक का प्रारम्भिक जीवन।
(ग) कलिंग युद्ध
(घ) अशोक का धम्म

13.4 सांराश

उपरोक्त शीर्षकों के अन्तर्गत आपको मौर्य वंश के शासको का जीवन परिचय एवं विस्तृत मौर्य साम्राज्य को संगठित करने में उनके योगदान से परिचित कराया गया है। अब आप चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार एवं अशोक, के बारे में प्रर्याप्त जानकारी रखते है और प्राचीन भारतीय इतिहास के इस कालखण्ड को भली प्रकार समझ सकते है।

13.5 तकनीकी शब्दावली

कार्षापण	-	एक प्राचीन भारतीय मुद्रा।
चाणक्य	-	चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरू कौटिलय का एक अन्य नाम।
उन्मूलन	-	समाप्त करना।
अमित्रघात	-	शत्रुओं का नाश करने वाला।

13.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 131.3.1

(क) देखिए – 13.3.2.3 नन्दो का उन्मूलन
(ख) देखिए - 13.3.2.4 सेल्यूकश के विरूद्ध युद्ध
(ग) देखिए - 13.3.2. चन्द्रगुप्त मौर्य
(घ) देखिए - 13.3.2.7. चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार

इकाई 13.3.1 के प्रश्नों के उत्तर के लिए देखिए

(क) देखिए - 13.3.3 बिन्दुसार

(ख) देखिए - 13.3.4.1 अशोक का प्रारम्भिक जीवन

(ग) देखिए - 13.3.4.2. कलिंग युद्ध

(घ) देखिए - 13.3.4.14 अशोक का धम्म

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।

2 के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।

3 वी0डी0 महाजन, प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास।

13.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

(क) एच.डी. सांकलिया . एज ऑफ नन्दाज एण्ड मौर्याज

(ख) किरन कुमार थपल्याल, प्राचीन भारत का इतिहास, द्वितीय संस्करण।

13.9 निबंधात्मक प्रश्न

(क) चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन, उपलब्धियों एवं उसके साम्राज्य विस्तार का वर्णन कीजिए।

(ख) मौर्य साम्राज्य के प्रशासनिक व्यवस्था पर एक लेख लिखिए।

इकाई चौदह

सातवाहन युग :- राजनीतिक इतिहास, भौतिक संस्कृति एवं प्रशासन

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 सातवाहन युग : राजनीतिक इतिहास

14.3.1 सिमुक

14.3.2 कृष्ण

14.3.3 सातकर्णी प्रथम

14.3.4 राजा हाल

14.3.5 गौतमीपुत्र सातकर्णी

14.3.6 वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी

14.3.7 यज्ञश्री सातकर्णी

14.4 भौतिक संस्कृति

14.5 प्रशासन

14.5.1 केन्द्रीय प्रशासन

14.5.2 प्रान्तीय प्रशासन
14.5.3 राजस्व व्यवस्था
14.5.4 सातवाहनों के अधीन भूमि अनुदान
14.5.5 धर्म
14.5.6 समाज
14.5.7 कला
14.6 सारांश
14.7 तकनीकी शब्दावली
14.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

ईसा पूर्व प्रथम सदी में शुंग एवं कण्व वंश के पतन के बाद उपरी दक्कन में आंध्र सातवाहन एवं कलिंग क्षेत्र में चेदि वंश नामक दो राजनीतिक शक्तियों ने अपना वर्चस्व स्थापित किया | अर्थात दक्कन एवं मध्य भारत में मौर्यो के बाद सातवाहन शासन लगभग सौ वर्षों के बाद आया | सातवाहन शक्ति किसी न किसी रूप में लगभग चार शताब्दियों तक बनी रही | प्राचीन भारत में यह किसी एक वंश का सर्वाधिक कार्यकाल है | आंध्र- सातवाहन वंश के इतिहास के अध्ययन के लिए भारतीय साहित्य में मत्स्य एवं वायु पुराण, विदेशी विवरण तथा पुरातत्व तीनों प्रकार के स्रोतों से जानकारी मिलती है | अशोक के अभिलेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौयों का दक्कन के साथ सीधा संपर्क था। यह संपर्क विशेष रूप से दक्षिणी दक्कन से था। बी.डी. चटोपाध्याय ने इस संदर्भ में सिक्कों से उपलब्ध प्रमाण पर जोर दिया है। दरअसल इन सिक्कों के आधार पर दक्कन में उन छोटे-छोटे राजघरानों का पता चलता है, जिनका अस्तित्व मौर्य साम्राज्य के पतन और सातवाहनों के उदय के बीच के काल में था। इन स्थानीय शासकों को उनके सिक्कों में महारथी के रूप में चित्रित किया गया है। इनकी प्राप्ति वेरापुरम से भी हुई है जो सातवाहनों से पहले और सातवाहन काल के दौरान के पुरातात्त्विक स्तर विन्यासों में पाए गए है।

14.२ उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप सातवाहन कौन थे, सातवाहन युग का राजनीतिक इतिहास, सातवाहन युगीन भौतिक संस्कृति एवं सातवाहन शासकों की प्रशासनिक संरचना के इतिहास से अवगत होंगें |

14.3 सातवाहन युग : राजनीतिक इतिहास

इतिहासकारों में सातवाहनों के कालानुक्रम को लेकर मतभेद है। कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि सातवाहनों का शासन 271 ई०पू० से शुरू हुआ, जबकि कुछ इतिहासकार इसे लगभग 30 ई०पू० मानते हैं। किन्तु अधिक संभावना यह है कि सातवाहनों का उदय पहली शताब्दी ई०पू० के मध्य में हुआ होगा और इनका पतन तीसरी शताब्दी ई० के प्रारंभ में हो गया। इतिहासकारों में इस विषय को लेकर भी मतभेद है कि सातवाहनों ने अपने साम्राज्य की शुरुआत पूर्वी दक्कन से शुरू की अथवा पश्चिम दक्कन से। पुराणों में 'आंध्रभृत्य' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ कुछ इतिहासकारों ने यह लगाया है कि सातवाहनों के पूर्वज मौर्य सम्राटों के अधीनस्थ रहे होंगे। (भृत्य का अर्थ अधीनस्थ या परिचारक से है।)

इसके अतिरिक्त सातवाहनों के सिक्के करीमनगर जिला (आंध्रप्रदेश) के कोटलिंगल और संगारेड्डी नामक स्थानों से मिले हैं। इन प्रारंभिक सातवाहन सिक्कों के आधार पर भी उन्हें पूर्वी दक्कन का मूल निवासी माना जाता है | जबकि नानेघाट और नासिक गुफाओं से प्राप्त अभिलेखों के आधार पर सातवाहनों की शक्ति का केंद्र पश्चिमी दक्कन कहा जा सकता है। इसके आधार पर कुछ इतिहासकारों का यह भी मानना है कि सातवाहनों ने अपने राज्य की शुरुआत पश्चिमी दक्कन के प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) से शुरू की और बाद में इन्होंने पूर्वी दक्कन आन्ध्र तथा पश्चिमी तटीय क्षेत्र तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। सातवाहन साम्राज्य के अंतर्गत आधुनिक आन्ध्रप्रदेश और महाराष्ट्र आते थे। समय-समय पर उनका नियंत्रण उत्तरी कर्नाटक, पूर्वी और दक्षिणी मध्यप्रदेश और सौराष्ट्र पर भी होता गया।

मत्स्य और ब्रह्माण्ड पुराण में तीस सातवाहन राजाओं की सूची दी गयी है, जिन्होंने 460 वर्षों तक शासन किया | जबकि वायु पुराण में सत्रह सातवाहन राजाओं की सूची उपलब्ध है, जिन्होंने 300 वर्षों तक शासन किया। कुछ सिक्कों और अभिलेखों में जिन सातवाहन शासकों के नाम दिए गए हैं, पुराणों में दी गई सूची में वे सम्मिलित नहीं हैं। पुराणों में जिन तीस सातवाहन राजाओं के नाम मिलते है, उनमें सिन्धुक, सिसुक अथवा शिप्रक को सातवाहन वंश की स्थापना का श्रेय दिया गया है | वायु पुराण में उल्लेख है कि इसने कण्व वंश के राजा सुशर्मा को मारकर पृथ्वी पर अपना शासन स्थापित किया | साथ ही नानाघाट अभिलेख में भी इसका उल्लेख मिलता है | इस ईकाई में आपको अन्य सातवाहन शासकों से अवगत कराया जायेगा-

14.3.1 सिमुक

सिमुक ने प्रशासनिक कार्यों की जगह धार्मिक कार्यों को बढ़ावा दिया | जैन व बौद्ध चैत्यों की स्थापना में सहायता की परन्तु अंतिम समय में दुराचारी व अत्याचारी होने की वजह से लोगों के द्वारा इसका वध कर दिया गया | मूलतः यह ब्राह्मण जाति का था, जिसने ब्राह्मण धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए शस्त्र धारण किए क्योंकि बड़ी संख्या में क्षत्रियों द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने के कारण वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा गिर रही थी | पुराणों से ज्ञात होता है कि उसने तेईस वर्षों तक शासन किया |

14.3.2 कृष्ण

सिमुक के पश्च्यात उसका छोटा भाई कृष्ण (कन्ह) शासक बना | इसने सातवाहन साम्राज्य को नासिक तक फैलाया | कृष्ण ने अठारह वर्ष शासन किया | नासिक गुहालेख में कृष्ण(कन्ह) का उल्लेख आया है | इस लेख में कृष्ण द्वारा स्थानीय श्रमण के आवास हेतु गुहा निर्मित किए जाने का विवरण भी मिलता है |

14.3.3 सातकर्णी प्रथम

पुराणों से जानकारी मिलती है कि कृष्ण(कन्ह) के बाद सातकर्णी (सिमुक का पुत्र) गद्दी पर बैठा | सातवाहन वंश में सातकर्णी सातवाहन उपाधि ग्रहण करने वाला प्रथम शासक था | यह प्रथम शक्तिशाली राजा था जिसका उल्लेख **'पेरिप्लस ऑफ़ द एरिथ्रियन सी'** में **एलडोर सारागानुस** के नाम से मिलता है | खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसकी पूर्वी सीमा कलिंग शासक खारवेल की पश्चिमी सीमा से लगी हुई थी | इसने पश्चिमी मालवा, अनूप तथा विदर्भ के प्रदेशों पर विजय प्राप्त की | उसने उत्तरी कोंकड़ तथा गुजरात के कुछ भागों को जीतकर अपने साम्राज्य में मिलाया था | उसने क्षहरात वंश के शक क्षत्रपों को पश्चिमी दक्कन से भगा दिया था | उसने दो अश्वमेघ यज्ञ किये तथा अपनी पत्नी नयनिका के नाम पर रजत मुद्राएँ उत्त्कीर्ण करवायी | नयनिका के नानाघाट अभिलेख से सूचना मिलती है कि सातकर्णी प्रथम ने अंगीय या अंतिम कुल के शासक महारठी त्रणकवि की पुत्री नयनिका से विवाह कर अपने राजनीतिक क्षेत्र को और विस्तृत किया | इसी अभिलेख में उसे **'दक्षिणापथ का स्वामी'** कहा गया है। इसके साथ ही उसने **'अप्रतिहत चक्र'** उपाधि धारण की थी | सातकर्णी प्रथम की मृत्यु के उपरांत सातवाहन शक्ति कमजोर पड़ने लगी जिसका पुनरुथान गौतमी पुत्र सातकर्णी के कार्यकाल में हुआ | सातकर्णी के दो पुत्र थे- शक्तिश्री व वेदश्री | नयनिका ने इनकी अभिभाविका या संरक्षिका के रूप में शासन संचालन किया था | इसके पश्च्यात सातवाहन साम्राज्य का इतिहास अंधकारमय है | ईसा काल में शक आक्रमणकारियों ने इस पर आक्रमण करके उसके अधिकांश राज्य पर अधिकार कर लिया | कलिंग के चेदि शासक खारवेल ने हाथीगुम्फा अभिलेख में यह दावा किया है कि उसने सातकर्णी नाम के एक शासक को अपने राज्यभिषेक के बाद दूसरे

वर्ष में पराजित किया। उसने यह भी दावा किया है कि दो वर्षों बाद उसने रथिकों, मराठा देश को एवं विदर्भ के भोजो को भी पराजित किया था।

14.3.4 राजा हाल

परवर्ती सातवाहन शासकों अथवा प्रथम शताब्दी के अंत में हाल का नाम उल्लेखनीय है जो सातवाहन वंश का सत्रहवां राजा था। वह उच्च कोटि का कवि तथा साहित्यकार था | ऐसा माना जाता है कि उसने सात सौ कामुक काव्य सूत्रों का एक संग्रह **गाथा– सत्तसई** को महाराष्ट्री प्राकृत में तैयार किया था।

14.3.5 गौतमी पुत्र सातकर्णी

पुराणों में गौतमीपुत्र सातकर्णी को तेईसवां शासक बताया गया है | समकालीन अभिलेखों में उसके पिता का नाम शिवस्वाति तथा माता का नाम गौतमी बलश्री बताया गया है | इससे संबधित नासिक में दो तथा कार्ले में एक अभिलेख की प्राप्ति हुई है | इसकी सैनिक सफलताओं एवं अन्य कार्यों के विषय में सूचना उसकी माता गौतमी बलश्री के नासिक प्रशस्ति तथा पुलुमावी के नासिक गुहालेख से प्राप्त होती है | इन अभिलेखों में उसने दावा किया है कि उसने क्षहरात वंश का विनाश किया क्योंकि उसका शत्रु नहपान इसी वंश से संबद्ध था | पुरातात्विक साक्ष्य उसके इस दावे की पुष्टि करते हैं | क्योंकि नहपान के जो आठ हज़ार से अधिक चांदी के सिक्के नासिक के पास से मिले हैं, उन पर सातवाहन राजा द्वारा फिर से ढ़लाये जाने के चिहन है | उसने **राजराजा, महाराज स्वामी वेणाकटक विन्ध्य नरेश, त्रिसमुद्र, अद्वितीय प्रथम** आदि महान उपाधियाँ धारण की थी | इसने स्वयं को कृष्ण, बलराम व सकर्षण की उपाधि से भी विभूषित किया था |

ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहनों और शकों के बीच एक लम्बा संघर्ष चला। इन दोनों के बीच चल रहे संघर्ष के केन्द्र में भृगुकच्छ (भड़ौच या भड़च), कल्याण तथा सोपरक (सोपारा) के बंदरगाह थे, जिनका वाणिज्यिक महत्त्व अत्याधिक था। दूसरी ओर क्षहरात क्षत्रपों के राज्य विस्तार का प्रारंभिक चरण सातवाहनों के मूल्य पर भी हुआ होगा। गौतमीपुत्र सातकर्णी के काल में सातवाहन साम्राज्य अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुंचा। गौतमीपुत्र बलश्री के नासिक अभिलेख में दिये गए एक कथन के अनुसार उसके घोड़े तीनों महासागरों का पानी पीते थे जिससे पता चलता है कि विंध्य पर्वत श्रृंखला के पार भी उसने एक बड़े क्षेत्र को अपने नियंत्रण में ले लिया था | इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि गौतमीपुत्र सातकर्णी का साम्राज्य उत्तर में मालवा और सौराष्ट्र तक, दक्षिण में कृष्णा नदी तक, पूर्व में बेरार जिला तक तथा पश्चिम में कोंकण तटीय क्षेत्र तक फैला हुआ था। किंतु ऐसा संभव है कि अपने राज्यकाल के अंतिम दिनों में, गौतमीपुत्र शातकर्णी को अपने राज्य के उन हिस्सों को कारदमक क्षत्रपों को सौंप देना पड़ा होगा, जिन्हें उसने क्षहरात क्षत्रपों से हासिल

किया था। इसके अतिरिक्त गौतमीपुत्र शातकर्णी ने नासिक क्षेत्र में वेणाकटक नामक एक नवीन नगर का निर्माण करवाया था |

14.3.6 वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी

गौतमीपुत्र के पश्च्यात वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी शासक बना | पुराणों के अनुसार उसने 28-29 वर्ष तक शासन किया | यद्यपि इसके समय में भी सातवाहनों की शक्ति पूर्ववत बनी रही तथापि शक वंशीय दो शासकों– चष्टन तथा रुद्रदामन का मुकाबला उसे करना पड़ा एवं रुद्रदामन ने वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी को दो बार हराया जिसमें पुलुमावी को अपने कुछ प्रदेशों (काठियावाड) से हाथ धोना पड़ा | इसका उल्लेख रुद्रदामन के गिरनार लेख से मिलता है | ऐसा लगता है कि पुलमावी का ज्यादा ध्यान पूर्व की ओर केंद्रित रहा, जिसके कारण शकों ने अपनी खोई हुई भूमि को वापस लेने में सफलता पा ली। यज्ञश्री सातकर्णी सातवाहनों में दूसरा प्रमुख शासक था जिसने शायद शकों से चल रहे संघर्ष को पुनः जीवित किया और सातवाहन वंश का वह शायद अंतिम शासक रहा होगा जिसका पूर्वी और पश्चिमी दक्कन दोनों पर नियंत्रण था। इसके बावजूद पुलुमावी के शासन काल में दक्षिणी क्षेत्रों में सातवाहन साम्राज्य का प्रसार हुआ, क्योंकि अमरावती से प्राप्त एक लेख पर केवल वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी का उल्लेख हुआ है | वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी ने दक्षिणी पथेश्वर, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश को जीता | समकालीन सिक्कों तथा अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कृष्णा नदी के मुहाने वेलारी, आँध्रप्रदेश आदि पर उसने आधिपत्य कायम करके **"दक्षिणापथेश्वर"** की उपाधि धारण की एवं प्रथम **'आन्ध्र-सम्राट'** कहलाया | गौतमीपुत्र सातकर्णी के उत्तराधिकारी वासिष्ठीपुत्र पुलमावी के सिक्के आन्ध्र प्रदेश के विभिन्न हिस्सों से पाए गए हैं। उसने जो सिक्के निर्गत किए उनमें से कई पर एक पाल वाले और दोहरे पाल वाले बड़े जहाजों का चित्रांकन किया गया है। उसके सिक्कों पर **'दो पतवारों वाले जहाज़'** के चित्र से उसकी शक्तिशाली नौसेना की भी पुष्टि होती है |

14.3.7 यज्ञश्री शातकर्णी

पुलुमावी के पश्च्यात यज्ञश्री शातकर्णी अंतिम शक्तिशाली शासक हुआ, जिसने 165 ई० से 195 ई० तक शासन किया | इसने शकों को पुनः पराजित किया एवं पश्चिमी भारत के कुछ भाग एवं नर्मदा घाटी पर पुनः आधिपत्य कायम किया | आँध्रप्रदेश के गुंटूर जिल्ले से उसके शासन काल के सत्ताईसवें वर्ष का एक लेख मिला है, जिसके अनुसार उसने पूर्वी तथा पश्चिमी दक्कन के ऊपर शासन किया था | उसकी मुद्राएँ गुजरात, काठियावाड, पूर्वी मालवा व मध्यप्रदेश से मिलती हैं, जिनसे इन प्रदेशों का उसके राज्य में होना प्रमाणित होता है | यज्ञश्री सातकर्णी के बाद प्रमुख सातकर्णी शासकों में गौतमीपुत्र विजय सातकर्णी, चन्द सातकर्णी, वासिष्ठीपुत्र विजय सातकर्णी तथा पुलमावी थे। बहुत सारे परवर्ती सातवाहन शासकों के नामों का उल्लेख

पुराणों में दिए गए सातवाहन राजाओं की सूची में नहीं है। इनकी जानकारी हमें केवल सिक्कों से मिलती है | किन्तु तीसरी शताब्दी में सातवाहनों की शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी और स्थानीय शासक स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने लगे | सातवाहनों के पतन पर अनेक स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गए जिनमें आभीरों ने उनसे महाराष्ट्र छीन लिया | उत्तरी कनडा क्षेत्र और मैसूर के भाग में कुंतल और चुटू एवं उसके बाद कदम्ब शक्तिशाली हो गए | आँध्रप्रदेश में इक्ष्वांकुओं ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली | दक्षिण-पूर्वी क्षेत्रों में पल्लवों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया व छठी शताब्दी के मध्य तक वह एक महान शक्ति बन गए | विदर्भ में वाकाटकों ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली |

14.4 भौतिक संस्कृति

सातवाहनकालीन अर्थव्यवस्था में उत्तर भारत के तत्व एवं क्षेत्रीय तत्व दोनों के बीच सामंजस्य देखा जा सकता है। दक्कन क्षेत्र में लौह उपकरणों का प्रयोग महापाषाण काल में आरंभ हो चुका था तथा कृषि में भी इन उपकरणों का प्रयोग होने लगा था।। यद्यपि ये उपकरण बेहतर किस्म के नहीं थे तथा कृषि भी पूरी तरह विकसित नहीं हुई थी किन्तु आगे मौर्य साम्राज्य से संपर्क के परिणाणस्वरूप इस क्षेत्र में भौतिक संस्कृति को प्रोत्साहन मिला | उदाहरण के लिए, मौर्यों से संपर्क के पश्चात् इस क्षेत्र में बेहतर किस्म के लौह उपकरणों का प्रयोग, धान के बेहतर किस्म, पक्की ईंट व घेरेदार कुएं आदि का प्रचलन आरंभ हो गया। इसके अतिरिक्त हँसिये, कुदालें, हल के फाल, कुल्हाड़ियाँ, बसूले व उस्तरे आदि सातवाहन कालीन उत्खनित स्थलों से पाए गए हैं। चूलदार और मूठ वाले वाणाग्र और कटारें भी मिली हैं। करीमनगर जिले में एक उत्खनित स्थान पर लोहार की एक दुकान भी मिली है। सातवाहनों ने करीमनगर और वारंगल के लौह अयस्कों का उपयोग किया होगा, इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि इन दोनों जिलों से महापाषाण काल की लोहे की खदानें मिली हैं। इन सब लौह अयस्कों से बने विकसित उपकरणों के फलस्वरूप सातवाहनों के अधीन कृषि अर्थव्यवस्था को व्यापक प्रोत्साहन मिला एवं कृष्णा-गोदावरी डेल्टा क्षेत्र में बड़े पैमाने पर चावल का उत्पादन होने लगा। कपास भी एक मुख्य फसल के रूप में स्थापित हुई। भूमि अनुदान के माध्यम से नये क्षेत्रों में कृषि के प्रसार को विशेष प्रोत्साहन दिया गया। खाद्यान्नों की उपलब्धता ने जनसंख्या वृद्धि को संभव बनाया। समकालीन पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्रोत सातवाहन साम्राज्य के पूर्वी तथा पश्चिमी भाग में एक बड़ी जनसंख्या की उपस्थिति की सूचना देते हैं। प्लिनी के अनुसार आंध्र राज्य की सेना में 1,00,000 पैदल सिपाही, 2,000 घुड़सवार और 1,000 हाथी थे। इससे सिद्ध होता है कि ग्रामीण आबादी अधिक अवस्था में रही होगी और वह इतनी बड़ी सेना के पोषण के लायक पर्याप्त अनाज पैदा करती रही होगी।

कृषि अर्थव्यवस्था के विकास एवं जनसंख्या वृद्धि ने शिल्पों के विकास को प्रोत्साहन दिया। सातवाहनों के अधीन शिल्पी केवल नगरों में ही नहीं वरन गाँवों में भी बसते थे | उदाहरण के लिए, आंध्र के तेलंगाना क्षेत्र में करीमनगर एवं नालगोंडा जैसे गाँवों में लौह शिल्पियों की मौजूदगी की सूचना प्राप्त होती है। लोहे के अतिरिक्त कर्नाटक के कोलार क्षेत्र में सोने का भी उत्पादन होता था। फिर भी सातवाहनों के अधीन सोने का उपयोग कीमती धातु के रूप में किया गया। मुद्रा के रूप में इस धातु का उपयोग नहीं देखा गया। फिर सातवाहनों के अधीन सूती वस्त्र एवं रेशमी वस्त्र के उत्पादन के कई केन्द्र थे तथा इन वस्तुओं का बाहर निर्यात भी किया जाता था। इसके अतिरिक्त कीमती पत्थरों को तरासना भी एक महत्त्वपूर्ण शिल्प में शामिल था।

इस काल में शिल्पी तथा व्यापारी अपने को श्रेणी तथा निगम के रूप में संगठित करने लगे थे। राज्य की ओर से इन श्रेणियों तथा निगमों को कई विशेषाधिकार एवं स्वायत्तता प्राप्त थी एवं आर्थिक व सामाजिक जीवन में इन शिल्पियों की भागीदारी थी। उदाहरण के लिए ये श्रेणियां वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करती थीं तथा बैंक का भी कार्य करती थीं। नासिक में गोवर्द्धन नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख से सूचना मिलती है कि कुछ बौद्ध उपासकों ने श्रेणियों के अंतर्गत कुछ राशि जमा कर दी थी ताकि उस रकम के ब्याज से बौद्ध भिक्षुओं की आवश्यकता पूरी हो सके अर्थात ब्याज की राशि से उन्हें आवश्यक वस्तुऐं मुहैया करायी जा सके । श्रेणियां एक प्रधान अथवा ज्येष्ठक के अंतर्गत कार्य करती थी। इस प्रधान को परामर्श देने के लिए एक समिति होती थी। श्रेणियों के अपने झण्डे तथा अपनी मुहर होती थी। वे निजी सुरक्षा के लिए सेना भी रखते थे। श्रेणियों को शिल्पियों के व्यक्तिगत जीवन में दखल देने का भी अधिकार था। अगर कोई महिला बौद्ध संघ की सदस्यता ग्रहण करना चाहती तो उसे अपने पति के अतिरिक्त पति के संघ से भी अनुमति लेनी होती थी। इन श्रेणियों के द्वारा बौद्ध संघों को प्रचुर मात्रा में अनुदान दिये गये। ये अनुदान श्रेणियों के नाम से जारी किये जाते थे। सातवाहनों के अधीन आंतरिक एवं बाह्य व्यापार दोनों उन्नत अवस्था में थे। आंतरिक व्यापार में मुख्य भूमिका कृषि उत्पादों की थी, जो ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र को भेजे जाते थे। बाह्य व्यापार में सातवाहन राज्य एक व्यापक व्यापारिक गतिविधि से जुड़ा हुआ था जो पूरब में चीन एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के क्षेत्र से लेकर पश्चिम में भूमध्यसागरीय क्षेत्र तक फैला हुआ था। संभवतः रोमन व्यापार का सर्वाधिक लाभ सातवाहनों को ही प्राप्त हुआ। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण था पश्चिमी तट के दो महत्त्वपूर्ण बंदरगाह भड़ौच एवं सोपारा का सातवाहन राज्य के अधीन होना। इन बंदरगाहों पर न केवल सातवाहन क्षेत्र से वस्तुएं भेजी जाती थीं, वरन शक एवं कुषाण क्षेत्र से भी वस्तुएं आती थीं। इस काल में निर्यात की प्रमुख वस्तुएं, विविध प्रकार के मसाले, सूती वस्त्र, मलमल, लौह वस्तुएं व कीमती पत्थर आदि थीं। रोमन साम्राज्य की आवश्यकता को पूरा करने के लिए यहाँ पूर्वी देशों से कुछ वस्तुओं का आयात भी किया जाता था। इस काल में रोम से दक्कन क्षेत्र में बड़े

पैमानें पर कीमती धातु तथा सिक्के लाये गये। इसके अतिरिक्त शराब, शराब के दोहत्थे कलश एवं अरेटाइन मृदभांड का आयात किया जाता था। रोमन लेखक टॉलमी ने सातवाहन राज्य के अधीन विदेशी व्यापार पर प्रकाश डाला है।

विकसित वाणिज्य व्यापार ने मुद्रा अर्थव्यवस्था तथा नगरीकरण की प्रक्रिया को बल प्रदान किया। ईसा पूर्व और ईस्वी बाद की सदियों में कोलार के स्वर्ण क्षेत्र में सोने की प्राचीन खदानों के प्रमाण मिले हैं साथ ही सातवाहन राज्य में बड़ी संख्या में रोम से भी सोने के सिक्के आए, किंतु सातवाहनों ने इन सिक्कों का उपयोग कीमती धातु के रूप में किया। इसे उन्होंने मुद्रा के रूप में दुबारा जारी नहीं किया | किन्तु सातवाहन शासकों ने बड़े पैमानें न केवल चाँदी और ताँबे के वरन् टिन, कांसा, पोटीन (ताम्र, जिंक, सीसा, टीन मिश्रित) एवं सीसे के सिक्के जारी किये। इनके द्वारा सीसे के सिक्के जारी करने के लिए रोम से सीसे का आयात किया जाता था। पुरातात्विक उत्खनन में दक्कन क्षेत्र में सिक्के बनाने वाले साँचे भी मिले हैं। इनमें ऐसा साँचा भी मिला हैं जिसकी सहायता से एक साथ 6 सिक्के निर्मित किये जा सकते थे। पंचमार्क (आहत) कार्षापण (काहापण) का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य नागनिका का नानाघाट गुहा अभिलेख है। अतः सातवाहन शासकों द्वारा दकन के खनिज स्रोतों का अपने साम्राज्य को मजबूत आर्थिक ढ़ाचां देने के लिए भरपूर उपयोग किया गया।

दक्षिण में चांदी प्राप्ति के सीमित स्रोत थे अतः सातवाहनों की अधिकांश मुद्राएं सीसे की प्राप्त हुई है। सातवाहनों की मुद्राएं वृत्ताकार, चौकोर तथा कतिपय अनियमित आकार की हैं। सातवाहन मुद्राओं पर राज सिर, पांच पत्तियों वाला चैत्य वृक्ष, उज्जैन चिन्ह, मत्स्ययुक्त नन्दी श्रीवत्स तथा स्वास्तिक का अंकन मिलता है। चैत्य सम्भवतः सातवाहनों का राज चिन्ह था। कोटालिंगल, पोवांकुड (पूर्वी दक्कन) भोकरदान अथवा भोगवर्धन तथा आदम (महाराष्ट्र) आदि से सातवाहन सिक्कों के ढेर मिले है। आदम (महाराष्ट्र) तथा पेडाबांकुड (आन्ध्र) में सातवाहन सिक्के ढालने की टकसालें थी। आदम से 6000 सातवाहन सिक्के मिले हैं जिनमें से 86 पर शासकों के छवि चित्र अंकित हैं । नेवासा (महाराष्ट्र) से **कोछिपुतस सातकर्णि** अंकित मुद्रा सातवाहनों की मातृनाम अंकित प्राचीनतम मुद्रा है। सातकर्णि प्रथम ने अपनी रानी नागनिका के साथ संयुक्त रूप में रजत मुद्राएं जारी की। इसके अतिरिक्त गौतमीपुत्र सातकर्णि इस वंश का प्रथम शासक था, जिसने पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप नहपान को पराजित किया। नहपान के जोगलथम्बी मुदभाण्ड की मुद्राओं को पुनरांकित करने के पश्चात् सर्वप्रथम उसी ने स्वतंत्र रूप से आवक्ष प्रकार की रजत मुद्राएं जारी की। सातवाहनों की अधिकांश रजत मुद्राएं पश्चिमी दक्कन से ही प्राप्त हुई है। आवक्ष प्रकार की रजत मुद्रा बालगढ़ (छत्तीसगढ़) से प्राप्त हुई है। कालान्तर में गुप्तशासक चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इसी प्रकार पश्चिमी शकों को परास्त कर रजत मुद्राएं जारी की थी। सातवाहन मुद्राएं ब्राह्मी लिपि तथा द्रविड़ प्राकृत भाषायुक्त हैं।

जहाज का अंकन करने वाले सातवाहन सिक्के सीसे के बने है। इन सिक्कों का सम्बन्ध वशिष्ठीपुत्र पुलमावि व यज्ञश्री शातकर्णि के साथ जोड़ा गया है। ये सिक्के अधिक मात्रा में आन्ध्र के तटीय क्षेत्र (कोरोमण्डल तट) से मिली हैं। कुछ सिक्के पूना और ब्रह्मपुरी से प्राप्त हुए हैं। शीशे का देश में उत्पादन नहीं होता था, इसलिए उसे विदेश व्यापार के माध्यम से ही प्राप्त किया जाता था। सातवाहन शासक वशिष्ठपुत्र पुलमई के सिक्के पर दो पतवारों वाले नाव का चित्र अंकित होना यह स्पष्ट करता है कि उसकी व्यापार में गहरी रूचि थी। इसके साथ ही सातवाहन शासकों में गौतमीपुत्र सातकर्णी ने चाँदी के सिक्के पर अपना भव्य चित्र अंकित किया। अन्य सातवाहन शासकों ने भी सिक्कों में अपनी तुलना भीम, अर्जुन, कृष्ण एवं बलराम से की। जैसा कि विभिन्न स्रोतों से स्पष्ट होता है कि उनकी जनजातीय पृष्ठभूमि रही थी व सातवाहन शासक अपने सामाजिक दर्जे को ऊपर उठाना चाहते थे। अतः सामाजिक स्वीकृति के लिए उनका यह कदम आवश्यक था।

सातवाहनों की विकसित मुद्रा अर्थव्यवस्था ने नगरीकरण को प्रोत्साहन दिया। विदेशी विवरणों के अनुसार उत्तर के संपर्क से दकन के लोगों ने सिक्के, पकी ईंट, छल्लेदार कुआँ व लेखनकला आदि का प्रयोग सीखा। भौतिक जीवन के ये अंग 300 ई० पू० तक उत्तर भारत में काफी महत्त्वपूर्ण हो चुके थे, किंतु दक्षिण में इनका महत्त्व दो सदी के बाद बढ़ा। करीमनगर जिले के पेड्डबंकुर (200 ई० पू०-200 ई०) में पकी ईंट और छत में लगने वाले चिपटे छेददार खपड़े के प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं। साथ ही द्वितीय शताब्दी ईसवी में ईंटों के बने 22 कुएँ भी इस स्थल पर पाए गए हैं। इनसे घनी आबादी के विकास में सुविधा हुई होगी। इसके अतिरिक्त ज़मीन के अंदर बनी ढकी हुई नालियाँ भी मिली हैं जिनसे गंदा पानी गड्ढों में जाता था। महाराष्ट्र में नगर ईसा पूर्व पहली सदी से दिखाई देते हैं, जब हम कई तरह के शिल्प पाते हैं। इनका प्रसार पूर्वी दकन में एक शताब्दी के बाद हुआ। प्लिनी ने लिखा है कि पूर्वी दकन में आंध्र देश में बहुत सारे गाँवों के अलावा दीवार से घिरे 30 नगर थे। इस क्षेत्र में दूसरी और तीसरी सदियों में बहुतायत संख्या में नगर थे। सातवाहनों के अधीन पैठान, अमरावती, धान्यकट्क, नागार्जुनकोंड सभी महत्वपूर्ण नगर केंद्र के रूप में विकसित हुये।

14.5 प्रशासन

सातवाहन प्रशासन को मौर्या प्रशासन एवं क्षेत्रीय तत्त्वों के बीच सामंजस्य का परिणाम देखा जा सकता है | यद्यपि सातवाहनों के अधीन ही दक्कन में राज्य निर्माण की प्रकिया पूरी हुई, किन्तु इस क्षेत्र में अभी भी जनजातीय तत्वों की प्रधानता विद्यमान थी जिन्हें महज सिविल प्रशासन के माध्यम से नियमित करना कठिन था | इसी कारणवश सातवाहन प्रशासन में सैन्य तत्वों की प्रधानता बनी रही | किन्तु मौर्यों के विपरीत सातवाहन प्रशासन में अधिकारी तत्व सीमित हो गया क्योंकि सातवाहन राज्य का क्षेत्र सीमित होने के कारण दायित्व भी सीमित हो गए थे |

14.5.1 केंद्रीय प्रशासन

सातवाहन शासन में भी प्रशासन के राजतंत्रात्मक मॉडल को स्वीकार किया गया | इनके प्रशासन के शीर्ष पर राजा होता था | सातवाहन शासकों ने स्वयं को क्षत्रिय की बजाय ब्राह्मण सिद्ध करने का प्रयत्न किया | गौतमीपुत्र सातकर्णी ने स्वयं को एकमात्र ब्राह्मण घोषित किया फिर वह स्वयं को वर्ण व्यवस्था के रक्षक के रूप में भी प्रस्तुत करता है | वस्तुतः सातवाहन क्षेत्रीय तत्वों का प्रतिनिधित्व करते थे तथा एक शासक के रूप में वैधता प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपना सम्बन्ध ब्राह्मनों से जोड़ा | साथ ही अपनी सत्ता एवं प्रभाव को बेहतर स्वीकृति दिलवाने के लिए उन्होंने अपनी तुलना देवताओं अथात राम, भीम, केशव और अर्जुन जैसे पौराणिक नायकों से आरम्भ की | जिसका स्पष्ट उद्देश्य सातवाहन राजाओं को दैवीय सिद्ध करना रहा होगा | सातवाहन प्रशासन मौर्य प्रशासन से प्रभावित था। अशोक की तरह ही प्रारंभिक सातवाहन शासक राजा कहे जाते थे। रानियां भी देवी अथवा महादेवी की उपाधि धारण करती थी। इस काल की दो रानियां- नागनिका तथा गौतमी बलश्री ने प्रशासन में सक्रिय रूप से भाग लिया। इन रानियों ने स्वाधिकारपूर्वक बड़े-बड़े धार्मिक दान दिए और प्रतिशासक के रूप में भी काम किया।

सातवाहनों के बारे में सबसे दिलचस्प ब्योरा उनके पारिवारिक ढाँचे से संबद्ध है। उत्तर भारत के आर्यों के समाज में पिता का महत्त्व माता से अधिक था | सातवाहनों में हमें मातृतंत्रात्मक ढाँचे का आभास मिलता है। उनके राजाओं के नाम उनकी माताओं के नाम पर रखने की प्रथा थी। गौतमीपुत्र, वासिष्ठीपुत्र आदि नाम बताते हैं कि उनके समाज में माता की प्रतिष्ठा अधिक थी। किन्तु इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि सातवाहन राजाओं के नाम मातृप्रधान अवश्य है लेकिन उत्तराधिकार पिता से पुत्र को वंशानुगत प्राप्त होता था। जहां गुप्त और गुप्तोत्तर राजा **'पितृपादानध्यात'** (अर्थात पिता के चरणों में अनुरक्त) कहे गए हैं वही गौतमीपुत्र सातकर्णि को **'अविपनमातुसुसुक'** (अनवरत मातृसेवा में रत) बताया गया है। ध्यातव्य है कि गौतमीपुत्र सातकर्णि, वासिष्ठीपुत्र पुलमावि, वासिष्ठीपुत्र सातकर्णि, गौतमीपुत्र श्री विजय सातकर्णि और गौतमीपुत्र श्री यज्ञ सातकर्णि के नामों में उनके पिता के नाम नहीं बल्कि माता के नाम जुड़े हुए हैं। महाराष्ट्र के कोल्हापुर जिले में ब्रह्मपुरी नामक स्थान पर वासिष्ठीपुत्र विलिवायकर, माढरीपुत्र सिलवकर और गौतमीपुत्र विलिवायकुर के सिक्के प्राप्त हुए हैं, उससे यह प्रमाणित होता है कि सातवाहनों के उदय के पूर्व से ही दकन में मातृवंशीय प्रथाएं प्रचलित थी। यह प्रथा महारठियों में भी प्रचलित थी।

इसके अतिरिक्त सातवाहन अधिकारियों और सामंतों की पत्नियां भी अपने पति का प्रशासकीय पदनाम धारण करती थीं, जिससे प्रकट होता है कि वे भी अपने पति की बराबरी की प्रतिष्ठा और प्रभाव की दोवेदार थीं। महासेनापत्नी और महातलवारी उपाधियां इसके प्रमाण हैं। एक भूमिदान शासनपत्र का प्रवर्तन

करने वाली महिला लोटा प्रतिहारी (द्वारपालिका) का भी अनोखा उदाहरण मिलता है। ये सारे तथ्य सातवाहन शासनपद्धति में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करते हैं।

सातवाहन राजाओं के कार्यों में सहायता के लिए मंत्रीगण होते थे किन्तु उनकी संख्या स्पष्ट नहीं है | मंत्रियों को **अमात्य** अथवा **महामात्य** कहा जाता था | साथ ही राजकीय कार्यों के संचालन के लिए एक लेखा विभाग होता था | गौतमीपुत्र सातकर्णि तथा वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावी ने प्रान्तों को सामान्यतया किसी सेनानायक के अधीन रखने के लिए **महासेनापति** नामक एक उच्च पदाधिकारी की नियुक्ति की। राज्य के सीमान्त क्षेत्रों की रक्षा के लिए **दुर्गाधिप** नामक महत्वपूर्ण अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। सातवाहनों के अधीन महामात्र कहे जाने वाले अधिकारियों का एक संगठित संवर्ग था उनका उल्लेख सातवाहन अभिलेखों में हुआ है, और एक प्रसंग में वह बौद्ध भिक्षुओं की देखरेख के लिए जिम्मेदार अधिकारी जान पड़ता है। इस तरह मोटे तौर पर उसकी तुलना अशोक के धम्ममहामात्र से की जा सकती है। भूमि अनुदानों या गुफा अनुदानों से संबंधित सभी राजदेशों की सूचना सातवाहन शासक अमात्यों या अमचों को देते थे। सातवाहन लेखों में कुछ अन्य पदाधिकारियों जैसे- **भाण्डागारिक** (कोषाध्यक्ष), **रज्जुक** (राजस्व विभाग प्रमुख), **पनियघरक** (नगरों में जलापूर्ति प्रबन्धक अधिकारी) व **कर्मान्तिक** (भवन निर्माण की देखरेख करने वाला अधिकारी) के भी नाम मिलते हैं |

14.5.2 प्रांतीय प्रशासन

सातवाहन राज्य अशोक के राज्य की ही तरह **आहारों** या **जिलों** में बंटा हुआ था। सातवाहन स्रोतों से हमें **'विषय'** अथवा **'आहार'** की सूचना मिलती है | **'विषय'** अथवा **'आहार'** को **अमात्य** नामक अधिकारी के अंतर्गत रखा जाता था | आहार के नीचे की इकाई **ग्राम** होते थे। ग्राम मुखिया **ग्रामिक** कहलाता था। भू-सम्पन्न तथा किसानों के परिवारों का प्रमुख **गहपति** कहलाता था। **हालिक** भी ग्राम प्रशासन के अधिकारी थे। नगरों का प्रशासन **निगम सभा** द्वारा चलाया जाता था। इसमें व्यापारियों एवं शिल्पियों के प्रतिनिधियों की भागीदारी होती थी। पुरालेखों और उत्खननों से ईस्वी सन की प्रथम दो शताब्दियों में दकन और विशेषकर महाराष्ट्र में जितने अधिक नगरों के अस्तित्व का पता चलता है, प्राचीन इतिहास के अन्य किसी भी काल में इस क्षेत्र में उतने अधिक नगरों के अस्तित्व की जानकारी नहीं मिलती। सातवाहन लेखों में भड़ौच, सोपारा, कल्याण, पैठन (प्रतिष्ठान), गोवर्धन, धान्यकटक जैसे समृद्ध नगरों का उल्लेख मिलता है। गांव का कार्यकारी प्रशासन **गौल्मिक** देखता था। यह सैनिक टुकड़ी का प्रधान होता था, जिसमें नौ रथ, नौ हाथी, पच्चीस घोड़े और पैंतालिस पैदल सैनिक होते थे | गौल्मिक को ग्रामीण क्षेत्रों में इसलिए रखा जाता था कि वह शान्ति व्यवस्था बनाये रख सके व विद्रोही तत्वों को नियंत्रित कर सके | इसके अतिरिक्त अनेक अधिकारी जैसे-

अमात्य, **प्रतीहार** (जिसका प्रथम उल्लेख सातवाहन अभिलेखों में ही हुआ है) एवं **महासेनापति** शासनपत्र लेखक के रूप में कार्य करते थे। सातवाहन राजा शासनपत्रों की देखरेख करनेवाले अधिकारी भी रखते थे, जिन्हें **'पट्टिकापालक'** कहते थे।

सातवाहन स्थानीय प्रशासन अधिकांशत: सामन्तों द्वारा चलाया जाता था। सातवाहन राज्य में सामंतों की **तीन श्रेणियाँ** थीं। **पहली श्रेणी** का सामंत **राजा** कहलाता था और उसे सिक्का ढालने का अधिकार रहता था। **द्वितीय श्रेणी** का **महाभोज** कहलाता था, और **तृतीय श्रेणी** का **सेनापति**। ऐसा लगता है कि इन सामंतों को अपने-अपने इलाकों में कुछ प्रभुत्व प्राप्त था। कार्ले तथा कन्देरी अभिलेखों में महारठी तथा महाभोज का बड़े सामन्तों के रूप में उल्लेख है। उन्हें अपने-अपने क्षेत्र में सिक्के उत्कीर्ण करवाने का अधिकार था। पश्चिमी घाट के ऊपरी भाग के सामन्त महारठी तथा उत्तरी कोंकण के सामन्त महाभोज कहलाते थे। उन्हें भूमिदान का भी अधिकार था।

सातवाहन प्रशासन में सैन्य तत्वों की प्रधानता बनी रही | सातवाहन अभिलेखों में **कटक** और **स्कंधावार** शब्दों का प्रयोग हुआ है | **स्कंधावार** का अर्थ है **'सैनिक मुख्यालय'** अर्थात् कटक और स्कन्धावार सैनिक शिविर और बस्तियां होते थे | वे तब तक प्रशासनिक केन्द्र के रूप में काम करते थे जब तक वहाँ पर राजा स्वयं रहता था |

14.5.3 राजस्व व्यवस्था

समकलीन अभिलेखों से सातवाहन शासकों की आय के अनेक स्त्रोतों की जानकारी मिलती है | जिसमें भाग तथा बलि प्रधान कृषि भूमि से लिया जाने वाला कर था। भाग फसल उत्पादन का 1/6 होता था। शुल्क व्यापारिक लेन-देन पर लगने वाला कर था। सातवाहन काल में वाणिज्य के क्रियाकलाप में अभूतपूर्ण वृद्धि नहीं हुई थी। अतएव वाणिज्य से प्राप्त शुल्क ग्रहण करने में शासक वर्ग की स्वभावतः विशेष उत्सुकता थी। पुलुमावि के कार्ले अभिलेख में कारूकर शब्द का प्रयोग कारीगरों से लिए जाने वाले कर के रूप में हुआ है। देयमेय वाणिज्य व्यवसायिक उत्पादों पर नकद रूप से लिया जाने वाला कर था। राजस्व नकद व माल दोनों रूपों में वसूल किया जाता था। प्लिनी लिखता है कि उरमेनास पर्वत (पाकिस्तान स्थित साल्ट रेंज) से जो नमक उत्पन्न होता है उस पर राजस्व लगाकर राजा जिस मात्रा में सम्पत्ति अर्जित करते थे, उतनी मात्रा में हीरों की खान से भी सम्पत्ति मिलना संभव नहीं था । नमक का यह इलाका तत्कालीन समय में कुषाणों के अधीन था। समकालीन सातवाहनों ने भी नमक की महत्ता को देखते हुए इसे राजस्व के अधीन रखा था।

14.5.4. सातवाहनों के अधीन भूमि अनुदान

सातवाहन लेखों में धार्मिक उद्देश्य से राजकीय आदेश पत्र जारी कर भूमिदान करने की जानकारी मिलती है। भारत में भूमि अनुदान का प्राचीनतम अभिलेखीय साक्ष्य प्रथम शताब्दी ईस्वी में सातकर्णि प्रथम की रानी नागनिका द्वारा निर्गत नानाघाट अभिलेख है, जिसमें उल्लेख मिलता है कि अश्वमेघ यज्ञ के पुरोहितों को दक्षिणा के रूप में ग्राम दान किये गये थे। सातवाहन बौद्ध भिक्षुओं तथा ब्राह्मणों को भूमि अनुदान देने वाले प्राचीनतम शासक थे। इन अनुदानों के फलस्वरूप बौद्ध भिक्षु और ब्राह्मण दोनों समान रूप से सातवाहन राज्यव्यवस्था में महत्वपूर्ण तत्व बन गए। राजा जब भूमिदान करता था तब उस भूमि से जुड़े कर की मुक्ति तथा विशेषाधिकारों की घोषणा की जाती थी। दूसरी शताब्दी ई० में उसवदात के द्वारा निर्मित नासिक गुफा अभिलेख में वर्णित है कि दानकर्ता ने देवताओं और ब्राह्मणों के लिए 16 गांवों को दान में दिया था। साथ ही उस गुफा आश्रयणी में रहने वाले बौद्ध भिक्षुओं के भोजन की व्यवस्था के लिए एक खेत दान में दिया था। गौतमीपुत्र सातकर्णी द्वारा निर्गत नासिक गुफा अभिलेख में यह उल्लेख किया गया है कि उसने बौद्ध भिक्षुओं के लिए गांव के निकट स्थित एक खेत को दान में दिया जो पहले उसवदात के नियंत्रण में था। वस्तुतः यह पहला अभिलेख है जिसमें भूमि दान के साथ शुल्क मुक्ति और अन्य विशेषाधिकारों की चर्चा की गयी है। इसमें उद्धृत है कि सैन्य अभियानों के दौरान शाही सेना के द्वारा इन खेतों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। इनका नमक निकालने के लिए प्रयोग नहीं होगा तथा ये राजकीय अधिकारियों के नियंत्रण से मुक्त रहेंगे और इसके अतिरिक्त कई प्रकार के परिहारों अथवा सुविधाओं का उपभोग कर सकेंगें।

चूंकि दक्कन या सुदूर क्षेत्र के जनजातीय क्षेत्रों का न तो पूरी तरह आर्यीकरण हुआ था और न ही वे अपने को नए शासन के अनुकूल बना पाये थे। इसलिए उन्हें प्रबल सैनिक नियंत्रण में रखना आवश्यक था | जनजातीय तत्वों पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए महज सैनिक तत्व ही पर्याप्त नहीं हो सकते थे | यही वजह है कि आर्य संस्कृति के प्रसार के माध्यम से भी राज्य ने अपनी शक्ति एवं प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करने का निर्णय लिया। फिर भूमि अनुदान के माध्यम से राज्य के द्वारा दूरवर्ती क्षेत्रों में ब्राह्मणों एवं बौद्ध भिक्षुओं को स्थापित किया गया | जिसके फलस्वरूप ब्राह्मणों के द्वारा वर्णव्यवस्था का प्रसार किया गया वहीं बौद्ध भिक्षुओं ने भी लोगों को अनुशासित जीवन जीने की शिक्षा दी | इस प्रकार भूमि अनुदान राजकीय शक्ति एवं प्रभाव के विस्तार का एक माध्यम बन गया। किन्तु भूमि अनुदान के कारण केन्द्रीकरण की शक्ति को धक्का लगा तथा आगे चलकर विघटनकारी प्रवृत्ति को बल मिला| आरम्भ में दानग्रहीता को केवल राजस्व वसूल करने का अधिकार दिया गया था किन्तु आगे इस क्षेत्र में सरकारी अधिकारियों का प्रवेश वर्जित हो गया और फिर दानग्रहीताओं को प्रशासनिक अधिकार भी सौंपे जाने लगे। अतः अब इन क्षेत्रों की स्थिति स्वायत्त क्षेत्र की तरह हो गयी थी।

14.5.5 धर्म

सातवाहन शासक ब्राह्मण थे और उन्होंने ब्राह्मणवाद के विजयाभियान का नेतृत्व किया। आरंभ से ही राजाओं और रानियों ने अवश्मेध, वाजपेय आदि वैदिक यज्ञ किए। यह कृष्ण एवं वासुदेव जैसे वैष्णव देवताओं के भी उपासक थे। यज्ञानुष्ठानों में ब्राह्मणों को उन्होंने प्रचुर दक्षिणा दी। फिर भी, सातवाहन शासकों ने भिक्षुओं को ग्रामदान देकर बौद्ध धर्म को आगे बढ़ाया। उनके राज्य में बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय का बोलबाला था, विशेषकर शिल्पियों के बीच आंध्रप्रदेश में नागार्जुनकोंड और अमरावती नगर सातवाहनों के शासन में और विशेषकर उनके उत्तराधिकारी इक्ष्वाकुओं के शासन में बौद्ध संस्कृति के महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गए। इसी प्रकार, महाराष्ट्र में पश्चिमी दकन के नासिक और जुनार क्षेत्रों में भी संभवतः व्यापारियों का संरक्षण पाकर बौद्ध धर्म के प्रसार में वृद्धि हुई ।

14.5.6 समाज

सातवाहन युगीन समाज वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था पर आधारित था। परंपरागत चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। सातवाहन नरेश स्वयं ब्राह्मण थे। नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र को अद्वितीय ब्राह्मण कहा गया है, जिसने समाज में वर्णाश्रम धर्म को प्रतिष्ठित करने तथा वर्णसंकरता को रोकने का प्रयास किया था। इस समय अनेक नवीन जातियाँ व्यवसाय के आधार पर संगठित होने लगी थी। इस काल के समाज की प्रमुख विशेषता शकों तथा यवनों का भारतीयकरण करना रहा | जिसमें अनेक शकों के नाम भारतीयकृत मिलते हैं, जैसे धर्मदेव, श्रषभदत्त, अग्निवर्मन् आदि। हिन्दुओं के समान ही वे तीर्थ-यात्रा पर जाते थे | यज्ञों का अनुष्ठान करते थे तथा ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते थे। यद्यपि सातवाहन नरेशों ने वर्ण-संकरता को रोकने का प्रयास किया था, फिर भी व्यवहार में अंतर्जातीय विवाह होते थे। शातकर्णी प्रथम ने अंग कुल की महारठी (क्षत्रिय) की पुत्री नागनिका से तथा पुलुमावी ने रुद्रदामन् की पुत्री से विवाह किया था।

सातवाहन कालीन समाज में स्त्रियों की अच्छी स्थिति थी | इसका अनुमान तथ्य से लगाया जा सकता है कि वे संपत्ति की भी स्वामिनी होती थीं। मूर्तियों में हम उन्हें अपने पतियों के साथ बौद्ध प्रतीकों की पूजा करते हुये, सभाओं में भाग लेते हुये तथा अतिथियों का सत्कार करते हुये पाते हैं। उनके सावर्जनिक जीवन को देखते हुये ऐसा स्पष्ट है कि वे पर्याप्त शिक्षित होती थी, तथा पर्दाप्रथा से अपरिचित थी। नागनिका ने अपने पति की मृत्यु के बाद शासन का संचालन किया था। बलश्री ने अपने पुत्र गौतमीपुत्र के साथ मिलकर शासन किया था। सातवाहन राजाओं के नाम का मातृप्रधान होना स्त्रियों की सम्मानपूर्ण सामाजिक स्थिति का सूचक माना जा सकता है।

14.5.7 कला

सातवाहन काल में पश्चिमोत्तर दकन या महाराष्ट्र में अत्यंत दक्षता और लगन के साथ ठोस चट्टानों को काट-काटकर अनेक चैत्य और विहार बनाए गए। वस्तुतः यह प्रक्रिया 200 ई०पू० के लगभग एवं प्रथम शताब्दी के बीच आरंभ हो चुकी थी। चैत्य बौद्धों के मंदिर का काम करते थे और विहार भिक्षु-निवास का। सबसे मशहूर चैत्य है पश्चिमी दकन में कार्ले का। यह लगभग 40 मीटर लंबा, और 15 मीटर ऊँचा है। यह विशाल शिला- वास्तुकला का बेहतरीन उदाहरण है। विहार चैत्यों के पास बनाए गए। उनका उपयोग वर्षाकाल में भिक्षुओं के निवास के लिए होता था। नासिक में तीन विहार हैं। चूँकि उनमें नहपान और गौतमीपुत्र के अभिलेख हैं | इसलिए प्रतीत होता है कि वे ईसा की पहली एवं दूसरी शताब्दियों के हैं।

शिलाखंडीय वास्तुकला आंध्र में कृष्णा-गोदावरी क्षेत्र में पाई गयी है, परंतु यह क्षेत्र वस्तुतः स्वतंत्र बौद्ध संरचनाओं के लिए मशहूर है। ये संरचनाएँ अधिकतर स्तूप के रूप में हैं। इनमें अमरावती और नागार्जुनकोंड के स्तूप सबसे अधिक मशहूर हैं। अमरावती स्तूप का निर्माण लगभग 200 ई० पू० में आरंभ हुआ, किंतु ईसा की दूसरी सदी के उत्तरार्द्ध में आकर वह पूर्णरूप से निर्मित हुआ। अमरावती का स्तूप भित्ति-प्रतिमाओं से भरा हुआ है। इनमें बुद्ध के जीवन के विभिन्न दृश्य उकरे हुए हैं। नागार्जुनकोंड सातवाहनों के उत्तराधिकारी इक्ष्वाकुओं के काल में अपने उत्कर्ष की चोटी पर था। यहाँ केवल बौद्ध स्मारक ही नहीं, बल्कि सबसे पुराने ईंट के बने हिंदू मंदिर भी हैं। यहाँ लगभग दो दर्जन विहार दिखाई देते हैं। अपने स्तूपों और महाचैत्यों से अलंकृत यह स्थान ईसा की आरंभिक सदियों में मूर्तिकला में सबसे उच्च प्रतीत होता है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. 'गाथासत्तसई' की रचना किसने की |
(क). सिमुक (ब) राजा हाल
(स). राजा हर्षवर्धन (द). कौटिल्य

2. सातवाहन वंश का संस्थापक कौन था |
(अ). गौतमीपुत्र (ब). कृष्ण
(स). सिमुक (द). सातकर्णी प्रथम

3. 'दक्षिणापथेश्वर' किस शासक की उपाधि है |
(अ). राजा हाल (ब). गौतमीपुत्र सातकर्णी
(स). वशिष्ठपुत्र पुलुमावी (द). सम्राट अशोक

4. सीसे, पोटीन, ताम्बा एवं कांसा के सिक्के किस वंश के शासकों ने चलाये |

(अ). सातवाहन वंश (ब). मौर्या वंश

(स). शुंग वंश (द). कुषाण वंश

14.6 सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्च्यात जहाँ उत्तरी भारतीय भूभाग में कण्व एवं कुषाण साम्राज्य द्वारा अपनी शासन सत्ता का मजबूती के साथ प्रतिनिधित्व किया गया वहीं दक्षिण भारत में सातवाहन शासकों के द्वारा एक मजबूत राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक शासन सत्ता की स्थापना की गई | सातवाहन शासकों द्वारा न केवल अपने साम्राज्य के प्रसार के लिए समकलीन शक- क्षत्रप जैसी मजबूत राजनीतिक शक्तियों से निरंतर युद्ध किया गया वरन अपने साम्राज्य को आर्थिक मजबूती देने के लिए आंतरिक एवं विदेशी व्यापार को बढावा दिया गया | साथ ही सातवाहन शासकों द्वारा धर्म एवं संस्कृति के प्रसार का कार्य भी किया गया | ईसा की आरंभिक शताब्दियों में धर्म के क्षेत्र में आर्य एवं गैर- आर्य तत्वों के बीच मिश्रण देखा गया | इसके परिणामस्वरूप धर्म का वह रूप सामने आया जिसकी पहचान आगे हिन्दू धर्म के रूप में हुई |

14.7 तकनीकी शब्दावली

काहापण/ कार्षापण- व्यापक रूप से प्रचलित बहुधा चाँदी के सिक्के |

कटक व **स्कंधावार** – यह **सैनिक मुख्यालय'** अर्थात् सैनिक शिविर और बस्तियां होते थे |

देयमेय – (सातवाहन अभिलेख) नकद या वस्तु रूप में राजा का भाग |

स्तूप – एक गोल स्तंभाकार ढाँचा जो बुद्ध के किसी अवशेष के ऊपर खड़ा किया जाता था।

1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1- ब. राजा हाल

2- स. सिमुक

3- स. वाशिष्ठपुत्र पुलुमावी

4- अ. सातवाहन शासकों ने

14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, उपेन्द्र., ए हिस्ट्री ऑफ एन्शिएंट एंड अर्ली मिड़ेवल इंडिया, दिल्ली, 2009.
2. शर्मा, रामशरण., प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2010.
3 . महाजन, बी. डी., प्राचीन भारत का इतिहास, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005.

4. चक्रवर्ती, रणवीर., हिन्दी अनुवाद- उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', भारतीय इतिहास का आदिकाल- प्राचीनतम पर्व से ६०० ईस्वी तक, ओरिएंट ब्लेकस्वान पब्लिकेशन, 2012.

5. झा, डी०एन०., प्राचीन भारत एक रुपरेखा, पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम मुद्रण- 1980, इक्कीसवां संशोधित मुद्रण- 2012.

14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बाशम, ए. एल., अद्भुत भारत, अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972.

2. मित्तल, ए०के०., भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास- सिन्धु सभ्यता से 1206 ई०, साहित्य भवन, आगरा, 1995.

3. त्रिपाठी, रमाशंकर., प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित, श्री जैनेन्द्र प्रेस, नई दिल्ली, 1977, संशोधित मुद्रण-2007.

4. https://egyankosh.ac.in

5. https://ncert.nic.in/ncerts/l/lehs103.pdf

6. https://en.wikipedia.org/wiki/Satavahana_dynasty

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. सातवाहन कौन थे | सातवाहनों के राजनीतिक इतिहास का विवरण दीजिए |

2. सातवाहनों की भौतिक संस्कृति एवं प्रशासनिक शासन पद्धति की व्याख्या कीजिए |

इकाई पन्द्रह

संगमकालीन दक्षिण भारत एवं संगम साहित्य

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 दक्षिण भारत की भौगोलिक पृष्ठभूमि
    15.3.1 प्रायद्वीपीय पठारी भाग
    15.3.2 समुद्रतटीय मैदान
15.4 संगम का तात्पर्य
15.5संगमों की संख्या और अन्य साहित्यिक रचनाएँ
15.6संगमकालीन राजनैतिक इतिहास
15.7 संगमकालीन समाज

15.7.1 भूमि के पाँच प्रकार/ तिनै की अवधारणा
15.7.2तमिल समाज के विभिन्न वर्ग
15.7.3 संगम समाज में स्त्री दशा
15.7.4 विवाह व्यवस्था
15.7.5 आवास, मनोरंजन और खानपान
15.7.6 धार्मिक जीवन और मृतक संस्कार
15.8 संगमकालीन आर्थिक जीवन
15.9 तकनीकी शब्दावली
15.10 सारांश
15.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न
15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.14 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

प्रथम शताब्दी ई. पू. से पहले लगभग ५०० ई. पू. के आस-पास दक्षिण भारत में भी उत्तर भारत की ही भांति कई स्वंतंत्र राज्यों का अस्तित्व था। इन राज्यों में चोल, पांड्य, तथा चेर राज्य विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थे। प्रायद्वीपीय भारत का दक्षिणी हिस्सा जो कि कृष्णा और तुंगभद्रा नदी के बीच अवस्थित था **‘तमिलकम या तमिषकम प्रदेश’** के नाम से विख्यात था। मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखों (अभिलेख संख्या २,५,१३) से भी इन शासकों के मौर्य साम्राज्य की सीमाओं के दक्षिणी हिस्से में होने तथा इन राज्यों के साथ मौर्य साम्राज्य के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने की अभिपुष्टि होती है। अशोक के अभिलेख में हमें **सतियपुत्तों** का उल्लेख भी देखने को मिलता है, हालांकि इनकी पहचान अभी तक उजागर नहीं की जा सकी है। अशोक के बाद कलिंग के शासक **‘खारवेल’** के अभिलेख से भी हमें तमिल देश के राज्यों का पुरातात्विक सन्दर्भ देखने को मिलता है। इसके अभिलेख में वर्णित है की उसने अपने शासनकाल के ११वें वर्ष में तमिल राज्यों के एक संघ- **‘त्रामिरादेसांगतम’** पर हमला कर उसे नष्ट कर दिया था जो कि ११३ साल पुराना संघ था। आगे लिखा है की इस दौरान उसने पांड्य राज्य से सैकड़ों की

संख्या में मोती प्राप्त किये और साथ ही वह कई घोड़े, हाथी, स्वर्ण-आभूषण और माणिक भी अपने साथ कलिंग ले आया था। हालांकि अभी भी इस बात की कोई जानकारी पूर्णतः उपलब्ध नहीं है कि किस प्रकार तमिल संघ से खारवेल के लिए संकट उत्पन्न हो गया था और पांड्य राजाओं से उसके कैसे सम्बन्ध स्थापित थे।

ऐतहासिक दृष्टिकोण से इन अभिलेखों से पूर्व में **कौटिल्य** और **मेगस्थनीज** जैसे लेखकों की रचनाओं में भी इन राज्यों का उल्लेख देखने को मिलता है। एक और जहाँ मेगस्थनीज जो कि पाटलिपुत्र का निवासी था उसे पांड्य राज्य की जानकारी थी, वहीं संगम ग्रन्थ के प्रारंभिक लेखक भी गंगा, सोन नदी और पाटलिपुत्र (मगध साम्राज्य की राजधानी) से परिचित थे।इसके अतिरिक्त **वैदिक ग्रन्थ ऐतरेय आरण्यक** में भी एक स्थान पर **'चेरपदा'** का उल्लेख करते हुए यह बतलाया गया है कि यहाँ के निवासी आर्य-संस्कृति और उसकी परम्पराओं का बहिष्कार करने वाले हैं। साथ ही इसी ग्रन्थ में **विदर्भ राज्य** का वर्णन और उसके शासक **'भीम'** का उल्लेख भी किया गया है। परन्तु इन साक्ष्यों के बाद भी दक्षिण भारतीय राज्यों के बारे में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

दक्षिण भारत को जानने का प्रमुख स्रोत संगम साहित्य को माना जाता है, इन संगम साहित्यों का संकलन ईसा की तीसरी- चौथी शताब्दी के दौरान हुआ था। उत्तर भारतीय वैदिक ग्रंथों में भी इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं की शनैः-शनैः ही सही वैदिक संस्कृति का प्रसार दक्षिण भारत की ओर हो रहा था, आगे हम संगम साहित्य में उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय संस्कृतियों का श्रेष्ठ समन्वय देखते हैं।फिर भी इन साहित्यों के माध्यम से हमें चेर, चोल, तथा पांड्य राज्यों की पूर्ण राजनैतिक गतिविधियां, शासकों के कालक्रम, तिथिक्रम इत्यादि की जानकारी प्राप्त नहीं होती परन्तु यह संगम साहित्य,तत्कालीन दक्षिण भारतीय जीवन के समस्त पहलूओं यथा सामजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन के बारे में यथेष्ट जानकारी मुहैयाकरवाने के साथ साथ दक्षिण भारत के वैदेशिक व्यापार संबंधों पर भी प्रकाश डालता है। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि संगमकालीन साहित्य का एक विपुल भण्डार रहा होगा और समय के थपेड़ों को सहन करते हुए जो कृतियाँ शेष रह गई आज वह हमें संगम-साहित्य के रूप में उपलब्ध हैं।

15.2 उद्देश्य

इस अध्याय के माध्यम से आप संगमकालीन दक्षिण भारत और संगम साहित्य से भली-भांति परिचित हो सकेंगे। इस से पूर्व के अध्यायों में आपने उत्तर भारत की राजनैतिक, सामजिक, आर्थिक स्थिति का अध्ययन कर लिया है अब आप इस अध्याय में संगमकालीन भारत का विस्तार में अध्ययन करेंगे।

15.3 दक्षिण भारत की भौगोलिक पृष्ठभूमि

दार्शनिक **'कांट'** ने सत्य ही कहा है कि **'इतिहास का वास्तविक आधार भूगोल है।'** वस्तुतः किसी भी देश या क्षेत्र की ऐतिहासिक गतिविधियों को निर्धारित करने में वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियां ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारतीय भूमि के दक्षिणी हिस्से को प्रायद्वीपीय भारत के नाम से भी जाना जाता है। भारतीय मुख्य भूमि

से लगा यह प्रायद्वीपीय त्रिभुजाकार हिस्सा सुदूर दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्तार लिए हुआ है। प्रायद्वीपीय भूमि से आशय समुद्र में तीन तरफ से घिरी हुई भूमि से होता है और इसी कारण भारतीय इतिहास में भी इस भूमि का उल्लेखनीय योगदान रहा है। जिस प्रकार उत्तर भारत के सन्दर्भ में महान हिमालय की भूमिका को नहीं नकारा जा सकता उसी प्रकार पूर्वी एवं पश्चिमी घाट की पहाड़ियों सहित विन्ध्य पर्वत श्रेणी के महत्त्व को भी कम कर के नहीं आँका जा सकता।इस प्रायद्वीपीय भारत की उत्तरी सीमा का निर्धारण विन्ध्य एवं सतपुड़ा श्रेणी से, पूर्व मेंबंगाल की खाड़ीऔर कोरोमंडल तट से, पश्चिम की तरफ अरब सागर (मालाबार तट) और दक्षिण की तरफ हिंद महासागर से रेखांकित होता है।

भौगोलिक भिन्नता के बावजूद भी उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के मध्य विद्यमान सांस्कृतिक अवचेतना में कोई विशेष अंतर देखने को नहीं मिलता, इसका प्रमुख कारण विन्ध्य पर्वतमाला और सतपुड़ा श्रेणी में अवस्थित वे दुर्गम मार्ग हैं जिन्हें समय समय पर महत्वकांक्षी शासकों, दार्शनिकों/विचारकों, व्यापारियों इत्यादि द्वारा धर्म और संस्कृति के आदान-प्रदान के लिए उपयोग में लाया गया था। जैन, बौद्ध, ब्राह्मण, आजीवक धर्म को मानने वाले संतों तथा उनके अनुयायियों के साथ-साथ व्यापारिक क्रियाकलापों ने भी इस दिशा में मार्ग प्रशस्त किया होगा।

उच्चावच की दृष्टि से हम प्रायद्वीप भारत को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं-

१. प्रायद्वीपीय पठारी भाग।

२. समुद्रतटीय मैदान।

15.3.1 प्रायद्वीपीय पठारी भाग

भारतीय मुख्य भूमि में गंगा के मैदान से दक्षिण में त्रिभुजाकार पठारी प्रायद्वीप अवस्थित है जो कि प्राच्य **गोंडवाना लैंड** का हिस्सा रहा है और इसकी चौड़ाई दक्षिण दिशा में न्यून होती चली जाती है। यह भारतीय मुख्य भूमि का सबसे प्राचीन भाग है जिसका निर्माण कठोर चट्टानों से हुआ है। इस क्षेत्र की ऊँचाई ६०० से ९०० मीटर तक है और इस क्षेत्र में अनेक छोटी-छोटी पहाड़ियां अवस्थित हैं| पठार के उत्तरी भाग में जहाँ अरावली, विन्ध्य, और सतपुड़ा जैसी पहाड़ी श्रेणियाँ विद्यमान हैं वहीं इसके पूर्वी तथा पश्चिमी हिस्से में क्रमशः पूर्वी घाट और पश्चिमी घाट की श्रेणियाँ अवस्थित हैं। उत्तर-पूर्व में अवस्थित शिलांग की पहाड़ियां (मेघालय की पहाड़ियां) भी इसी का हिस्सा हैं। इस प्रायद्वीपीय पठार का ढाल उत्तर से पूर्व दिशा की ओर है जिसे हम चम्बल, सोन तथा दामोदर नदी के प्रवाह क्षेत्र से भी अनुमानित कर सकते हैं। इसके दक्षिणी हिस्से में ढाल पश्चिम से पूर्व दिशा की तरफ है जहाँ महानदी, गोदावरी, कृष्ण और कावेरी नदी की दिशा इसे इंगित करती है। पश्चिमी घाट जिसकी लम्बाई लगभग १५०० किमी. तथा चौड़ाई ३० से १२० किमी. तक है, पूर्वी घाट की अपेक्षा अधिक ऊँची भूमि है। ऐतिहासिक ग्रंथों में इन घाटों के उत्तरी भाग को सह्याद्री तथा दक्षिणी भाग को मलय पर्वत नाम से पुकारा गया है। पश्चिमी घाट पर्वत श्रृंखला की ऊँचाई २००० से लेकर ८७०० फीट तक पायी जाती है (नीलगिरि- ८७६० फीट)इसका

विस्तार ताप्ती के मुहाने से लेकर कन्याकुमारी अंतरीप तक लगभग १६०० किमी. का विस्तार लिए हुआ है।वस्तुतः यह कोई पर्वत श्रेणी न होकर प्रायद्वीपीय पठार का ही एक भ्रंश कगार है, यह भ्रंश उस बात का प्रतीक माना जाता है जब भारतीय मुख्य भूमि का अफ्रीकी भूमि से अलगाव हुआ था।

इन्हीं पर्वत मालाओं के बीच कुछ प्रमुख दर्रे (थालघाट, भोरघाट, पालघाट आदि) भी हैं जिनके बीच से यातायात के सुगम मार्गों का निर्माण किया गया है।

15.3.2 समुद्रतटीय मैदान

यह समुद्रतटीय मैदान पठारी भू-भाग के पूर्व (हिंद महासागर) और पश्चिम (अरब सागर) में अवस्थित हैं। पश्चिम तटीय समुद्री मैदान कच्छ की खाड़ी से लेकर सुदूर दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्तृत है। इसकी चौड़ाई गुजरात में सर्वाधिक (८० किमी.) तथा दक्षिण की तरफ घटती चली जाती है।इसके उत्तरी भाग जो कि गुजरात से गोवा के मध्य पड़ता है को कोंकण तट, तथा दक्षिणी भाग जो कि मंगलौर से कन्याकुमारी के आस-पास अवस्थित है को मालाबार तट कहते हैं। इसी मालाबार तट में पश्च जल और लैगून मुख्यतया पाए जाते हैं, अर्थात यह वे जलीय भाग हैं जिन्हें स्थल भाग द्वारा चारों तरफ से घेर लिया गया है।यह मैदान उपजाऊ होने के साथ साथ प्रायः एक सपाट भू-आकृति का निर्माण करता है। इस तट पर **सूर्पारक** (सोपरा), **भृगुकच्छ** (भड़ौच), **कल्याणी** (कल्याण), **कोषिक्कोड** (कालिकट) आदि बंदरगाह अवस्थित थे। इस क्षेत्र में काजू, ताड़, नारियल और सुपारी आदि की पैदावार अच्छी होती है।

पूर्वी समुद्रतटीय मैदान, महानदी की घाटी से दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला हुआ है, यह मैदान पश्चिम तटीय मैदान की अपेक्षा अधिक चौड़ा है और इसकी चौड़ाई दक्षिणी भाग में अधिक है। इस मैदान के उत्तरी भाग (ओडिशा और आन्ध्र का तटवर्ती मैदान) को उत्तरी सर्कार, उत्कल तट या कलिंग तट के नाम से तथा दक्षिणी भाग को कोरोमंडल तट (तमिलनाडु के पास) के नाम से जाना जाता है।मानसून के निवर्तन के समय कोरोमंडल तट पर ही सर्वाधिक वर्षा होती है। चूंकि प्रायद्वीप भारत का ढलान पूर्व दिशा की और है इस वजह से प्रायद्वीप भारत की अधिकांश नदियाँ पूर्व की और प्रवाहित होती हैं। (अपवाद- नर्मदा, तापी, भारतपूझा)इस तट पर महानदी, गोदावरी कृष्ण, कावेरी जैसी नदियों ने डेल्टा का निर्माण किया है जिस कारण यह क्षेत्र अत्यधिक उपजाऊ और घनी आबादी से आवासित है। इसके साथ ही इस तट पर भी कई प्रसिद्ध लैगून देखने को मिलते हैं उदहारणस्वरुप चिल्का, कोलेरू, पुलीकट। इस तट के प्रमुख बंदरगाहों में शामिल हैं- **कावेरीपट्टनम, कोरकै, महाबलिपुरम और मद्रास।**

15.4 संगम का तात्पर्य

संगम या संघम शब्द प्राचीन तमिल भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ 'संगोष्ठी परिषद या सभा या संस्थान' से है। प्रथम दृष्टया दक्षिण भारतीय जन जीवन को जानने का मुख्य स्त्रोत संगम साहित्य को ही माना जा सकता है। रामशरण शर्मा जी के मतानुसार, ये संगम तमिल कवियों का संघ या सम्मलेन था जिनका आयोजन संभवतः किसी सामंत या राजा के अधीन किया जाता था।इन कवियों को राजसहायता उपलब्ध थी जिस कारण विशाल संगम साहित्य की रचना हो सकी।इन संगमों के बारे में कोई पुख्ता जानकारी न होने के कारण यह बता पाना मुश्किल है की इन संगमों की संख्या कितनी थी और इनकी बैठकें कब-कब आयोजित की गई थी। लेकिन ईसा की ८वीं सदी में इरैयनार अगप्पोरुल द्वारा लिखे गए भाष्य की भूमिका से हमें यह ज्ञात होता है कि कुल **तीन संगमों** का आयोजन किया गया था जो **९,९९० वर्ष** तक चले और इनमें **८,५९८ कवियों** ने भाग लिया तथा इन्हें कुल **१९७ पांड्यराजाओं** द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया था। सर्वप्रथम इन संगम का आयोजन पांड्य राजाओं द्वारा किया गया, इन राजाओं द्वारा समय समय पर कवियों (बुद्धिजीवियों)को उचित सम्मान के साथ-साथ बृहत् स्तर पर पारितोषिक राशि भी प्रदान की जाती थी। संगम साहित्य में वर्णित साक्ष्यों के आधार पर इस बात की जानकारी मिलती है कि चोल शासक **'करिकाल'** ने एक बार एक कवि की रचनाओं से प्रसन्न होकर उसे १६,००,००० स्वर्ण मुद्राएँ प्रदान की थी। हालाँकि यह भी संभव है कि संगम साहित्य की यह इतनी लंबी अवधि दर्शाना संगम साहित्य को प्राचीन दिखने तथा उसे इतिहास में गरिमामय स्थिति प्रदान करने के लिए किया गया हो।

रामशरण शर्मा के अनुसार, हम पूरे संगम साहित्य को मुख्यतया दो भागों में विभाजित कर सकते हैं- **आख्यानात्मक और उपदेशात्मक**। आख्यानात्मक ग्रन्थ (**पथिनेनमेलकणक्कु**) में १८ मुख्य ग्रन्थ हैं जिसमें ८ पद्य संकलन (**एत्तुतोकै**) तथा १० ग्राम्य गीत (**पथ्थुपत्तु**) हैं, इन्हें **वीरगाथा काव्य** भी कहते हैं क्योंकि इनमें वीर पुरुषों की प्रसंशा में कसीदे गढे गए हैं तथा समाज में चल रहे अनवरत युद्धों और पशुओं की चोरी का उल्लेख किया गया है। वहीं उपदेशात्मक ग्रन्थ में १८ लघु ग्रन्थ सम्मिलित हैं, जिनके रचनाकार संस्कृत और प्राकृत भाषा के जानकार ब्राह्मण पंडित हैं। इसमें राजा और उसकी प्रजा के साथ साथ विभिन्न व्यापार कर्म में लगे वणिकों के लिए भी आचार-नियम बतलाये गए हैं।

आचार्य नीलकंठ शास्त्री के मतानुसार,मोटे तौर पर यह साहित्य संकुल हमें निम्न ९ ग्रंथों में संकलित मिलता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं- (1)**नरिणई** (Narrinai) (2) **कुरुन्दोगई** (kurundogai) (3) **ऐन्गेरनुरु** (Aingurunuru) (4) **पदिर्रपुतु** (Padirruppattu) (5) **परिपादल** (Paripadal) (6) **कलितौगे** (kalittogai) (7) **अहनानुर**(Ahananuru)और (8)**पुरनानूरु** (purananuru) (9)**पत्तूपप्पातू**(pattuppattu)। इन संग्रहों में कुल २२८९ कवितायें और १०२ अज्ञात लेख प्रकाशित किये गए हैं, जिनकी रचना कुल ४७३ कवियों द्वारा की गई है और इनमें महिला लेखिका भी शामिल हैं। इन संग्रह ग्रंथों में उपलब्ध कविताओं में कुछ कविताएँ तीन से पांच पंक्तियों के बीच और एक कविता ८०० पंक्तियों की भी लिखी गई है।कविताओं के अंत में लेखक का नाम तथा रचना के स्थान- विशेष का भी उल्लेख किया गया है। शास्त्री जी के अनुसार कविताओं के

अंत में यह टिप्पणियां बाद में संपादक द्वारा की गई होंगी।उपर्युक्त संग्रह ग्रंथों में संकलित रचनाएँ ईसा पूर्व में विकसित तमिल समाज की संस्कृति तथा उनकी मान्यताओं का अच्छा विवरण प्रदान करती हैं।

15.5 संगमों की संख्याऔर अन्य साहित्यिक रचनाएँ

हम ऊपर बता चुके हैं कि तमिल अनुश्रुतियों के अनुसार कुल तीन संगमों का आयोजन किया गया था, यह संगम पांड्य शासकों के राज में उनकी राजधानी मदुरै और कपाटपुरम में आयोजित किये गए थे। आगे इन तीनों संगमों की संक्षिप्त में जानकारी दी जा रही है।

- **प्रथम संगम:-** इस प्रथम संगम का आयोजन पांड्य राज्य की राजधानी मदुरै में किया गया और इसकी अध्यक्षता आचार्य अगस्त्य ऋषि द्वरा की गई जिन्हें दक्षिण भारत में आर्य-संस्कृति के प्रचार-प्रसार का श्रेय दिया जाता है। इस प्रथम संगम में कुन्नमेरिद, मुरुग्वल, तिरिपुरमेरिथ मुरिन्जयुर आदि जैसे कवियों का अतुलनीय योगदान रहा था। इस दौरान कुल ४,४९९ कवियों की रचनाएँ प्रकाशित की गई थी जिन्हें ८९ पांड्य शासकों ने सरंक्षण प्रदान किया और यह संगम ४४०० वर्ष तक चला था।हालाँकि यह संगम की यह अवधि बढा-चढा कर लिखी गई प्रतीत होती है। वर्तमान समय में इस संगम में लिखे गया कोई भी ग्रन्थ कअब उपलब्ध नहीं है।
- **द्वितीय संगम:-**पाण्ड्य शासकों द्वारा दूसरे संगम का आयोजन कपाटपुरम या अलवै नामक स्थान पर किया गया और इसकी अध्यक्षता अगस्त्य ऋषि और उनके शिष्य तोल्कपियार द्वारा की गई थी। इस संगम में कुल ४९ सदस्यों द्वारा भाग लिया गया और इसे ५९ पांड्य शासकों द्वारा सरंक्षण प्रदान किया गया था। इस संगम की अवधि भी ३७०० वर्ष वर्णित की गई है जो स्पष्ट तौर पर असंदिग्ध प्रतीत होती है। इस काल खंड के दौरान कुल ३७,००० कविताओं का प्रकाशन किया गया जिसमें से कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं अगत्तियम्, मापुरानम्, कलि, कुरुक आदि।बताया जाता है की प्रथम संगम की ही भांति इस संगम की भी साहित्यिक रचनाएँ विनष्ट हो चुकी हैं।
- **तृतीय संगम:-**इस संगम के आयोजन स्थल होने का गौरव भी मदुरै नगर को प्राप्त है और इसकी अध्यक्षता नक्कीरर नामक महाकविद्वारा की गई थी। इस संगम के दौरान ४४९ कवियों ने अपना योगदान दिया और इसकी अवधि १८५० वर्ष बताई जाती है। इस संगम के गौराशाली ग्रन्थों में शामिल हैं- नूत्रैम्बत्थ, वरि, परिपाडल, नेद्रुकथोकै, नत्रिनै, कुत्थ परिसै तथा पदित्रुपत्तु आदि। संगम साहित्य के जो भी ग्रन्थ वर्तमान समय में प्राप्त हैं वे सभी इसी युग से सम्बंधित हैं।

इन सभी रचनाओं का संरक्षण करने में विद्वान **'यू. वी. स्वामीनाथन अय्यर'** का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है, उन्होंने ही सर्वप्रथम प्राचीन पांडुलिपियों का संरक्षण एवं संग्रहण कर उन्हें प्रकाशित करवाया था।

इस युग की एक अन्य महत्त्वपूर्ण रचना **'तोल्कापियम'**है। इसके रचनाकार **'तोल्कपियार'**, अगस्त्य ऋषि के प्रमुख शिष्य थे और यह कृति,तमिल व्याकरण की प्रसिद्ध पुस्तक है। इस पुस्तक में उन्होंने तमिल साहित्य की रचना के लिए नियमों-विनियमों का प्रतिपादन किया है साथ ही इस पुस्तक के कुल तीन भाग हैं- **एलुत्ततिकरम** (वर्तनी),**चोल्लतिकरम** (वाक्य संरचना और उसकी व्युत्पत्ति), **पोरुलतिकरम** (अकम का तात्पर्य आतंरिक जीवन से और पुरम का अर्थ बाह्य जीवन और पिंगल से है।)हालाँकि इस व्याकरण ग्रन्थ की रचना कब की गई इस बात को लेकर इतिहासकारों के मध्य एकराय नहीं है। कुछ विद्वानों ने इसका रचनाकाल ईस्वी युग के प्रारंभ के आस-पास माना है और वहीं कुछ अन्य विद्वान इसका रचनाकाल पांचवी शताब्दी का बतलाते हैं।

महाकाव्य	लेखक
तोल्कापियम	तोल्कपियार
शिल्पादिकरम	इलांगो आदिगल (जैन)
मणिमेकलै	सितलै सतनार (बौद्ध)
सिवाका चिंतामणि	तिरुक्तदेवर (जैन)

इन संगमों के बाद ५ प्रमुख तमिल महाकाव्यों की रचना भी की गई इन महाकाव्यों के नाम हैं-**"शिल्पादिकरम", "मनिमेकलै", "जीवक चिंतामणि", "वलैयापति", और "कुडलकेशी"**। इन महाकाव्यों में से शिल्पादिकरम (नूपुर अर्थात पायल की कहानी) औरमनिमेकलैविशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

इसके अलावा ५ गौण महाकाव्य भी हैं जिनकी रचना जैन लेखकों के द्वारा की गई है ये हैं- **"यशोधरा कवियम", "चूलमणि", "पेरूनकथे", "नागकुमार कवियम", और"नीलकेशी"।**

15.6 संगमकालीन राजनैतिक इतिहास

संगम काल के दौरान प्रायद्वीप भारत की राजनैतिक संरचनाएं अपने शैशवास्था में थी । प्रायद्वीपीय भारत का दक्षिणी हिस्सा जो कि कृष्णा नदी के नीचे पड़ता था मुख्यतः तीन राजाओं अर्थात **वेंतार** द्वारा शासित होता था और इनके अधीन कई वेलिर अर्थात **सरदारों** का नियंत्रण छोटे-छोटे क्षेत्रों पर था । इस समय दक्षिण भारत में **'चेर', 'चोल' तथा 'पांड्य'** तीन बड़े राज्य अस्तित्व में थे और ये राज्य अपने राजत्व की वैधानिकता के लिए राजसूय यज्ञों का भी आयोजन किया करते थे । इन तीनों राज्यों का इतिहास निरंतर युद्ध का इतिहास रहा है ।इन राज्यों में से मेगस्थनीज द्वारा सर्वप्रथम पांड्य राज्य का उल्लेख अपनी रचना में किया गया है जो कि उस समय मोतियों के काफी मशहूर था । इसके साथ ही मेगस्थनीज इस राज्य का उल्लेख करते हुए यह भी बतलाता है कि इस राज्य में एक स्त्री का शासन था; यह बात इस ओर इंगित करती है कि संभवतः पांड्य राज्य में कुछ मातृतंत्रात्मक प्रभाव अवश्य रहा होगा ।इसी वंश को संगम युग का पहला शासक वर्ग भी कहा जाता है साथ ही

इसका उल्लेख रामायण, महाभारत और अर्थशास्त्र में भी यह कहकर आया है कि इनका शासन प्रायद्वीप भारत के दक्षिणी तमिल क्षेत्र में रहा है।

पांड्य राज्य का क्षेत्र आधुनिक तमिलनाडु के तिन्नवेली, रामनद, और मदुरै जिले में फैला हुआ था।**'पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी'** (लेखक- अज्ञात) के मुताबिक इस राज्य के अंतर्गत कन्याकुमारी से कोरकै तक का भू-भाग सम्मिलित था। इस राज्य की प्रारंभिक राजधानी **'कोल्कई'** (तिरुनेल्वाली जनपद)में **'ताम्रपर्णी'** नदी के किनारे अवस्थित थी।बाद में इसकी राजधानी **'मदुरै'** को बनाया गया।इस राज्य का प्रतीक चिन्ह **'मछली'** था। इस वंश का सबसे प्रतापी शासक **'नेदुजोलियन'** था जिसके बारे में यहाँ तक कहा जाता है कि उसने आर्य शासकों को भी पराजित किया था वह स्वयं एक महान कवि तथा कवियों का आश्रयदाता था।**'नक्कीरर'** जैसे महाकवियों ने इस शासक के यशोगान पर अपनी कविताएँ समर्पित की हैं जिनका संकलन**'पत्तूपप्पातू'** में किया गया है। इन कविताओं के माध्यम से जहाँ एक और इन शासकों के कार्यों/सफलताओं का पूरा ब्यौरा प्राप्त होता है वहीं दूसरी और तत्कालीन समाज की एक झलक भी प्राप्त होती है।वैसे भी ईसा की प्रथम शताब्दी के आस पास जब संगम साहित्यों का संकलन किया गया था तो उन्हें पांड्य शासकों द्वारा ही सरंक्षण प्रदान किया गया था, वह बात अलग है कि इन साहित्यों से पांड्य शासकों के कालक्रम का क्रमबद्ध विवरण प्राप्त नहीं होता है।इन साहित्यिक स्त्रोतों के आधार पर यह पता चलता है कि इस वंश के प्रथम शासक का नाम **'नेडियोन'** था, हालांकि उसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध थी।इसी के शासनकाल में समुद्र पूजा प्रारंभ की गई थी।इसके बाद **'प्लाशलइ मुदुकदुमी'** नामक शासक हुआ जिसे पांड्य वंश का **प्रथम ऐतिहासिक राजा** माना जाता है। इस शासक ने अपने विजित क्षेत्रों के साथ कठोर रुख अपनाया और अनेक यज्ञों का आयोजन किया। अधिक संख्या में यज्ञों के आयोजन करवाने के चलते इसने **'पलशालै'** (अनेक यज्ञशाला बनाने वाला) की **उपाधि** भी धारण की थी। पांड्य राजाओं के समय व्यापार भी समुन्नत दिशा में था।पांड्यों ने रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार में भागीदारीकरने के साथ हीअपने राजदूतों को रोमन सम्राट आग्स्टस के दरबार में भेजा था। कुल मिलाकर कहा जाये तो संगम साहित्य इस ओर इंगित करते हैं की यह देश धनवान ओर समृद्धशाली था।

दक्षिणी तमिल क्षेत्र में दूसरा प्रमुख शासन **'चेर राज्य'** के अधीन था। यह राज्य पांड्य राज्य के पश्चिम में आधुनिक केरल के मालाबार तट पर फैला हुआ था ओर इसमें आधुनिक तमिलनाडु राज्य का भी कुछ क्षेत्र सम्मिलित था।इसकी राजधानी **'वंजी'** तथा **'तोंडी'** और प्रतीक चिन्ह **'धनुष-बाण'**होने का उल्लेख हमें संगम ग्रंथों में मिलता है।इस वंश का उल्लेख हमें रामायण, महाभारत तथा कात्यायन कृत **'वार्तिका'** से भी प्राप्त होता है इसके अलावा इस वंश का इतिहास संगम कालीन रचना **'पातिरुपतु'** से भी मिलता है।इस वंश का पहला महत्त्वपूर्ण शासक **'उदयनजेरल'** था जिसने इस राज्य को संगठित किया और इसके बारे में कहा जाता है कि इसने कुरुक्षेत्र में भाग लेने वाले योद्धाओं को भोजन करवाया था, हालाँकि यह कपोल-कल्पित बात को संगम कवियों ने अतिरंजित कर के लिखा है और ऐसा उन्होंने चोल तथा पांड्य शासकों की प्रशंसा में भी लिखा है। इन लेखकों द्वारा लिखी रचनाओं में उपमा अलंकार का प्रयोग अधिक किया गया और यह उनकी कल्पनाशक्ति की प्रधानता

को ही दर्शाती है क्योंकि हमें इन वर्णित घटनाओं का ऐतिहासिक साक्ष्यों के साथ कोई ताल-मेल नजर नहीं आता ।

इस वंश का प्रमुख शासक **'सेनगुत्तुवन'**(इसे लाल चेर और भला चेर के नाम से भी जाना जाता है ।) था जो कि श्रीलंका के **'गजबाहु'** का समकालीन था ।समकालीन साहित्य से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि यह शासक एक साहसी योद्धा होने के साथ साथ कला और साहित्य का उदार संरक्षक भी था ।इसका यशोगान श्रेष्ठ कवि **'परणर'**ने अपनी काव्य अभिव्यक्तियों में किया है । परणर ने अपनी रचनाओं में इसके समुद्री-अभियान का भी उल्लेख किया है जिससे इस बात का अंदाजा लगया जा सकता है कि अवश्य ही इस शासक के अधीन एक समुन्नत नौसैनिक-बेड़ाउपस्थित रहा होगा । इस राजा के समय की एक महत्त्वपूर्ण घटना है इस राज्य में **पत्तनी (पत्नी) पूजा** का आरम्भ होना जिसे **'कण्णगी'** की पूजा भी कहा जाता है। इस कहानी का जिक्र 'शिल्पादिकरम' नामक महाकाव्य में किया गया है । जिसका कथानक नीचे आपके लिए संक्षेप में दिया जा रहा है-

''तत्कालीन संगम राज्य के पुहार शहर में **'कोवलन'** नामक एक धनी व्यापारी रहा करता था । वयस्क होने पर उसका विवाह एक कुलीन परिवार की कन्या **'कण्णगी'** के साथ कर दिया गया । समय बीतता गया और उसका पारिवारिक जीवन सुखमय चल रहा था । ऐसे ही एक संध्या में वह शहर की प्रसिद्ध नर्तकी **'माधवी'**का नृत्य देखने के लिए पहुंचा और उसे देखने के बाद वह स्वयं को उसके प्रति आकर्षित होने से नहीं रोक सका ।वह उस स्त्री के सौंदर्य पर इतना अधिक मोहित हो चुका था कि उसने अपनी पत्नी कण्णगी का साथ छोड़ने का निर्णय कर लिया और वह माधवी के प्रेम जाल में उलझकर उसी के साथ जीवन व्यतीत करने लगा । इस दौरान कण्णगी उससे अपने पारिवारिक जीवन में लौटने का अनुरोध करती रही परन्तु माधवी के प्रेमजाल में फंसा कोवलन उसके अनुरोध को अस्वीकार करता रहा । समय के साथ उसे माधवी से संतान सुख की भी प्राप्ति हुई, जिसका नाम **'मणिमेकलै'** रखा गया और आगे चलकर यही संतान संगम वंश के अगले महाकाव्य 'मणिमेकलै' की नायिका बनी । इसी प्रकार कुछ वर्षों तक जब तक कोवलन का धन समाप्त नहीं हुआ था वह माधवी के साथ भोग-विलास में लिप्त रहा । धन समाप्त होने पर उसे अपने जीवन में की गई सबसे बड़ी गलती का एहसास हुआ और वह एक बार पुनः माधवी को त्यागकर कण्णगी के वापस लौट आया,कण्णगी ने भी उसे क्षमा कर एक बार पुनः नए जीवन की शुरुआत करना ही उचित समझा ।इसके पश्चात कोवलन अपनी पत्नी के साथ इस शहर से मदुरै के लिए पलायन कर गया । यहाँ पहुंचकर कण्णगी उसे अपने पाँव की पायल बेचकर कुछ धन का इंतजाम करने के लिए प्रोत्साहित करती है ताकि व्यापार को एक नए सिलसिले से शुरू किया जा सके । इस मंतव्य को लेकर कोवलन पांड्य राज्य की राजधानी में प्रवेश कर पायल बेचने हेतु सुनार के पास पहुँचता है ।सुनार उसे रुकने के लिए कहकर तुरंत राजा नेदुजोलियन को यह सूचना देता है कि रानी की जो पायल चोरी हुई थी उस अपराधी का पता चल गया है, रजा यह मालूम चलते ही दोषी को प्राणदंड की सजा देता है । उधर जब शाम तक कोवलन नहीं लौटता तब कण्णगी नगर में उसे खोजते हुए प्रवेश करती है और उसे पता चलता है कि उसके पति को पायल चोरी के आरोप में प्राणदंड दिया जा चुका है।इस खबर को सुनकर कण्णगीसीधा राजा के दरबार में पहुँचती है और राजा को

धिक्कारते हुए कहती है की उसने बिना सत्य का परीक्षण किये उसके पति को मृत्युदंड देने का अपराध किया है और ऐसा कहते ही वह अपनी दूसरी पायल राजा को प्रस्तुत करती है। अपनी गलती का एहसास होने पर राजा आत्मग्लानी में कण्णगीके समक्ष ही आत्महत्या कर लेता है और उसके साथ ही उसकी रानी भी देह त्याग करती है।इतने पर भी कण्णगी का क्रोध शांत नहीं होता और वह अपनी पतिव्रता शक्ति से पूरे मदुरै शहर को भस्म कर देती है।"

इस घटना की दुखद दास्तान जब चेर शासक **'सेनगुत्तुवन'** ने सुनीतो उन्होंने अपने राज्य में कण्णगी की पूजा (पत्नी पूजा) अर्थात एक आदर्श तथा पवित्र पत्नी को देवी की मूर्ती के रूप में स्थापित कर दिया।आज भी दक्षिण भारत में इन्हें देवी के रूप में सम्मान प्राप्त है।

दक्षिण भारत में तीसरी सबसे बड़ी शक्ति चोल राज्य (प्रतीक चिन्ह- बाघ) के अधीन थी। इनका शासन कावेरी नदी के डेल्टा में पेन्नार और वेलार नदियों के बीच में अवस्थित था। इस राज्य की आरंभिक राजधानी उरैयूर थी जो कि सूती कपड़े के व्यापार के लिए प्रसिद्ध है।आगे इसकी दूसरी राजधानी पुहार (कावेरीपट्टनम) को बनाया गया जो कि एक बंदरगाह शहर होने के साथ-साथ व्यापार-वाणिज्य का एक प्रतिष्ठित केंद्र था।

इस वंश का सबसे प्रतापी शासक 'कराइकल' को माना जाता है जिसके बारे में मान्यता है कि उसने अपनी छोटी सी उम्र में ही अपने सभी शत्रुओं का विनाश कर दिया था इसी ने पुहार शहर की स्थापना की और कावेरी नदी पर एक १६० किमी लम्बा बाँध बनवाया; जिसके निर्माण के लिए वह 12 हजार गुलामों को श्रीलंका से बंदी बनकर लाया था।अपने शासन काल के दौरान इसने दो महत्त्वपूर्ण युद्धों में विजय हासिल करी थी जिस कारण इसके समकालीन चेर और पांड्य शासकों की यशकीर्ति इसके समक्ष तुच्छ हो गई थी। इसने पहली युद्ध-विजय वेणी (तंजौर से 15 मील पूर्व) नामक स्थान पर पायी; इस युद्ध में इसने वेलरि, चेर, पांड्य सहित कुल 11 शासकों को हराया था। इस युद्ध-विजय से जहाँ एक ओर उसके वर्चस्व में वृद्धि हुई वहीं उसकी कीर्ति पताका भी समस्त तमिल प्रदेश में फ़ैल गई। दूसरी महत्त्वपूर्ण विजय इसने वाहपरैन्दालइ के युद्ध में पायी जहाँ इसने पेन्नार घाटी में अवस्थित ९ छोटे-छोटे शासकों की संघशक्ति को विनष्ट किया था। टी. वी. महालिंगम ने इसके शासन की अवधि १४० ई. से १९० ई. के मध्य बतलाई है।संगम साहित्य से इसके शासन काल के दौरान कृषि, वाणिज्य, उद्योग इत्यादि में अभूतपूर्व वृद्धि होने का उल्लेख मिलता है साथ ही इसने समाज कल्याण के लिए भी कई तालाबों का निर्माण करवाकर बंजर भूमि को सिंचाई के माध्यम से कृषि भूमि में रूपांतरित करवाया। इन सब कार्यों की वजह से इसके शासनकाल के दौरान इसका राज्य वैभवशाली और समृद्ध था। इसकी मृत्यु के उपरान्त चोल राज्य गृह युद्ध में उलझ गया जिसका वर्णन संगम युगीन कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है।

नेदुनकिल्ली जो की संभवतः कराइकल का पौत्र था ने सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात अपने प्रतिद्वंदी चेर तथा पांड्य शासकों को 'कारिचारु' नामक स्थान पर पराजित किया थाआगे इसी के समय में कावेरीपट्टनम का वैभव अपने पतन की और अग्रसारित हो गया। इसके पश्चात चोल शासकों की शक्ति क्षीण होती चली गई और उसके अवशेषों पर उपजे पल्लव और पांड्यों ने अपनी प्रभुसत्ता का विस्तार कर लिया।ईसा की तीसरी शताब्दी से

९वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक हमें चोलों का इतिहास स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता परन्तु ९वीं शताब्दी के मध्य में पुनः चोल शासक विजयालय ने चोल शक्ति को संगठित कर इसका परचम पूरे दक्षिण भारत में फहराया था।

15.7 संगमकालीन समाज

सुदूर दक्षिण भारत की अपनी एक अलग दीर्घकालीन सहित्यिक परम्परा रही है जिसे हम संगम साहिय के नाम से भी जानते हैं। यह साहित्यिक परम्परा वेदों की भाति ही विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि इनसे पूरे दक्षिण भारतीय जीवन शैली के सामजिक ताने-बाने पर प्रकाश पड़ता है। तत्कालीन संगम समाज एक विशिष्ट सामाजिक सरंचना का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें हमें उत्तर भारतीय आर्य संस्कृति और आर्येतर सांस्कृतिक तत्वों का समन्वय दृष्टिगत होता है ।हालाँकि यह बात सत्य प्रतीत होती है कि संगम युग में तमिल और आर्य संस्कृति का सम्मिश्रण पूर्णतः हो चुका था फिर भी हमें यहाँ आर्यों की चतुर्वर्ण व्यस्था देखने को नहीं मिलती है ।डॉ. वी एस. भार्गव का कथन है कि तमिल क्षेत्र का सामाजिक जीवन स्तर उनकी भूमि पर निर्भर था। इसलिए यहाँ के निवासियों ने भूमि को पाँच भागों में विभाजित किया हुआ था जिसे तिनै की अवधारणा नाम से भी जाना जाता है

15.7.1 भूमि के पाँच प्रकार/ तिनै की अवधारणा

भूमि के इन पाँच प्रकारों की तुलना हम आज के पारिस्थितिकी तंत्र से समबन्धित दृष्टिकोण से भी कर सकते हैं। ये पाँच तिनै हैं-

1. **मुल्लै:-** वन और उसके आस-पास अवस्थित क्षेत्र या चारागाह क्षेत्र इसमें शामिल था और यहाँ के निवासियों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन था। यहाँ रहने वाले निवासियों को 'अयार' कहा जाता था और इस क्षेत्र के प्रमुख देवता विष्णु थे।
2. **कुरिंजी:-** इस क्षेत्र का भू-परिदृश्य पर्वतीय इलाका था और यहाँ के निवासी 'कुरवन' कहलाते थे। इस क्षेत्र के निवासियों का मुख्य व्यवसाय शिकार और संग्रहण था। यहाँ के देवता मुरुगन थे।
3. **नेताल:-** भूमि का यह प्रकार समुद्र से लगा तटीय क्षेत्र था और यहाँ के निवासी 'पारतवार' कहलाते थे इनका मुख्य व्यवसाय मत्स्य आखेट और नमक उत्पादन था। इनके देवता का नाम वरुण था जिसे सागर का देवता कहा जाता था।

4. **मरुतम:-** भूमि का यह प्रकार नदी या कृषि क्षेत्र था और यहाँ के निवासी ‘वैलारस’ कहलाते थे। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि क्रियाकलापों से सम्बंधित था और इनके देवता का नाम इंद्र था जिसे वर्षा का देवता माना गया है।
5. **पाली:-** यह एक अर्धशुष्क (रेतीला) था जहाँ के निवासी ‘मोरावर’ कहलाते थे। इनका मुख्य कार्य लूटपाट और डकैती था तथा इनकी देवी का नाम कोर्रावाई या काली था जिसे विजय की देवी माना जाता है।

15.7.2 तमिल समाज के विभिन्न वर्ग

हम ऊपर बता चुके हैं कि तमिल समाज में चतुर्वर्ण व्यवस्था विद्यमान नहीं थी बल्कि यह समाज अनेक वर्गों में विभक्त था। सुविधा के दृष्टिकोण से हम तमिल समाज को 5 विभिन्न वर्गों में बाँट सकते हैं। तमिल समाज के इन वर्गों का अध्ययन आप आगे करेंगे।

1) **ब्राह्मण वर्ग:-** इस वर्ग का अभ्युदय इसी युग में देखने को मिलता है संगम युग से पूर्व इस समाज में पुरोहित वर्ग का अस्तित्व नहीं था।संभवतः उत्तर भारतीय वैदिक परम्परा के प्रभाव में आकर ही यहाँ ब्राह्मण वर्ग का उदय हुआ। इन ब्राह्मण और ऋषियों को समाज में यथेष्ट मान-सम्मान प्राप्त था।और राजदरबार में राजा भी उनसे मंत्रणा के पश्चात ही राजाज्ञा पारित किया करते थे। ब्राह्मणों को किसी भी प्रकार से कोई कष्ट न पहुँचाया जाये और उनकी प्रतिष्ठा में कोई कमीपेशी न रह जाए यह तत्कालीन राजाओं का आदर्श था। इनका मुख्य कार्य वेद-अध्ययन, धार्मिक यज्ञ अनुष्ठान, पूजा-पाठ और अध्ययन-अध्यापन से सम्बंधित था। इन कार्यों के लिए इन्हें धनाड्य परिवारों और शासक वर्ग से उचित पारितोषिक प्राप्त होता था। इसके अलावा इस वर्ग से सम्बंधित लोगों को राजदरबार में सहजता से कवि के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाती थी। इस जाति के लोगों को अंडानार कहकर संबोधित किया जाता था।
2) **आरासार (शासक वर्ग):-** ब्राह्मणों के पश्चात राजपरिवार और उससे सम्बंधित लोगों को भी समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। राजा केवल राज्य का ही नहीं बल्कि पूरे समाज का प्रधानतम सदस्य माना जाता था। यहाँ के शासक भी उत्तर भारतीय शासकों की तरह अपनी भव्यता का प्रदर्शन करते तथा रथ,घोड़े, और हाथी की सवारी पर ही भ्रमण पर निकलते। संगम कवियों ने अपनी रचनाओं में गृहयुद्धों का भी उल्लेख किया है जिससे यह ज्ञात होता है कि यहाँ राजा सर्वशक्तिसंपन्न था और उसका मुख्य लक्ष्य अपनी प्रजा के कल्याण में निहित था।इस काल के शासक पेशेवर सैनिकों को भी अपनी सेना में रखते थे जिन्हें सामन्यतः पैदल सेना, रथ, घोड़े, हाथी और नौसैनिक सेना के रूप में नियोजित किया जाता था।

इनमें से सेनानायकों को एक औपचारिक अनुष्ठान के बाद 'एनाडी' की उपाधि प्रदान की जाती थी। संगमकालीन तीनों राज्य अधिकांशतः युद्ध में ही उलझे रहते इसलिए सामान्यतः यह परम्परा बन चुकी थी की युद्ध के समय शत्रु राज्य की कृषि पैदावार को पूर्णतः विनष्ट कर दिया जाए। युद्ध के दौरान खेत रहे सैनिकों की प्रस्तर मूर्तियाँ निर्मित कर उन्हें उसी स्थान पर गाड़ देने की परम्परा भी अस्तित्व में थी। इसके अतिरिक्त ललित कलाओं को बढ़ावा देना उनका सरंक्षण करना, राज्य में सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करवाना इत्यादि भी राजा का कार्य होता था। रजा का मुख्य कार्य अपने साम्राज्य की आतंरिक और बाह्य शत्रुओं से सुरक्षा करना था।

3) **वेनीगर:-** यह व्यापारी वर्ग था जो कि आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने के साथ साथ पूरे तमिल क्षेत्र में आतंरिक और बाह्य व्यापार का संचालन करता था। राम शरण शर्मा के मतानुसार इनकी स्थिति उत्तर भारत के वैश्य वर्ग के समान न थी बल्कि समाज में इनका स्थान वेल्लारों (मजदूर कृषक वर्ग) से अधिक नहीं था। हालाँकि हमें संगम साहित्य से ज्ञात होता है कि यह व्यापारी वर्ग व्यापार-वाणिज्य, वैदेशिक व्यापार और आर्थिक प्रगति के कारण अत्यधिक संपन्न था।
4) **वल्लाल:-** संगमयुगीन सामाजिक वर्गों में यह वर्ग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुलीन वर्ग के भू-स्वामियों को यहाँ वल्लाल कहकर संबोधित किया जाता था। इन उच्च कुलीन भूस्वामियों को राजकीय पदों पर नियुक्ति के साथ साथ सैन्य महकमे में भी उच्च स्थान प्रदान किये जाते थे। यथा चोल राज्य में इनकी उपाधि 'वेल' और 'अरशु' थी तो वहीं पांड्य राज्य में इनकी उपाधि 'कविदी' थी। इन भू-स्वामियों के राज-परिवार से वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुआ करते थे और यह अक्सर राजा के साथ आखेट पर भी जाया करते थे। इनका मुख्य पेशा कृषि कार्य ही था परन्तु यह अपना कृषि कार्य सर्वहारा मजदूर वर्ग से करवाते थे।
5) **वेल्लार:-** इनकी संख्या संगमकालीन समाज में अधिक थी यह वे कृषक थे जो संपन्न वल्लालों की भूमि पर कृषि मजदूरी किया करते थेअर्थात यह वह वर्ग था जो भूमिहीन था।

तत्कालीन साहित्य में गन्ने की पैदावार और उससे चीनी बनाने के जिक्र के साथ साथ विभिन्न प्रकार की फसलों और फलों के उत्पादन का विवरण मिलता है। कुल मिलाकर कहा जाए तो वह कृषि कार्य ही है जिसे संगम समाज की रीढ़ कहा जा सकता है और तत्कालीन युद्धरत परिस्थितियों में एक नियमित स्थायी सेना के रखरखाव के लिए भी यह कृषि उत्पादन किसी वरदान से कम न था।इसके अतिरिक्त संगम साहित्य के अनुशीलन से हमें यह भी ज्ञात होता है कि उस समाज में कुछ जनजातियाँ भी निवास कर रही थी जो कि अधिकांशतः अपना जीवन निर्धनता में व्यवतीत कर रही थी और उनका मुख्य कार्य शिकार तथा शहद संग्रहण था।साथ ही समाज में कुछ नए पेशेवर वर्गों का भी उत्थान हो रहा था जो अपने कार्य में तज्ञ थे।

15.7.3 संगम समाज में स्त्री दशा

संगमकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति कैसी थी उसके बारे में कोई स्पष्ट जानकारी तो उपलब्ध नहीं है लेकिन संगम साहित्य से मिले साक्ष्यों के आधार पर हम उसका अनुमान लगा सकते हैं। यूँ तो संगम समाज में पुरुष वर्ग का ही वर्चस्व था लेकिन संगम साहित्य से हमें ज्ञात होता है कि इस वक़्त महिलाओं को राजा की सशस्त्र रक्षिका के रूप में भी नियुक्त किया जाता था। उच्चवर्ग की स्त्रियों की स्थिति निम्नवर्ग की स्त्रियों की अपेक्षाकृत अधिक अच्छी थी। निम्नवर्ग की स्त्रियों को पुरुषों के साथ कृषि कार्य में सलंग्न होना पड़ता था और इनकी दशा किसी भी स्थिति में मजदूर वर्ग से भिन्न न थी। उस समय उरैयूर नामक नगर सूती वस्त्र का प्रमुख केंद्र था और परम्परागत रूप से सूत कातने का कार्य स्त्रियों द्वारा ही किया जाता था। समाज में सती प्रथा का प्रचलन भी आम था हालाँकि सती प्रथा को न ही प्रोत्साहन दिया जाता था और न ही किसी स्त्री को जोर-जबरदस्ती इसके लिए विवश किया जाता था। संगम कवियों द्वारा स्वेच्छा से सती होने वाली महिलाओं की प्रशंसा में काव्य रचनाएँ की गई हैं वहीं जो महिलाएं सती नहीं हो पाती थी उन्हें आगे का जीवन मलिन अवस्था में गुजारना होता था। विधवा महिलाओं की स्थिति चिंतनीय थी यदि कोई महिला विधवा हो जाती तो उसे ठन्डे जल से स्नान करना होता, भोजन में सदैव के लिए हरी सब्जी का त्याग करना होता बल्कि यहाँ तक की उसे अपने सभी आभूषणों के त्याग के साथ अपने केश भी मुंडवाने पड़ते थे। शायद यह भी एक प्रमुख कारन हो की महिलाएं इस अमानुषिक और कष्टप्रद जीवन से मुक्ति पाने की लिए सती होने का निर्णय लेती रही होंगी।हालाँकि इसके उलट तमिल साहित्य से हमें उच्चकोटि की कवयित्रीयों के बारे में भी जानकारी हासिल होती है जैसे 'ओवैयिर' और 'नाच्चेलियर' उस युग की विदुषी महिलाएं थी जो श्रेष्ठ कवयित्री थी। इसके अलावा उच्चवर्ग की स्त्रियों को नियमित रूप से शिक्षा दिए जाने का प्रबंध भी था जिसका विषय दरबारी नृत्य, लोकगायन, चित्रकला, सारंगी-वादन, कढ़ाई और अन्य उपकलाओं से सम्बंधित था। कुलीन वर्ग की कन्याएं नवयुवकों के साथ जलक्रीड़ा में भी भाग लिया करती थी जबकी निम्नवर्ग की स्त्रियां परिचारिका के रूप में और मजदूरी किया करती थी। इसके अतिरिक्त हमें समाज में गणिका और नर्तकियों के रूप में 'परित्यर' और 'कणीगेचर' का भी उल्लेख मिलता है जो अपना जीवनयापन वेश्यावृति के द्वारा निर्वाह करती थी और समाज में इनका स्थान निम्नतर था।

15.7.4 विवाह व्यवस्था

कुलीन वर्ग और शासक वर्ग के लोग एक से अधिक विवाह किया करते थे।तमिल ग्रन्थ तोल्क्कापियम से हमें ज्ञात होता है कि तमिल समाज में भी विवाह के 8 प्रकार उपस्थित थे ।हालाँकि सामन्यतः दो प्रकार के विवाह अधिक होते थे। जिसमें पहला प्रकार है- 'कलाबू' अर्थात प्रेम विवाह, जिसमें माता पिता की अनुमति नहीं होती थी। इस प्रकार के विवाह समाज की नजर में निंदनीय माने जाते थे। दूसरा विवाह का प्रकार 'कारपू' कहलाता था जो कि माता-पिता की अनुमति से होता और जिसमें सामाजिक परम्पराओं का अनुसरण किया जाता था। इसके

अतिरिक्त 'कैक्किणे' (एकपक्षीय प्रणय) और 'पेरुन्दिणे' (अनुचित प्रणय) का उल्लेख भी मिलता है ।तमिल समाज में हमें बाल-विवाह का प्रचलन देखने को नहीं मिलता है।

15.7.5 आवास, मनोरंजन और खानपान

संगम काल में संपन्न लोगों के आवास ईंट और चूने के बने होते थे बहुधा मकान एक मंजिल और दो मंजिल के बने होते थे। बड़े मकानों में कई कक्षों का निर्माण किया जाता था तथा छतों पर धातु की प्लेट की छतें ढलवायी जाती थी। संगम काल की एक अनोखी बात यह है कि यहाँ के लोग गर्मियों और सर्दियों के लिए अलग अलग मकानों का निर्माण करवाते थे।प्रत्येक मकान के आगे बड़े से अहाते हुआ करते थे और घरों की दीवारों पर देवी-देवताओं और पशु-पक्षियों के सुन्दर चित्र बनवाये जाते थे। वहीं तत्कालीन समाज के निर्धन लोगों का निवास स्थान घास-फूस की झोपड़ियाँ और कच्ची मिट्टी के मकान ही हुआ करते थे।

संगम-युगीन लोग विविध माध्यमों से अपना मनोरंजन किया करते थे। जिसमें सबसे प्रमुख साधन था काव्यपाठ। शासकवर्ग कवि-सम्मलेन, संगीत सम्मेलन, नृत्य सभाओं इत्यादि को आयोजित करवाया करते थे। 'आरूपदाई' नामक महाकाव्य इस बात पर प्रकाश डालता है कि ऐसे अवसरों पर कवियों, नर्तकों और संगीतकारों को बड़ी मात्रा में उच्च पारितोषिक प्रदान किये जाते थे।इसके अलावा मनोरंजन के अन्य साधनों में शामिल थे- कुश्ती, शिकार, योद्धाओं के मध्य मुक्केबाजी, पासा खेलना, मुष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध, इत्यादि।खेलों के प्रशिक्षण हेतु अलग से विद्यालयों का निर्माण भी किया गया था जिन्हें 'मुरंगकलारी' कहा जाता था।

खानपान के मामले में संगम-युगीन लोग शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन प्रयुक्त करते थे। भोजन में चावल का प्रयोग अधिक मात्र में किया जाता था हालाँकि ये लोग ज्वार और बाजरे का भी सेवन करते थे। मांसाहार में मछली, भेड़, गाय, सुअर तथा बकरी का मांस अधिक प्रचलित था, हालाँकि ये लोग कुत्ता, खरगोश और अन्य पशुओं के मांस का भी सेवन किया करते थे। समाज में साधारण ब्राह्मण वर्ग के लोग भी मांसाहार करते और बड़े चाव से ताड़ी का रसपान करते। संगम साहित्य में 'मुन्नीर' नामक पेय का उल्लेख मिलता है जिसे नारियल दूध, गन्ने के रस और ताड़ी के रस का एक नियत मात्र में मिश्रण कर तैयार किया जाता था। विदेशी मदिरा पीने का भी प्रचालन था। इस समाज में स्त्रियाँ भी मदिरापान किया करती थी ।भोजन के पश्चात चूने और सुपारी को पान के साथ खाने की आदत भी इनकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी।

15.7.6 धार्मिक जीवन और मृतक संस्कार

प्रो. नीलकंठ शास्त्री के मतानुसार, तमिल प्रदेश में इस समय तक वैदिक धर्म और आर्य सभ्यता का प्रचार-प्रसार हो चुका था ।हम उत्तर भारत की कई पौराणिक कहानियों, आख्यानों और तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं में अभिव्यक्त विचारों को भी संगम समाज में देख सकते हैं। इस समाज के लोग व्यवहारिक और आध्यात्मिक दोनों

रूपों में बहुदेववादी थे। इनका सर्वप्रमुख देवता 'मुरुगन' या 'सुब्रमण्यम' था जिसकी जानकारी तमिल साहित्य में उसके विविध उल्लेखों से मिलती है।शिव एक महत्त्वपूर्ण देवता थे जिन्हें विविध रूपों में पूजा जाता था। यहाँ तक की एक दन्त कथा के मुताबिक भगवान् शिव का विवाह एक पांड्य राजा की कन्या मीनाक्षी से पूर्ण हुआ था।इंद्र भी एक प्रमुख देवता थे जिनकी पूजा के लिए प्रतिवर्ष कावेरी नदी के तट पर मेलों का आयोजन किया जाता था। कालांतर में ब्रह्मा, विष्णु और कृष्ण जैसे अन्य देवताओं को भी पूजा जाने लगा था। मणिमैकलै महाकाव्य में सरस्वती मंदिर का उल्लेख आया है जो कि इस बात की ओर इंगित करता है कि किसी न किसी रूप में यहाँ सरस्वती की पूजा भी शुरू हो चुकी थी।

संगम साहित्य में इस बात का भी उल्लेख आता है कि यहाँ के लोगों का भूत-प्रेत, जादू-टोने आदि अंधविश्वासों में यकीन था। ये लोग नजर टोटके आदि में भी विश्वास करते थे और बच्चों को नजर से बचने के लिए उन्हें तेल और घी का लेप लगया करते थे। पुनर्जन्म में भी इनका विश्वास था और जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाने के लिए यहाँ के निवासी भी सद्कर्मों में यकीन रखते थे। पक्षियों में कौवे को शुभ माना जाता था और उसके लिए आँगन में भोजन भी रखा जाता था। यहाँ के शासकों द्वारा भी ब्राह्मणों को पूर्ण सम्मान प्रदान किया जाता था। इन सब बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संगम युगीन संस्कृति ने भारत की मिली-जुली संस्कृति को विकसित करने में अपनी महती भूमिका निर्वहन किया है।

शवाधान की दाहकर्म (जलाना) और गाड़ना दोनों पद्धतियाँ प्रचलन में थी। मृतक का परिवार अपनी सुविधानुसार शवाधान किया करते थे। कभी-कभार मृतकों को गाड़ते समय उसके ऊपर अस्थि-कलश भी रख दिया जाता था। विधवाएं अपने पति की मृत्यु पर चावल के पिंड बनाकर उनका दान किया करती थी। सम्पन्न परिवारों द्वारा मृतक के लिए ईंट से बनी समाधियों का निर्माण भी करवाया जाता था।जनजातियों द्वारा मृतक को गाड़ने के स्थान पर पत्थर गाड़ने की प्रथा भी अस्तित्व में थी।

15.8 संगमकालीन आर्थिक जीवन

- **कृषि:-** संगम साहित्य में इस प्रदेश के निवासियों के आर्थिक जीवन का उल्लेख विस्तार पूर्वक किया गया है और पुरातात्विक स्रोत भी इसकी पुष्टि करते हैं। यहाँ की जमीन अत्यधिक उपजाऊ थी और इनकी आजीविका का मुख्य साधन कृषि ही था। इस भूमि पर प्रचुर मात्रा में अनाज पैदा होता और यहाँ के कृषक वल्लाल कहलाते थे। वल्लाल भी दो श्रेणियाँ में विभाजित थे जिसमें पहली श्रेणी में वे किसान सम्मिलित थे जिनकी अपनी स्वयं की भूमि थी और जो मजदूर वर्ग (कडेसियर) से कृषि कार्य करवाया करते थे। इन्हें 'वैलारस' कहा जाता था। दूसरी श्रेणी में वे किसान आते थे जिनके पास स्वयं की जमीन न होती और वे धनाड्य वल्लालों की जमीन पर ही कार्य करके अपना जीवन-यापन करते थे। दक्षिण भारतीय भूमि की उर्वरा शक्ति के बारे में यहाँ तक कहा जाता है कि जितना स्थान बैठने के लिए

एक हाथी घेरता है उतने स्थान पर ही सात व्यक्तियों के लिए अनाज उपजाया जाता था। चेर राज्य का प्रदेश जहाँ कटहल, काली मिर्च तथा हल्दी उत्पादन के लिए सुविख्यात था वहीं चोल राज्य के अधीन भी कावेरी के जल से सिंचाई की पूर्ण व्यवस्था की गई थी। चावल, नारियल, काली मिर्च, हल्दी, गन्ना आदि की पैदावार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। संगम ग्रंथों में भी रागी और गन्ने के उत्पादन तथा उससे शक्कर बनाने, फसल काटने, फसल सुखाने तथा अन्य खाद्यानों का बड़ा सजीव चित्रण देखने को मिलता है। इसके अलावा यहाँ के लोग भोजन में मांसाहार का भी उपयोग करते थे तटीय क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण इन्हें मछली आसानी से और प्रचुर मात्र में उपलब्ध थी। यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है की कृषि ने ही इस भू-प्रदेश में विशाल राज्यों के निर्माण की आधारशिला रखी होगी क्योंकि कृषि ही राजस्व प्राप्ति का एक मूल स्रोत था जिसने राज्य को एक नियमित सेना रखने में समर्थ बनाया होगा। सामन्यतया भूमि कर उपज का १/६ भाग लिया जाता था जिसे ‘कराई’ कहा जाता था इसके अलावा कुछ अन्य कर भी अस्तित्व में थे जैसे सम्पति कर, बंदरगाह कर, लूट के माल पर कर (दुराई) इत्यादि। एक और महत्त्वपूर्ण कर का नाम ‘इरावु’ था जो कि आपातकालीन परिस्थिति में प्रजा से वसूला जाता था।

- **उद्योग-धंधे:-** इस समय तक लगभग सभी प्रकार के उद्योग-धंधे अस्तित्व में आ चुके थे। सूती वस्त्र और रेशमी वस्त्रों का उद्योग विशेष रूप से परिमार्जित होकर एक विशेष स्थान पा चुका था। संगम साहित्यों में यहाँ के वस्त्रों के बारे में उल्लेख आता है कि यहाँ के वस्त्र सांप की केंचुली या भाप के बादल की भाति महीन हुआ करते थे जिनकी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक मंडियों में अत्यधिक मांग थी। कताई-बुनाई का कार्य सामान्यतः महिलाओं के जिम्मे था और उरैयूर सूती वस्त्रों का प्रमुख केन्द्र हुआ करता था। इसके अलावा गन्ने के रस से शक्कर बनाने का उपक्रम, ताड़ी तैयार करने का व्यवसाय, बढ़ईगीरी, चर्मकार, स्वर्णकार, रस्सी बनाने का उद्योग, भवन निर्माण उद्योग, नमक बनाने के कारखाने इत्यादि भी समुन्नत अवस्था में थे।
- **व्यापार-वाणिज्य:-** इस युग को तमिल राज्य के इतिहास का व्यापारिक उत्कर्ष का युग भी कहा जाए तो यह अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा। संगमकालीन साहित्य से तत्कालीन व्यापार-वाणिज्य का विस्तृत लेखा-जोखा प्राप्त होता है। इस पूरे क्षेत्र की समृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण कारण यहाँ के लोगों का आतंरिक और वैदेशिक व्यापार में बढ़-चढ़कर भाग लेना भी रहा है और इस क्षेत्र में विदेशी व्यापार पूर्णतः संगठित था। संगम साहित्य में यहाँ के व्यापारी वर्ग को ‘वेनिगर’ कहकर संबोधित किया गया है। व्यापार में वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए भी शुल्क लगया जाता था जिससे राजकीय

आय में वृद्धि होती थी। व्यापार का प्रमुख केन्द्र अक्सर बंदरगाह नगर होते थे जहाँ विदेशी व्यापारी अपने जहाजों का बेड़ा खड़ा किया करते थे। पुहार नामक बंदरगाह शहर तो ऐसी अवस्थिती पर बसाया गया था जहाँ विदेशी व्यापारियों के जहाज बिना पाल उतारे भीतर तक प्रवेश कर जाते थे। नौरा, तोंडी, मुशिरी, मुजरिश, कोरकई और नेलिसिंडा कुछ प्रमुख बंदरगाह थे जहाँ से व्यापार संचालित होता था। जहाजों के लिए जल मार्गों पर लाइटहाउस की भी व्यवस्था की गई थी।

संगम साहित्य में व्यापारियों के लिए अलग-अलग नाम प्रयुक्त हुए हैं जैसे- विलाइनार (विक्रेता), पकारनार (फेरी वाला), वाम्ब्लर (भ्रमणशील नया व्यापारी), वणिकार (नियमित व्यापारी), इत्यादि। यहाँ से विदेशों को निर्यात की जाने वाली मुख्य मदों में शामिल था– सूती वस्त्र, काली मिर्च, रेशमी वस्त्र, मलमल का कपड़ा, हाथी दांत, मोती, रत्न, नीलम, हीरा, कीमती पत्थर और पर्वतों से प्राप्त दुर्लभ वस्तुएं। जबकि भारतीयों द्वारा आयात की जाने वाली प्रमुख मदों में शामिल था – विदेशी शराब, कांच से बने अद्भुत सामान, सोना, चांदी, तांबा इत्यादि। अरिकामेदु इस समय का एक प्रमुख व्यापारिक नगर था जहाँ से वस्तुओं को एकत्रित कर भारत के विभिन्न भागों में बेचा जाता था। इस स्थल के उत्खनन से हमें यह भी ज्ञात होता है कि इस स्थल पर रोमन व्यापारियों ने अपनी एक बड़ी फैक्ट्री भी स्थापित कर ली थी। मुजरिस, पुहार और अरिकामेदु जैसे स्थलों में हुए उत्खनन इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि इन स्थलों से रोमन सम्राट ऑगस्टस के मुहर वाले सोने, चांदी के सिक्के प्राप्त हुए हैं। पेरिप्लस का लेखक हमें इस भारतीय-रोमन व्यापार की पूर्ण जानकारी प्रदान करता है। वह बतलाता है कि इस काल में अंतर्देशीय व्यापार पूर्ण विकसित अवस्था में था और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए गाड़ियों तथा पशुओं के कारवां चला करते थे। आतंरिक व्यापार का अधिकाँश भाग विनिमय के माध्यम से ही किया जाता था। और इस विनिमय में केवल धान और नमक ही दो वस्तुएं नियत थी जिनकी विनिमय दर निश्चित थी। तमिल साहित्य में काशु, कनम, पोन और बेनपोन नामक सिक्कों की जानकारी भी मिलती है इसके साथ ही खुदाई में बड़ी मात्रा में आहत सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। रोमन के अलावा भारतीयों का विदेशी व्यापार अरब, मिस्त्र, मलयद्वीप और चीन के साथ भी होता था।

15.9 तकनीकी शब्दावली

- **पत्तूपप्पातू:-** यह संगम कविताओं का एक साहित्यिक संग्रह है जिसे टेन सांग्स के नाम से भी जाना जाता है।
- **शिल्पादिकरम और मणिमेकलै:-** यह शास्त्रीय तमिल साहित्य की रचनाएँ हैं जिन्हें जुड़वा महाकाव्य संग्रह के रूप में भी जाना जाता है।

15.10 सारांश

वर्तमान अध्याय के सारांश के क्रम में कहा जा सकता है कि संगम वंश न केवल दक्षिण भारत के इतिहास का एक अहम हिस्सा रहा है बल्कि इस काल ने सम्पूर्ण भारत पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है। वर्तमान अध्याय के माध्यम से हम इस कालखंड की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक आयामों का ज्ञान अर्जित कर चुके हैं। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि संगम साहित्य का महत्त्व दक्षिण भारत के आम जन-जीवन की रूपरेखा को समझने का सबसे सशक्त माध्यम है। इस काल खंड के कवियों की रचनाएँ साहित्यिक दृष्टिकोण से आज भी अपने उदय के समान प्रौढ एवं जीवत हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में उत्तर एवं दक्षिण भारतीय संस्कृतियों का पूर्ण समन्वय हो चुका था और इस मिली-जुली संस्कृति का प्रभाव वर्तमान समय में भी दृष्टिगोचर होता है ।

15.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न १: संगम युगीन राज्यों की भौगोलिक स्थिती क्या है?

(a) कृष्णा नदी का दक्षिणी भाग (c)कावेरी नदी का दक्षिणी भाग

(b) कावेरी नदी का उत्तरी भाग (d) केवल कोरोमंडल तट

प्रश्न २: संगम काल के अंतर्गत कौन सा राज्य नहीं आता है?

(a) चेर(b) चोल (c) पांड्य (d) पल्लव

प्रश्न ३: लाल चेर की उपाधि किसकी है?

(a) सेनगुत्तुवन (b) नेदुजोलियन (c) कराइकल (d) विजयालय

प्रश्न ४: प्रथम संगम की अध्यक्षता किसने की थी?

(a) तोल्लकापियर (b) वसिष्ठ ऋषि (c) अगस्त्य ऋषि (d) नक्कीरर

15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- AHistoryofSouth-India, K. A. Nilakanta Sastri, Second Edition- 1958
- प्रारंभिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, संस्करण-2010
- दक्षिण भारत का वृहत इतिहास, डा० एच. एन. दुबे,प्रथम संस्करण-2002
- प्राचीन भारत का इतिहास, द्विजेन्द्रनारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली, संस्करण-2002
- प्राचीन भारत का इतिहास, अखिल मूर्ती , संस्करण 2016
- ऐतरेय ब्राह्मण, 7.34

- भूगोल एक समग्र अध्ययन, महेश कुमार बर्णवाल, दशम संस्करण-2012

15.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- प्राचीन भारत का इतिहास, द्विजेन्द्रनारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली, संस्करण-2002
- प्राचीन भारत का इतिहास, अखिल मूर्ती , संस्करण 2016
- ऐतरेय ब्राह्मण, 7.34
- भूगोल एक समग्र अध्ययन, महेश कुमार बर्णवाल, दशम संस्करण-2012

15.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न १:संगमयुगीन समाज एवं अर्थव्यवस्था के स्वरुप की चर्चा कीजिए।

प्रश्न २:संगम साहित्य से दक्षिण भारत की राजनैतिक स्थिति की अपेक्षा सामजिक तथा आर्थिक विषय में अधिक जानकारी मिलती है। चर्चा कीजिए।

इकाई सोलह

शक, पार्थियन एवं कुषाण : राजनीति, समाज, धर्म एवं कला

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 अध्ययन के स्रोत
16.4 राजनीतिक इतिहास
    16.4.1 शक

        16.4.1.1 तक्षशिला के प्रारम्भिक शक
        16.4.1.2 मथुरा के शक क्षत्रप
        16.4.1.3 महाराष्ट्र का क्षहरात वंश
        16.4.1.4 कार्दमक (चष्टन) वंश अथवा सौराष्ट्र और मालवा के शक क्षत्रप
    16.4.2 पार्थियन
    16.4.3 कुषाण
16.5 प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था
16.6 समाज एवं धर्म
16.7 कला एवं साहित्य
    16.7.1 स्थापत्य कला
    16.7.2 मूर्ति कला
        16.7.2.1 गांधार कला शैली
        16.7.2.2 मथुरा कला शैली
    16.7.3 साहित्य
16.8 सारांश
16.9 तकनीकी शब्दावली
16.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
16.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
16.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.13 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य के पतन एवं गुप्त साम्राज्य के उद्भव से पूर्व के लगभग 500 वर्षों के काल में एक विशाल मौर्य साम्राज्य के विपरीत अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए। यह वह काल था जब विदेशी राजवंशों ने भारत पर अल्पकालिक प्रभुत्व के लिये निरंतर संघर्ष किए। अगर हम कुषाण साम्राज्य को अपवाद में रखें तो हम पाते हैं कि इस काल में बड़े साम्राज्य अनुपस्थित रहे। इस काल की बहु राज्य व्यवस्था को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है -

1. मौर्य साम्राज्य के उत्तराधिकारी स्थापित राज्य - शुंग एवं कण्व राज्य

2. विदेशी आक्रमण के कारण स्थापित राज्य - इंडोग्रीक, शक, पार्थियन एवं कुषाण

3. नये क्षेत्रों में राज्य निर्माण - सातवाहन राज्य, कलिंग में चेदि राज्य तथा सदूर दक्षिण में चोल, चेर और पाण्ड्य राज्य।

16.2 उद्देश्य

इस अध्याय में हम आपको विदेशी आक्रमण के कारण स्थापित राज्य जैसे- शक, पार्थियन एवं कुषाण साम्राज्य के शासकों के इतिहास यथा- प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास से रूबरू कराने का प्रयास करेंगे साथ ही आप इन तथ्यों से भी अवगत होंगे कि कैसे इन विदेशी जातियों ने भारतीय संस्कृति में सम्मिलित होकर एक नवीन सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति के निर्माण में अपना सहयोग दिया |

16.3 अध्ययन के स्रोत

इस काल में अध्ययन के स्रोत के रूप में प्रचुर मात्रा में साहित्यिक कृतियाँ एवं पुरातात्विक सामग्रियां प्राप्त होती हैं | इस काल में संस्कृत का पुनरुत्थान हो चुका था इसीलिए अधिकांश कृतियाँ संस्कृत में ही प्राप्त होती है साथ ही बौद्ध धर्म के द्वारा भी संस्कृत भाषा को ग्रहण कर लिया गया | इस काल के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालने वाली महत्वपूर्ण कृति है- **'मनुस्मृति'** (200 ईसा पूर्व- 200 ई०) | इसके अतिरिक्त इस काल में पुराणों की रचना भी प्रारंभ हुई | सबसे बढ़कर इस काल के इतिहास को जानने का एक प्रमुख स्रोत है विदेशी साहित्य । रोमन लेखकों यथा- **प्लिनी, स्ट्रेबो, डायोडोरस** व **एरियन** आदि लेखकों की रचनाओं से रोमन व्यापार पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। चीनी साहित्य **शी-की** एवं **पान-कू** कृत **सीन-हान-शू** अर्थात् प्रथम हान वंश का इतिहास तथा **फान-ए** कृत **हाऊ-हान-शू** अर्थात् परवर्ती हान वंश का इतिहास से शकों के इतिहास की जानकारी मिलती है साथ ही यू-ची, हूण तथा पार्थियन जाति के साथ शकों के संघर्ष तथा शकों के प्रसार का विवरण प्राप्त होता है।

पुरातात्विक सामग्रियों के रूप में हमें उत्खनन में प्राप्त नगरों के साक्ष्य तथा बड़ी संख्या में धार्मिक स्थापत्य के रूप में चैत्य, स्तूप, विहार एवं मूर्तियाँ मिली है। इसके अतिरिक्त इंडोग्रीक, कुषाण शासकों के स्वर्ण सिक्के, कुषाण शासकों के तांबे के सिक्के, शकों के चांदी के सिक्के तथा कुछ रोमन सिक्के भी प्राप्त हुए है।

16.4 राजनीतिक इतिहास

राजनीतिक इतिहास के अंतर्गत आप शक, पार्थियन एवं कुषाण शासकों के राजनीतिक इतिहास का क्रमबद्ध अध्ययन करेंगे | जिसका विवरण निम्न प्रकार से है-

16.4.1 शक राजवंश

शकों को चीनी साहित्य में **सई** (sai) अथवा **सई-वांग** (Sai-wang) कहा गया है। आरंभ में शक एक घुमक्कड़ (खानाबदोश) एवं बर्बर जाति थी, जो सीर नदी के उतरी किनारे पर रहती थी। भेड़-बकरियाँ चराने वाले ये लोग निरंतर अपना स्थान बदलते रहते थे। शकों का मूल निवास स्थान मध्य एशिया का सीरदरिया नामक स्थान था। भारतीय साहित्य में शकों के प्रदेश को शकद्वीप अथवा शकस्थान कहा गया है। शकों की पाँच शाखाएँ थीं और हर शाखा की राजधानी भारत और अफगानिस्तान में अलग-अलग भाग में थी। शकों की एक शाखा अफगानिस्तान में बस गई। दूसरी शाखा पंजाब में बसी जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। तीसरी शाखा मथुरा में बसी, जहाँ उसने लगभग दो सदियों तक शासन किया। चौथी शाखा ने पश्चिमी भारत पर अपना अधिकार जमाया और वहाँ वह चौथी शताब्दी तक शासन करती रही। शकों की पाँचवीं शाखा ने अपना प्रभुत्व ऊपरी दकन पर स्थापित किया।

16.4.1.1 तक्षशिला के प्रारम्भिक शक

तक्षशिला के प्रारम्भिक शक शासकों में मेउस का नाम सर्वप्रमुख है। सामान्यतः उसका समय 20 ईसा पूर्व से प्रथम ईस्वी सन् तक माना जाता है। पश्चिमोत्तर प्रदेशों से उसके अनेक सिक्के मिलते हैं। उनकी पहचान तक्षशिला ताम्रपत्र के 'महाराज मोग' से की जाती है। अल्तेकर का विचार है कि वह पहले पार्थियनों का सामन्त था। मेउस के पश्चात् एजेज तक्षशिला का शक शासक हुआ। वह भी एक प्रतापी राजा था। उसने पंजाब में यूथीडेमस कुल के यवनों को परास्त कर वहाँ अपना आधिपत्य कायम किया। शकों ने भारत में सर्वप्रथम अपनी सत्ता सिन्ध में स्थापित की थी और मनि नगर को अपनी राजधानी के रूप में विकसित किया था | इसके उपरान्त जब पड़ोस के दूसरे प्रान्तों में शकों की सत्ता स्थापित हुई तब वहाँ के उनके शासक क्षत्रप अथवा महाक्षत्रप कहलाये, जिसका अर्थ है कि वे स्वाधीन राजा नहीं थे वरन् किसी राजा के अधीन प्रान्तीय शासक होते थे । सम्भवतः उनका अधिपति सिन्ध का शासक महाराज ही होता था। ये क्षत्रप तक्षशिला, मथुरा, उत्तर के कई स्थानों,

काठियावाड़ तथा मालवा में शासन करते थे। क्षत्रप शासन-व्यवस्था का प्रधान महाक्षत्रप होता था। उसके नीचे एक दूसरा क्षत्रप उसका पुत्र होता था जो महाक्षत्रप का उत्तराधिकारी होता था। क्षत्रप के अतिरिक्त अन्य सैनिक सरदार भी होते थे जिनमें से कुछ के नाम अभिलेखों में उपलब्ध हैं। जब कुषाणों ने सिंध में मोअस वंश के शासन को नष्ट कर दिया तब भी क्षत्रप अपने-अपने इलाके में शासन करते रहे।

16.4.1.2 मथुरा के शक क्षत्रप

मथुरा में शकों का शासन कब और कैसे स्थापित हुआ यह निश्चित रूप से बता सकना कठिन है तथा स्टेनकोनो जैसे कुछ विद्वान् जैन ग्रन्थ 'कालकाचार्य कथानक' के आधार पर यह प्रतिपादित करते हैं कि मालवा में विक्रमादित्य (57 ईसा पूर्व) द्वारा पराजित होने और खदेड़े जाने पर शक मथुरा में आकर बस गये। इसी शासक को मालवा अथवा विक्रम संवत् का संस्थापक माना जाता है। जैन ग्रन्थों के अनुसार इसके 135 वर्ष बाद **‘शक संवत्’** का प्रारंभ (78 ईस्वी) हुआ।

मथुरा के क्षत्रपों में **हगान** तथा **मगामश** का नाम सबसे पहिले आता है। इनके बाद सम्भवतः **राजुल** शासक हुआ। एक लेख में उसे महाक्षत्रप कहा गया है। परन्तु कुछ मुद्राओं में वह **‘राजाधिराज’** कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि वह स्वाधीन हो गया था। राजुल के बाद उसका पुत्र **शोडास** शासक हुआ। मथुरा की सिंहमूर्ति के लेख में उसे क्षत्रप बतलाया गया है। परन्तु बाद के मथुरा के लेखों में (जो ब्राह्मी लिपि में है) उसे महाक्षत्रप बतलाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने पिता के काल में शोडास केवल क्षत्रप था परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त वह महाक्षत्रप हो गया। स्टेनकोनों के विचार में शोडास 15 ई० सन् के निकट हुआ था। शोडास के बाद का इतिहास अन्धकारपूर्ण है। मथुरा के सिंहलेख से ज्ञात होता है कि मथुरा के क्षत्रप कपिशा तथा तक्षशिला के क्षत्रपों की भाँति बौद्ध धर्मावलम्बी थे क्योंकि इसमें लिखा है कि राजुल की पटरानी ने बुद्ध की अस्थियों पर एक स्तूप बनवाया था।

16.4.1.3 महाराष्ट्र का क्षहरात वंश

इस वंश ने संपूर्ण महाराष्ट्र, लाट तथा सौराष्ट्र प्रदेश पर शासन किया। क्षहरात वंश का पहला राजा भूमक था। उसके सिक्के गुजरात, काठियावाड़ तथा मालवा के क्षेत्र से मिलते हैं। सिक्कों पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियों में लेख लिखे गये हैं। खरोष्ठी लिपि के प्रयोग से ऐसा लगता है कि पश्चिमी राजपूताना तथा सिन्ध के कुछ भागों पर भी उसका अधिकार था। भूमक का कोई अभिलेख नहीं मिलता। **नहपान** इस वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक था। इसके सिक्के अजमेर से नासिक तक के क्षेत्र तक मिले हैं। ये चाँदी तथा ताँबे के हैं। सिक्कों पर वह **'राजन्'** की उपाधि धारण किये हुए है। नहपान ने लगभग 119 ईस्वी से 125 ईस्वी तक राज्य किया। वह सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र शातकर्णी द्वारा पराजित हुआ और मार डाला गया। जोगलथम्बी से प्राप्त नहपान के बहुसंख्यक सिक्के गौतमीपुत्र शातकर्णी द्वारा पुनरंकित किये गये हैं।

16.4.1.4 कार्दमक (चष्टन) वंश अथवा सौराष्ट्र और मालवा के शक क्षत्रप

क्षहरातों के पश्चात् सौराष्ट्र तथा मालवा में शकों के एक दूसरे कुल ने शासन किया। यह नया वंश **'कार्दमक वंश'** के नाम से प्रसिद्ध है। चष्टन की मृत्यु के पश्चात् उसका पौत्र **रूद्रदामन** पश्चिमी भारत के शकों का राजा हुआ। वह अभी तक भारत में शासन करने वाले शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली था। **जूनागढ़** से शक संवत् 72 (150 ईस्वी) का उसका एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह प्रशस्ति के रूप में है। इससे उसकी विजयों, व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवरण प्राप्त होता है। जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि 'सभी जातियों के लोगों ने रूद्रदामन को अपना रक्षक चुना था' तथा उसने **'महाक्षत्रप'** की उपाधि स्वयं ग्रहण की थी। इससे ऐसा संकेत मिलता है कि उसके पूर्व शकों की शक्ति निर्बल पड़ गयी थी जिसे अपने बाहुबल से पुनः प्रतिष्ठित किया। वह एक महान् विजेता था। इस अभिलेख में रुद्रदामन को आकर-अवन्ति, अनूप, अपरान्त, आनर्त तथा सौराष्ट्र, कुकुर, निषाद इत्यादि स्थानों की विजय करने का श्रेय प्रदान किया गया है। जूनागढ़ अभिलेख से ही ज्ञात होता है कि उसने ‘दक्षिणापथ के स्वामी’ को दो बार पराजित किया। किन्तु सम्बन्ध की निकटता के कारण उसका वध नहीं किया। यह पराजित नरेश अनुमानतः वासिष्ठपुत्र पुलुमयी था।

जूनागढ़ अभिलेख स्वाभिमानी तथा अदम्य **यौधेयों** के साथ उसके युद्ध तथा उनकी पराजय का भी उल्लेख करता है, जिन्होंने संभवत: उत्तर की ओर से उसके राज्य पर आक्रमण किया होगा। यौधेय गणराज्य पूर्वी पंजाब में स्थित था। यौधेय अत्यन्त वीर तथा स्वाधीनता प्रेमी थे। पाणिनी ने उन्हें 'आयुधजीवी संघ', अर्थात् 'शस्त्रों के सहारे जीवित रहने वाला' कहा है। यौधेयों को पराजित कर रूद्रदामन् ने उन्हें अपने नियंत्रण में कर लिया तथा उसका राज्य उनके आक्रमणों से सदा के लिये सुरक्षित हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के समान उसने भी पराजित राजाओं के राज्य पुनः वापस कर दिये थे। संभवतः ये शासक वे थे जिन्हें इसके पूर्व गौतमीपुत्र शातकर्णी ने पराजित किया था, क्योंकि नासिक लेख से पता चलता है कि उसने क्षत्रिय राजाओं का मान-मर्दन किया था।

महान विजेता होने के साथ-साथ रूद्रदामन् एक प्रजापालक सम्राट भी था। जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके शासन काल में सौराष्ट्र में सुदर्शन झील (जिसका निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में हुआ था तथा अशोक के समय में इससे नहरें निकलवायी गयी थीं) पर बना बाँध भारी वर्षा के कारण टूट गया और उसमें चौबीस हाथ लम्बी, इतनी ही चौड़ी और पचहत्तर हाथ गहरी दरार बन गयी। इसके फलस्वरूप झील का सारा पानी बह गया। इस दैवी विपत्ति के कारण जनता का जीवन अत्यन्त कष्टमय हो गया तथा चारों ओर हाहाकार मच गया। चूँकि इसके पुनर्निर्माण में बहुत अधिक धन की आवश्यकता थी, अतः उसकी मन्त्रिपरिषद् ने इस कार्य के लिए धन व्यय किये जाने की स्वीकृति नहीं प्रदान की। किन्तु रूद्रदामन् ने जनता पर बिना कोई अतिरिक्त कर लगाये ही अपने व्यक्तिगत कोष से धन देकर अपने राज्यपाल सुविशाख के निर्देशन में बाँध की फिर से मरम्मत करवाई तथा उससे तिगुना मजबूत बाँध बनवा दिया। रुद्रदामन ने कभी अपनी प्रजा से न तो अनुचित धन वसूल किया और न ही बेगार (विष्टि) तथा प्रणय कर लिया।

रूद्रदामन् महान् विजेता एवं कुशल प्रशासक होने के साथ ही साथ एक उच्च कोटि का विद्वान तथा विद्या प्रेमी था। वह वैदिक धर्मानुयायी था तथा संस्कृत भाषा को उसने राज्याश्रय प्रदान किया। रुद्रदामन को

इतिहासकारों द्वारा गद्य-पद्य रचना में निपुण बताया गया है। विशुद्ध संस्कृत भाषा में लिखा हुआ उसका अभिलेख प्राचीनतम अभिलेखों में से एक है तथा इससे उस समय संस्कृत भाषा के पर्याप्त रूप से विकसित होने का प्रमाण मिलता है। उसके समय में उज्जयिनी शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। गिरनार अभिलेख में उल्लखित है कि वह अनेक स्वयंवरों में गया था तथा उसने अनेक राजकुमारियों का पाणिग्रहण किया था। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि उसके समय तक शक भारतीय समाज में पूर्णतया घुलमिल गये थे।

इस प्रकार रूद्रदामन् एक महान विजेता, साम्राज्य-निर्माता, उदार एवं लोकोपकारी प्रशासक तथा हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का महान् उन्नायक था। उसका शासन-काल 130 ईस्वी से 150 ईस्वी तक सामान्य तौर से स्वीकार किया जाता है। उसका अन्त किन परिस्थितियों में हुआ, यह हमें ज्ञात नहीं है। 150 ईस्वी के गिरनार अभिलेख के पश्चात् उसके इतिहास की कोई जानकारी प्राप्त नही होती। निःसन्देह उसका शासनकाल पश्चिमी क्षत्रपों की शक्ति के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करता है। इसके बाद उसका पुत्र **जीवदामन्** महाक्षत्रप बना। इसके बाद लगभग 2 वर्षों तक महाक्षत्रप का पद रिक्त रहा। तत्पश्चात् रूद्रसिंह प्रथम पुनः जीवदामन् क्षत्रप से महाक्षत्रप बना। इनके बीच में समय-समय पर महाक्षत्रप का पद 2-2 वर्ष तक रिक्त रहा फलतः आभीरों की शक्ति में वृद्धि हुई। तत्पश्चात् थोड़े उतार चढ़ाव के बाद पुनः रूद्रसिंह प्रथम, तदोपरांत जीवदामन् रूद्रसेन प्रथम, ईश्वरदत (आभीर), यशोदामन, दामसेन संघदामन् आदि महाक्षत्रप बने। हालाँकि इनके बीच में कुछ वर्षों के लिए महाक्षत्रप का पद रिक्त भी रहा। इतिहासकार अल्टेकर के अनुसार मालवा में शक क्षत्रपो के सिक्के 250 ई० के बाद नहीं मिलते। संभवतः वाकाटक नरेश विन्ध्यशक्ति ने मालवा को शकों से छीन लिया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शक सत्ता का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। हालाँकि रूद्रदामन् की मृत्यु के पश्चात् भी लगभग 200 वर्षों तक चष्टन वंश शासन करता रहा। इस वंश का अंतिम शासक रूद्रसेन (रूद्रसिंह) तृतीय हुआ, जिसे गुप्त शासक चंद्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटकों से वैवाहिक संबंध स्थापित कर मार डाला अर्थात् शकों का पूर्णरूपेण उन्मूलन कर उनके राज्य को विशाल गुप्त साम्राज्य में विलीन कर दिया।

16.4.2 पार्थियाई या पहलव

पह्लव मूलत: पार्थिया (ईरान) के निवासी थे। तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य में इण्डोग्रीक शासकों के साथ-साथ पह्लवों ने भी सेल्यूकसी साम्राज्य से स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। भारतीय साहित्य में इनको शकों के साथ उल्लिखित किया गया है तथा दोनों को शक-पह्लव कहा गया है। पार्थियन साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक **मिश्रदात प्रथम** (171-130 ईसा पूर्व) था। उसने जेड्रोसिया, हेरात तथा सीस्तान की विजय की। **मिश्रदात द्वितीय** (123-88ईसा पूर्व) इस वंश का सबसे प्रतापी शासक था उसने शकों को परास्त किया। उक्त दोनों शासकों का प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप की सीमा से बाहर ही रहा। भारत पर आक्रमण करने वाले पार्थियन सरदार मूलत: सीस्तान तथा आरकोसिया (कंधार) से आये थे। उन्हीं को हम पह्लव कहते हैं। यूनानियों और शकों के विपरीत पह्लव ईसा की पहली सदी में पश्चिमोत्तर भारत के एक छोटे-से भाग पर ही सत्ता जमा सके।

वोनोनीज, सीस्तान तथा भारत का प्रथम पह्लव शासक था जिसने **'महाराजाधिराज'** की उपाधि धारण की। यह प्रथम भारतीय शक शासक **मावेज** (मोग) का समकालीन था। वोनोनीज की रजत तथा कांस्य मुद्राओं पर उसके भाई **स्पलहोर** तथा भतीजे **स्पलग्दम** के नाम भी मिलते हैं। संभवतः ये दोनों उसके प्रांतीय गवर्नर थे। वोनोनीज के बाद **श्पेलिरस** शासक बना। इसकी कुछ मुद्राओं के मुख्य भाग पर यूनानी लिपि में स्पेलिरस तथा पृष्ठ भाग पर खरोष्टी लिपि में एजेज नाम अंकित मिलता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि मावेज के बाद बना शक शासक **एजेज प्रथम** उसकी अधीनता में शासन करता था

गोण्डोफर्नीज(20-46ईस्वी) पह्लव वंश का सबसे शक्तिशाली शासक था। उसके शासनकाल की सूचना देने वाला सबसे महत्वपूर्ण **तख्ते-बाही अभिलेख** (पेशावर) है, जिस पर उसके शासनकाल के 26वें वर्ष की तिथि अंकित है (46ई.)। खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्ण इस लेख में गोण्डोफर्नीज को **गुदव्हर** कहा गया है। जबकि फारसी लेखों में उसे विन्दफर्ण (वंश विजयी) कहा गया है। इस अभिलेख में उल्लिखित है कि उसने अपने माता-पिता के प्रति श्रद्धा दिखाते हुए दान दिया था। गोण्डोफर्नीज की रजत तथा ताम्र मुद्राएं पंजाब, सिन्ध, कांधार, सीस्तान तथा काबुल घाटी से मिलती हैं। शकों को परास्त कर उसने पंजाब-सिन्ध पर अधिकार कर लिया था तथा तक्षशिला उसकी राजधानी बनी। इसका प्रमाण वे मुद्राएं हैं जिस पर अस्पवर्मन तथा सस नामक क्षत्रपों के साथ महाराजिधराज गोण्डोफर्नीज अंकित हैं। उल्लेखनीय है कि ये क्षत्रप पूर्व में शक शासक एजेज द्वितीय के अधीनस्थ क्षत्रप थे। गोण्डोफर्नीज ने **'महाराज-महाराधिराज'**, **'धर्मिकस'**, **'अप्रतिहत देवव्रत'** **व** **'त्राता'** जैसी बड़ी-बड़ी उपाधियां धारण की। देवव्रत उसकी सर्वथा नवीन उपाधि थी, जो संभवतः उसकी शिव उपासना में आस्था को दर्शाती है क्योंकि गोण्डोफर्नीज की कुछ मुद्राओं पर त्रिशूल तथा तालपत्र धारण किये हुए स्थानक पुरुष का भी अंकन मिलता है। इसके शासनकाल की एक महत्वपूर्ण घटना ईसाई धर्म प्रचारक **सेण्ड टॉमस** का भारत आना है। ये भारत आने वाले प्रथम ईसाई थे। इनकी मृत्यु मैलापुर (मद्रास) में हुई थी। ईसाई अनुश्रुतियों में गोण्डोफर्नीज को सम्पूर्ण भारत का राजा कहा गया है। गोण्डोफर्नीज की मृत्यु के बाद **एब्डगेसस** तथा **पकोरिस** नामक निर्बल शासक हुए। तत्पश्चात् कुषाणों द्वारा किए गये आक्रमणों से पह्लव सत्ता का अन्त हो गया। हालांकि उनकी सत्ता का पूर्ण विनाश हो गया किन्तु किसी न किसी रूप में वे भारत में लम्बे समय तक विद्यमान रहे । गौतमीपुत्र शातकर्णि को शक-पह्लवों का उन्मूलक कहा गया है।

16.4.3 कुषाण राजवंश

चीनी ग्रंथ **शि-खि** में यह उल्लेखित है कि कुषाण-यूची जाति की एक शाखा थे। यूची जाति प्रारम्भ में चीन के पश्चिमी सीमावर्ती प्रदेश में निवास करती थी। 165 ई. पूर्व के आसपास 'हूँग-नू' (हूण) नरेश लाओ शंग ने यूची जाति पर आक्रमण कर उन्हें वहां से खदेड़ दिया। वहां से प्रस्थान करने के बाद वे मध्य एशिया की इली नदी घाटी में आकर दो शाखाओं में विभाजित हो गये। इनमें से एक शाखा जिसे लघु यूची कहा जाता है, ने दक्षिण की तरफ गमन करते हुए उत्तरी तिब्बत को अपना निवास स्थान बनाया। जबकि दूसरी शाखा जिसे ता-यूची (महान यूची) कहा जाता है, पश्चिमी दिशा में आगे बढ़ी तथा 'सीर दरिया' (मध्य एशिया) में निवास करने वाले शकों को

पराजित कर वहां निवास करने लगी। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम भाग में वे सुदूर पश्चिम की ओर बढ़ते हुए ताह्रिया (बैक्ट्रिया) पहुंचे। यहां के यूनानी शासक का उन्होंने अंत कर दिया तथा बैक्ट्रा (बोखारा- वर्तमान मजारे शरीफ-अफगानिस्तान) को राजधानी बनाया।

तत्पश्यात बैक्ट्रिया में 'ता-यूची' (महान या प्रधान यूची) पुन: 5 भागों में विभाजित हो गये। इनमें से एक शाखा **'कोई चाऊ आंग'** जिसे **कुषाण** कहा जाता है, ने आगे बढ़ते हुए भारतीय उप महाद्वीप में अपना राज्य स्थापित किया। यह मध्य एशियाई खानाबदोश दल तोखारी भाषा का इस्तेमाल करता था। इसलिए स्ट्रेबो ने अपने विवरण में कुषाणों को तोखारय (टोचारियन) नाम से सम्बोधित किया है। कुषाणों को भारतीय साहित्य में ऋषिक तुषार/तुषारस कहा गया है। कुषाणों ने अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति का लाभ उठाकर एशिया के विशाल एवं व्यापक भूभाग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। इस विशाल साम्राज्य में तीन सभ्यताओं और संस्कृतियों का समन्वय हो गया था। पश्चिम में यूनानी-रोमन सभ्यता, पूर्व में चीनी सभ्यता और दक्षिण पूर्व में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का परस्पर समन्वय हुआ ।

कुषाणों के नेता **कुजुल कडफाइसेस** का शासन 40 ई. से आरम्भ हुआ था। उसने हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण में आक्रमण किया और काबुल पर विजय प्राप्त कर गान्धार और तक्षशिला राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया। कडफाइसेस की 77 अथवा 78 ई. में मृत्यु हुई। इस समय तक उसने भारत की सीमाओं पर स्थित इण्डो-यूनानी, शकों और इण्डो-पार्थियन समुदायों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

विम-काड-फिसेस, कुजुल कडफाइसेस का उत्तराधिकारी था। उसने उत्तरी भारत के विशाल भू-भाग पर विजय प्राप्त की। चीनी इतिहासकार शू-मा-चियन लिखता है कि यूची सरदार कुजुल कडफाइसेस ने यू-ची लोगों के पाँच कबीलों को संगठित किया और उन्हें लेकर उत्तरी पर्वतों को पार करता हुआ भारतीय उपमहाद्वीप में घुस आया, जहाँ उसने हरमायेस को परास्त कर काबुल तथा कश्मीर पर अधिकार कर लिया। ईसा की पहली शताब्दी के मध्य के तुरन्त बाद 80 वर्ष की आयु में कुजुल कडफाइसेस की मृत्यु हो गई तथा उसका पुत्र विम कडफाइसेस उत्तराधिकारी बना। विमा ने सोने के सिक्के चलाये। इन सिक्कों से ज्ञात होता है कि उसका राज्य बनारस और सिन्धु घाटी के क्षेत्रों तक फैला हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि नर्मदा नदी के तट तक उसका अधिकार था और मालवा एवं पश्चिमी भारत के शक क्षत्रपों ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था।

इसके बाद **कनिष्क** जो कुषाण साम्राज्य का सबसे शक्तिशाली शासक माना गया है, सिंहासनारूढ़ हुआ जो सम्भवतः जनजाति के छोटे यू-ची वर्ग का था। पेशावर के निकट पुरूषपुर उसकी राजधानी थी। यहाँ पर उसने बौद्ध धर्म के अनेक भवनों का निर्माण कराया। अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में उसने कश्मीर को अपने राज्य में मिला लिया और सिन्धु एवं गंगा घाटी के मध्य क्षेत्र पर अपना आधिपत्य सुदृढ़ किया। उसकी सेना ने पामीर के पार जाकर चीनी राजा को पराजित किया। उसने खोतान, यारकन्द एवं काशगर के प्रमुखों को वार्षिक राजकर देने के लिये बाध्य कर दिया | कनिष्क के कुल 12 अभिलेख प्राप्त हुए है जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कनिष्क ने भारतीय इतिहास में प्रथम अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की। उसका साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से

लेकर दक्षिण में विंध्य पर्वत तक तथा पश्चिम में उत्तरी अफगानिस्तान से लेकर पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा चम्पा (बिहार) तक विस्तृत था । चीनी स्रोतों के अनुसार कनिष्क का अंत दुःखद रहा। निरन्तर युद्धों के कारण प्रजा में असन्तोष फैल गया। अन्ततः वह अपने सैन्य अधिकारियों द्वारा मारा गया। कनिष्क ने कश्मीर में कनिष्कपुर तथा तक्षशिला में सिरकप नामक नगर स्थापित किये।

इसके अतिरिक्त कनिष्क ने 78 ईस्वी में अपने राज्यारोहण के अवसर पर एक नये संवत् **'शक संवत्'** का प्रवर्तन किया, जिसे उसके वंशधरों द्वारा 170 वर्षों तक उपयोग में लाया गया । कनिष्क ने स्वर्ण, ताम्र तथा कांस्य मुद्राएं जारी की। कुषाण कुल में सबसे अधिक स्वर्ण मुद्राएं जारी करने वाला कनिष्क ही था। इसने अपनी मुद्राओं पर से खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा का त्याग कर दिया तथा ग्रीक लिपि तथा खोतानी शक भाषा और यूनानी भाषा को अपनाया। मुद्राओं पर कनिष्क की उपाधि **'महाराजाधिराज'** तथा 'शाओ-नानो शाओ'(शहंशाह) मिलती है। मुद्राओं के अग्र भाग पर कनिष्क का अंकन यज्ञ वेदिका में आहुति डालते हुए राजा के रूप में किया गया है तथा पृष्ठ भाग में ईरानी, यूनानी, रोमन तथा भारतीय देवी देवताओं की आकृतियां उत्कीर्ण हैं, जिसमें प्रमुख हैं- मिइरो तथा माओ (क्रमशः पारसीक सूर्य व चन्द्र) हेलियॉस तथा शालिनी (क्रमशः यूनानी सूर्य व चन्द्र), नाना (सुमेरियन मातृदेवी), आयशो (पारसीक अग्निदेव), ओयशो अथवा मानाबागो (भारतीय देव शिव- इनका अंकन सिंहासनारूढ चतुर्भुज देव के रूप में हुआ जिनके हाथों में कमण्डल, डमरू, त्रिशूल तथा अंकुश का अंकन है) तथा बौद्धों (महात्मा बुद्ध) । कनिष्क की स्वर्ण मुद्राओं पर प्रभामण्डल युक्त बुद्ध की खड़ी प्रतिमा तथा महात्मा बुद्ध अंकित है तथा ताम्र मुद्राओं में यूनानी लेख 'शाको मानो बुद्ध' अर्थात् 'शाक्यमुनि बुद्ध' का अंकन है। मानव रूप में बुद्ध की आकृति का अंकन सर्वप्रथम कनिष्क की मुद्राओं से ही शुरू हुआ। कनिष्क की मुद्राओं पर बुद्ध का अंकन आसन, स्थानक, वरद तथा व्याख्यान मुद्रा आदि में हुआ है। कनिष्क ने नाना देवी के नाम पर **'नाणक मुद्राएं'** भी जारी की थी।

इसके साथ ही कनिष्क के शासनकाल की एक प्रमुख घटना **'चतुर्थ बौद्ध संगीति'** का कश्मीर के कुण्डलवन में आयोजन था। पार्श्व नामक निर्ग्रन्थ जो कनिष्क के राजगुरु थे, इनकी सलाह से ही इस संगीति का आयोजन हुआ। **वसुमित्र** (जिन्होंने विभाषाशास्त्र लिखा) इस संगीति के अध्यक्ष थे। अश्वघोष उपाध्यक्ष तथा मुख्य अतिथि थे। ये कनिष्क के राजकवि भी थे | इन्हें बौद्ध संगीति में शामिल होने के लिए साकेत से विशेष रूप से बुलाया गया था। संघरक्ष कनिष्क के राजपुरोहित थे । एक अन्य दरबारी विद्वान 'मातृचेट' थे, जिन्होंने 'अर्ध्यशतकम्' ग्रन्थ लिखा। आयुर्वेद ग्रन्थ **'चरक संहिता'** के रचयिता तथा काय चिकित्सा के जनक 'चरक' कनिष्क के राजवैद्य थे। 'प्रज्ञा पारमित्रतासूत्र' के रचयिता शून्यवाद के प्रतिपादक तथा माध्यमिक दर्शन के आचार्य 'नागार्जुन' भी कनिष्क के समकालीन थे। इन्हें बौद्ध धर्म का सन्त पाल कहा जाता है। एजिसिलाओस नामक ग्रीक विद्वान भी कनिष्क के दरबार में था।

शीघ्र ही कुषाण साम्राज्य का पतन हो गया। नागाओं और यौद्धेयों ने कुषाण साम्राज्य को सर्वाधिक क्षति पहुँचायी। कनिष्क के उत्तराधिकारियों ने लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक शासन किया। फारस की घटनाओं ने पुनः पश्मिोत्तर भारत के इतिहास में हस्तक्षेप किया। 226 ई. में आरदेशिर ने पार्थियनों को उखाड़ फेंका और ससैनियन

वंश की स्थापना की। उसके उत्तराधिकारी ने तीसरी शताब्दी के मध्य में पेशावर और तक्षशिला पर विजय प्राप्त कर ली। परिणामस्वरूप कुषाण राजा ससैनियनों के सरदार मात्र ही बनकर रह गये। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर स्वीकृत कनिष्क के उत्तराधिकारी, वशिष्ठ, हुविष्क और वासुदेव थे। इसके बाद का इतिहास स्पष्ट नहीं है। कनिष्क के विशाल साम्राज्य के अवशेषों पर मध्य एशिया और पश्चिम में फारस के ससैनियन साम्राज्य का विस्तार हुआ और भारत में गुप्त साम्राज्य स्थापित हुआ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि इस समयांतराल में किसी एक विशाल साम्राज्य के स्थान पर विभिन्न प्रकार के राजवंशों का शासन रहा जिनके क्षेत्र तथा कार्यकाल में भी भिन्नता रही।

16.5 प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था

यद्यपि इस काल में उत्तरी भारत में शकों एवं कुषाणों ने काफी विस्तृत प्रदेशों पर राज्य स्थापित किया परंतु शकों व कुषाणों के प्रशासनिक संगठन में वह केन्द्रीकरण नहीं दिखायी देता, जो मौर्य प्रशासन में देखने को मिलता है। इसका कारण यह रहा होगा कि इन विदेशी आक्रांताओं ने यहां के क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाकर सत्ता तो स्थापित की परंतु विजित हुए स्थानीय तत्वों को पूरी तरह समाप्त नहीं किया बल्कि उसे प्रशासन में भागीदार बना लिया। शक एवं कुषाण शासकों ने अपने अधीनस्थ छोटे-छोटे राजाओं के साथ सामंती संबंध कायम कर लिए। जैसे - कुषाण शासकों द्वारा धारण की जाने वाली प्रभावशाली उपाधियाँ जैसे : महेश्वर, सर्वलोकेश्वर, शाहानुशाही आदि इस तथ्य को प्रकट करती है कि उसके अधीन कई छोटे राजा थे जो उन्हें सैनिक सेवा प्रदान करते थे।

इस काल में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखने के लिये राजतंत्र में दैवी तत्वों को समाविष्ट करने की प्रवृत्ति अपनाई गई। शकों, पहलवों व कुषाणों इत्यादि सभी प्रमुख राजवंशों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। अब राजाओं की तुलना देवताओं से की जाने लगी, जैसे : कुषाण शासकों ने चीनी परंपरा के अनुसार देवपुत्र की उपाधि धारण की। इसके साथ कुषाण शासकों ने रोमन सम्राटों के समान मृत राजाओं की पूजा भी आरंभ की तथा उनकी मूर्तियां बनवाकर उन्हें 'देवकुल' में स्थापित करवाकर राजा को देवता सदृश बनाने का प्रयास किया। मथुरा से प्राप्त देवकुल तथा कनिष्क की सिर विहिन भव्य मूर्ति इसका उदाहरण है। कुषाण शासकों ने अपने सिक्कों पर अपने चित्रों को प्रभामंडल, बादलों अथवा लपटों से भी विभूषित करवाया। इन सबका उद्देश्य था राजा को दैवी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करना जिससे कि उसे अपनी प्रजा तथा स्थानीय अधीनस्थ शासकों को समर्थन एवं सहयोग प्राप्त हो सके।

इस काल में प्रशासन का आम स्वरूप राजतंत्रात्मक था, जिसमें राजा ही सत्ता का प्रधान होता था। राजा ही सभी गतिविधियों के केन्द्र में होता था तथा सभी कुछ उसके अधीनस्थ था। परंतु व्यवहार में क्षेत्रीय तत्व स्थानीय स्तर पर अर्द्ध स्वायत्त होते थे। इस काल में उत्तराधिकारियों को भी प्रशासन में भागीदार बनाये जाने के साक्ष्य मिलते हैं। शकों ने अपने राज्य में द्वैराज्य अथवा यौवराज्य (युवराज का शासन) एवं कुषाणों ने भी प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली जैसी व्यवस्था की स्थापना की थी। शक प्रशासन के तहत क्षत्रप प्रणाली का विकास दिखता

है, जिसमें साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में क्षत्रपों को नियुक्त किया जाता था। उदाहरण के तौर पर चक्षु, कपिशा, अभिसार, पुरूषपुर, मथुरा आदि प्रदेशों में क्षत्रपों की नियुक्ति की गई थी। कुषाण शासकों ने भी अपने साम्राज्य को विभिन्न क्षत्रपियों में विभक्त कर दिया था। बड़ी क्षत्रपी के शासक को 'महाक्षत्रप' तथा छोटे क्षत्रपी के शासक को 'क्षत्रप' कहा जाता था। सारनाथ के लेख में महाक्षत्रप 'खरपल्लान' तथा क्षत्रप वनस्पर का नाम मिलता है जो क्रमशः मथुरा तथा वाराणसी में महाक्षत्रप तथा क्षत्रप की हैसियत से नियुक्त था। कुषाण शासन में क्षत्रप के पद पर अधिकांशतया विदेशी व्यक्तियों की ही नियुक्ति होती थी। कुछ क्षत्रप अनुवांशिक भी होते थे। कभी-कभी एक ही प्रदेश में दो क्षत्रपों की एक साथ नियुक्ति भी होती थी।

रुद्रदामन ने साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त किया था। प्रत्येक प्रान्त का शासन योग्य तथा विश्वासपात्र अमात्य (राज्यपाल) के अधीन रखा गया था। उसके कार्यों में सहायता के लिये मंत्रिपरिषद की व्यवस्था थी जिसमें दो प्रकार के मन्त्री होते थे : (1) मतिसचिव (सलाहकार), (2) कर्मसचिव (कार्यकारी मन्त्री) । वह प्रशासनिक कार्य अपनी मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से ही करता था तथा शक्ति सम्पन्न होते हुये भी निरंकुश नहीं था। मति-सचिव उसके व्यक्तिगत सलाहकार होते थे जबकि कर्म-सचिव कार्यपालिका के अधिकारी थे। इन्हीं में से राज्यपाल, कोषाध्यक्ष, अधीक्षक आदि की नियुक्ति की जाती थी। जूनागढ़ अभिलेख में उसे 'भ्रष्ट-राज-प्रतिष्ठापक' कहा गया है। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति लेख से ज्ञात होता है कि कुषाण साम्राज्य का विभाजन 'विषय' तथा 'भुक्ति' में हुआ था। कुषाण काल में किसी मंत्रिपरिषद का उल्लेख तो नहीं मिलता है, परंतु यहां पर दण्डनायक अथवा महादण्डनायक जैसे अधिकारी की चर्चा मिलती है। संभवतः यह एक सैनिक अधिकारी होता था।

इस काल में कृषि के प्रसार में निजी व्यक्ति की भूमिका पर भी विशेष बल दिया गया | मनुस्मृति के अनुसार "भूमि उसकी होती है जो उसके घास-भूसे को साफ कर आबाद करता है |" स्वयं राज्य की ओर से भी सिंचाई के प्रोत्साहन के लिए कदम उठाया जाता था | उदाहरण के लिए रूद्रदामन ने सुदर्शन झील की मरम्मत कराई। इसके अतिरिक्त मनु ने कृषकों के हितों की सुरक्षा के लिए भी राजा को विधि निर्माण का सुझाव दिया है | उसका कहना है कि राजा को कृषि उपकरण चुराने वाले, खेतों की मेढ़ तोड़ने वाले तथा नकली बीज बेचने वाले लोगों को दण्डित करने के लिए कानून बनाने चाहिए।

इस काल में शिल्प विकास की प्रक्रिया को भी प्रोत्साहन मिला | इस काल में अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग प्रकार के उत्पादों का जिक्र मिलता है | जैसे- उज्जैन मनका बनाने के कार्य हेतु प्रसिद्ध था, मथुरा एक विशेष प्रकार के वस्त्र 'शाटक' के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था। उसी प्रकार दक्षिण में अरिकामेडु और उरैयुर वस्त्रों की रंगाई के काम के लिए जाना जाता था। इस काल में विदेशी यात्रियों ने भी भारत में विभिन्न प्रकार के उत्पादन केन्द्रों का जिक्र किया है, जैसे- 'प्लिनी' भारत को रत्नों की एकमात्र जननी कहता है |

ईसा पूर्व 200 एवं 300 ई० के बीच वाणिज्य व्यापार को प्रेरित करने वाले निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारक थे-

1. कृषि अर्थव्यवस्था के प्रसार के परिणाम स्वरूप एक आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग अस्तित्व में आया और फिर इसने वस्तुओं की माँगे बढ़ा दी। विशेषकर विलासिता संबंधी सामग्रियों की मांग बढ़ाने में इस वर्ग की विशिष्ट भूमिका रही।

2. इस काल में ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में अनाजों के व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला।

3. इस काल में भारत के व्यापारिक सहयोगी के रूप में पश्चिम तथा पूरब में पश्चिमी रोमन साम्राज्य एवं हान साम्राज्य (चीन) का उद्भव हुआ।

4. इस काल में रेशम मार्ग के कुछ भाग पर कुषाणों का नियंत्रण था। फिर जब पहली सदी में मानसून की खोज हुई तो स्थल व्यापार की जगह सामुद्रिक व्यापार को विशेष प्रोत्साहन मिला।

इस काल में भारत के व्यापारिक संबंध पश्चिमी रोमन साम्राज्य, पश्चिम एशिया के क्षेत्र, मध्य एशिया के क्षेत्र, चीन तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के साथ था। भारत कुछ वस्तुएँ सीधे पश्चिमी रोमन साम्राज्य को निर्यात करता था और फिर इस निर्यात की आवश्यकता को पूरा करने के लिए कुछ वस्तुएँ चीन एवं दक्षिण-पूर्व एशिया से मंगाता था। भारत से पश्चिमी रोमन साम्राज्य को निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तु मसाले थी। इसके अतिरिक्त लौह उपकरण सूती एवं रेशमी वस्त्र, कीमती द्रव्य तथा औषधि भी भारत से पश्चिमी रोमन साम्राज्य को निर्यात किया जाता था। बदले में रोमन साम्राज्य से भारत को आयात की जाने वाली प्रमुख वस्तु थी रोमन सिक्के | रोमन सिक्के भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं और फिर ये उत्तर भारत की तुलना में दक्षिण-भारत से अधिक मिले हैं। वस्तुतः उत्तर भारत में उन मुद्राओं की कमी का एक कारण हो सकता है उत्तर भारत के शासकों के द्वारा सम्भवतः उन्हें दोबारा जारी कर दिया जाना। फिर आयात की मदों में सोने और चाँदी के अतिरिक्त अरेटाइन मृदभांड, शराब, शराब के दो हत्थे कलश आदि शामिल थे। एक रोमन लेखक 'प्लिनी' ने रोम से निकास हो रहे कीमती धातु पर अपना दुःख व्यक्त किया है जिससे अनुमान लगाया जाता है कि यह व्यापार संतुलन सम्भवतः भारत के पक्ष में था

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी भारतीयों को मध्य एशियाई लोगों के संपर्क से लाभ हुआ । कनिष्क को पतलून तथा चुस्त पायजामा और लंबे जूतों में चित्रित किया गया है। चमड़े के जूते बनाने का प्रचलन भारत में संभवत: इसी काल से आरंभ हुआ। भारत में प्रचलित तांबे के कुषाणकालीन सिक्के रोमन सिक्कों की नकल थे। इसी तरह भारत में कुषाणों ने जो सोने के सिक्के ढलवाए वे रोमन स्वर्णमुद्राओं की नकल थे। समकालीन स्त्रोतो से ज्ञात होता है कि भारतीय और रोमन राजाओं के बीच दो राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ था। पहला- 27-28 ई० में रोमन सम्राट् ऑगस्टस और दूसरा- 110-120 ई० में रोमन सम्राट् ट्राजन के दरबार में भारत से राजदूत भेजे गए थे। इस प्रकार, भारत के साथ रोम के संपर्क से प्रौद्योगिकी में नए-नए तरीके विकसित हुए होंगे। इस काल में शीशे के काम पर विदेशी विचारों और तरीकों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। प्राचीन भारत में किसी भी अन्य काल में शीशे के काम में ऐसी प्रगति नहीं हुई जैसी इस काल में हुई थी ।

इस काल में बाह्य व्यापार तथा आंतरिक व्यापार दोनों को प्रेरित करने वाला एक कारक था, महत्वपूर्ण मार्गों एवं बन्दरगाहों का विकास। सबसे महत्वपूर्ण मार्ग उत्तरापथ था जो पूरब में ताम्रलिप्ति तथा पश्चिम में भड़ौच जैसे बन्दरगाहों को उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला तथा पेशावर से जोड़ता था और फिर यह मार्ग पेशावर से मध्य एशिया के रेशम मार्ग से जुड़ जाता था। उसी प्रकार इस काल में दक्षिणापथ का भी विकास हो चुका था। दक्षिणापथ में एक महत्वपूर्ण मार्ग उज्जैन को अमरावती से जोड़ता था। फिर एक दूसरे मार्ग का विकास मुजिरिस एवं कावेरीपट्टनम के बीच हुआ था फिर इस काल में कई महत्वपूर्ण बन्दरगाहों का विकास हुआ उदाहरण के लिए उत्तर में दो महत्वपूर्ण बन्दरगाह बारबरीकम तथा बेरीगाजा (भड़ौच) थे। बारबरीकम सिन्धु नदी के मुहाने पर स्थित था वहीं भड़ौच गुजरात तट पर स्थित था। पूरब में ताम्रलिप्ति भी एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह था।

इस काल में व्यापारी शिल्पी संघ तथा श्रेणी में संगठित थे। इन संघ एवं श्रेणियों की न केवल आर्थिक जीवन में वरन् सामाजिक जीवन में भी भूमिका थी। इन श्रेणियों को स्वायत्तता प्राप्त थी। इन्हें अपने सदस्यों के सामाजिक जीवन के नियमन का भी अधिकार था। इनकी अपनी मुहरें होती थीं तथा इनके अपने झंडे होते थे। इसके साथ ही इनके अपने कानून थे जो राजकीय कानून के समकक्ष होते थे। इन श्रेणियों एवं संघो के द्वारा बौद्ध तथा जैन संघों को प्रचुर मात्रा में अनुदान दिया गया।

16.6 समाज एवं धर्म

ईसा पूर्व 200 तथा 300 ई. के मध्य समाज तथा धर्म के क्षेत्र में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिन्होंने परवर्ती हिन्दू समाज एवं हिंदू धर्म का आधार निर्मित कर दिया। इस काल में एक ओर भारतीय समाज में बड़ी संख्या में विदेशी तत्वों का आगमन हो रहा था वहीं दूसरी ओर जनजातीय जनसंख्या कृषक जनसंख्या में ढल रही थी तथा उन्हें वर्ण व्यवस्था में शामिल किया जा रहा था। इसके अतिरिक्त इस काल में एक प्रकार का सामाजिक संकट भी उत्पन्न हुआ जिसकी अभिव्यक्ति समकालीन पुराणों में कलियुग की अवधारणा के रूप में हुई है। इसका अर्थ है निचले वर्ग के लोगों का उच्च वर्ग के लोगों के विरूद्ध विद्रोह। मनु संहिता में भी इस संकट की ओर संकेत है, क्योंकि इसमें निम्न वर्ण के लोगों के विरूद्ध उच्च वर्ण की एकता की बात की गई है। इन परिवर्तनों ने एक प्रकार के सामाजिक तनाव को उत्पन्न किया। वस्तुतः मनु को इस सामाजिक चुनौती का सामना करना पड़ा। इसी क्रम में मनु ने एक जटिल सामाजिक व्यवस्था को स्थापित किया। सामाजिक व्यवस्था के प्रति मनु की दृष्टि अत्यंत कठोर दिखती है। जिसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि मनु ने वर्ण व्यवस्था की शुद्धता को बनाये रखना चाहा इसीलिए मनु ने एक बार पुनः ब्राह्मणवादी विशेषाधिकारों पर बल दिया |

इस काल की सामाजिक व्यवस्था का दूसरा महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण था- वर्ण संकर जातियों की संख्या में विस्तार | उदाहरण के लिये बौद्ध ग्रंथ में जहां वर्ण संकर जातियों की संख्या बारह थी, वहीं मनु संहिता में इसकी संख्या बढ़कर 61 हो गई। उसी प्रकार आरंभ में मनु ने विदेशियों को मलेच्छ कह कर तिरस्कृत किया, किन्तु आगे उन्हें द्वितीय स्तर के क्षत्रिय का दर्जा देकर वर्ण व्यवस्था में सम्मिलित कर लिया। शुद्रों के प्रति मनु की दृष्टि कठोर दिखती है। कौटिल्य ने जहां शुद्रों को वार्ता (अर्थात व्यापार एवं कृषि द्वारा जीवन-यापन) का अधिकार दिया था,

वहीं मनु के द्वारा उसके दो ही कर्त्तव्य निर्धारित किये गए- शिल्प एवं सेवा। वस्तुतः मनु का बल इस बात पर रहा कि उत्पादन करने वाले निम्न वर्गों की संख्या में विस्तार हो वहीं अधिशेष प्राप्तकर्त्ता उच्च वर्णों की संख्या सीमित रहे।

उसी प्रकार वर्ण की शुद्धता को बनाये रखने के लिए मनु ने महिलाओं को पुरुषों के अधीन कर दिया। इस काल में विधवा विवाह पर पाबंदी लगा दी गयी तथा बाल विवाह को प्रोत्साहन दिया गया फिर मनु ने महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार से भी वंचित रखा। इस प्रकार हम देखते है कि मनुसंहिता ने ही परवर्ती काल की कठोर हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला निर्मित कर दी।

फिर यह वह काल था जब कुछ गैर आर्य देवता भी आर्य पंथ में शामिल होते चले गये। इसके परिणामस्वरूप धर्म का वह रूप निखरकर आया जिसे हिन्दू धर्म के रूप में पहचाना गया। ये देवता थे शिव कुमार कार्तिकेय, मातृदेवी, गणेश, पशु, वृक्ष आदि। इस प्रकार ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में सामाजिक एकीकरण ने धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन लाया और फिर यह परिवर्तन भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण भू-चिह्न बन गया।

1.7 कला एवं संस्कृति

इस काल में हमें स्थापत्य कला के एक रूप में आवासीय संरचना का साक्ष्य कम मिलता है इसका कारण है कि संभवतः ये शीघ्र नष्ट हो जाने वाली सामग्रियों से निर्मित की गयी थी। वहीं दूसरी तरफ अस्पष्ट रूप में मंदिरों के कुछ साक्ष्य मिलते हैं। किंतु इस काल में संभवतः मंदिरों में मूर्तियों को स्थापित कर औपचारिक रूप में मूर्तिपूजा आरंभ नहीं हुई थी। वस्तुतः इस काल की स्थापत्य कला मूलतः बौद्ध दृष्टिकोण से परिचालित थी फिर भी मौर्यकाल की तुलना में इसके स्वरूप में एक महत्वपूर्ण अंतर देखने को मिलता है। वस्तुतः मौर्य काल में कला राजकीय संरक्षण में पली एवं बढ़ी इसलिए मौर्य साम्राज्य के पतन के साथ ही कुछ कला शैलियां लुप्त हो गई। वहीं मौर्योतर कला को एक व्यापक सामाजिक आधार प्राप्त हुआ क्योंकि राज्य के साथ-साथ इसे व्यापारी, शिल्प श्रेणियां, कुलीन तथा अन्य प्रकार के नवधनाढ्य लोगों का भी संरक्षण प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं अपितु कला को भिक्षुक एवं भिक्षुणियों का भी संरक्षण मिला। वहीं दूसरी तरफ यह वह काल था जब धर्म के क्षेत्र में आर्य तत्वों के साथ गैर आर्य तत्वों का भी समावेशीकरण हो रहा था। यह प्रवृत्ति हमें कला के क्षेत्र में भी देखने को मिलती है।

16.7.1 स्थापत्य कला

स्तूप- स्तूप कला पर हम जनजातीय प्रभाव देख सकते हैं। स्तूप की पूरी संकल्पना ही जनजातीय तत्वों से ली गई थी। माना जाता है कि जब कोई जनजातीय मुखिया की मृत्यु होती थी तो उसके पार्थिव शरीर को मिट्टी के नीचे दफनाया जाता तथा उसके ऊपर मिट्टी का ही एक अर्द्धवृत्ताकार गुम्बद बना दिया जाता था। बौद्ध धर्म में इस लोक संस्कृति को अपनाया गया तथा इसके अंतर्गत एक अर्द्धवृत्ताकार ईट तथा पत्थर से निर्मित गुंबद के अंतर्गत बुद्ध अथवा किसी पवित्र संत का अवशेष एवं उनसे जुड़ी कुछ वस्तुओं को रखा जाने लगा। फिर आगे स्तूप पर वेदिका और प्रवेश द्वार बनने लगा इनके ऊपर नाग-नागिन, पशु एवं मानव मूर्तियां बनाई जाने लगी। ये भी लोकतत्वों से

ली गई थी किंतु बौद्ध धर्म ने इन्हें अपने में समाहित कर लिया। पशुओं की मूर्तियों को बुद्ध के जीवन से जोड़ दिया गया यथा हाथी, गर्भ में आने का प्रतीक, सांढ यौवन का प्रतीक, घोड़ा गृह त्याग का प्रतीक। उसी प्रकार यक्ष-यक्षणी की मूर्तियां भी बनाई जाने लगी तथा यक्ष, यक्षणियां सहयोगी के रूप में स्थापित किये गए |

चैत्य- चैत्य बौद्धों का पूजा गृह था। अधिकांश चैत्य पहाड़ों को काट कर निर्मित किये जाते तथा ये मौर्यकालीन गुफा वास्तुकला के विकसित रूप थे। सामान्यतः चैत्य आयताकार होता था तथा उसका अंतिम किनारा अर्द्धवृत्ताकार होता था। उसके केंद्र में एक स्तूप का भी निर्माण किया जाता था | इसका उद्देश्य उपासना था। फिर स्तूप के साथ मानव मूर्ति भी जोड़ी जाने लगी तथा स्तूप की छत को घोड़े के नाल के आकार में काट दिया जाता था ताकि उससे रोशनी स्तूप के ऊपर पड़े।

विहार- विहार भिक्षुओं के निवास के लिए बनाए जाते थे। इन्हें पहाड़ों को काट कर बनाया जाता था। विहार अशोक के काल में निर्मित गुफाओं के विकसित रूप को दर्शाता है। इस काल में जहां भी चैत्य बने उनके निकट विहारों का भी निर्माण किया गया।

16.7.2 मूर्तिकला

मौर्यकाल में पशुओं की जीवंत आकृतियां बनाई गई थी किंतु मौयों के पश्चात् वह शैली छूट गई तथा फिर वैसी जीवंत पशु आकृतियां देखने को नहीं मिलती। परंतु दूसरी तरफ उसकी क्षतिपूर्ति मानव मूर्तियों के विकास के रूप में की गई। वस्तुतः इस काल में मूर्ति कला की तीन भिन्न शैलियां- गांधार एवं मथुरा कला विकसित हुई। जिनकी विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं-

16.7.2.1 गांधार शैली

यह शैली तक्षशिला एवं आस-पास के क्षेत्रों में विकसित हुई एवं इसका विकास हेलेनिस्टिक कला (यूनानी) तथा भारतीय तत्वों के मिश्रण के परिणाम स्वरूप हुआ। वस्तुतः सिकंदर के काल से ही भूमध्य सागरीय क्षेत्र एवं भारत के बीच आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान हो रहा था। गांधार कला को यूनानी-रोमन कला के नाम से भी जाना जाता है। मौलिक रूप में इसका विकास यूनान में हुआ तथा देवताओं का प्रतिनिधित्व मानवीय रूप में होने लगा। यूनान में सौंदर्य के देवता अपोलो को एक सुदंर मानव मूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया। फिर इस पर रोमन कला का प्रभाव भारी साज-सज्जा, राजमुकुट तथा आभूषण के रूप में देखा जा सकता है | किंतु आत्मा से गांधार कला भारतीय ही बनी रही। आरंभ में इसने मथुरा कला को प्रभावित किया फिर स्वयं ही मथुरा कला से भी प्रभावित हुई। गांधार कला के अंतर्गत मूर्ति के निर्माण में गहरे नीले अथवा काले पत्थर का प्रयोग हुआ है। गांधार शैली का दृष्टिकोण यथार्थवादी है तथा इसमें शरीर की यर्थाथ बनावट मांसपेशियां, कपड़ों की सलवटें, सभी का सजीव एवं यर्थाथ चित्रण मिलता है। इसका मुख्य विषय बौद्ध धर्म से संबंधित है तथा इसमें बड़ी संख्या में बोधिसत्वों का चित्रण हुआ है फिर भी बौद्ध धर्म से इतर अन्य प्रकार की मूर्तियां भी इसके अंतर्गत

बनायी जाती थी। शारीरिक बनावट में मुख्यतः यूनानी तत्वों से जबकि वेशभूषा तथा साज-सज्जा में रोमन तत्वों से प्रभावित थी। वही दूसरी तरफ यह अपनी आत्मा से भारतीय थी।

यूनान में देवताओं को मानव रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा था। यूनानी-रोमन कला में देवताओं की मूर्तियां निर्मित की जाती थीं, इसलिये भारत की भूमि पर भी यूनानी-रोमन प्रभाव से देवताओं की मूर्तियां मानव रूप में बनायी जाने लगी। इसे गांधार कला का नाम दिया गया। गांधार कला के अंतर्गत बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्तियां निर्मित की गई। इस कला के अंतर्गत मूर्ति की शारीरिक बनावट यथार्थ रूप में प्रस्तुत की गयी | उदाहरण के लिए मांसपेशियां, केस विन्यास तथा शरीर के विभिन्न अंगों के यथार्थ चित्रण पर सीधा यूनानी प्रभाव था। बुद्ध को यूनानी देवता अपोलो की तरह प्रस्तुत किया गया किंतु बुद्ध के शरीर पर कपड़े एवं आभूषण रोमन शैली से प्रभावित थे। रोमन शैली में पारदर्शी कपड़े, उनकी सलवटें तथा मूर्ति के सिर पर राजमुकुट एवं शरीर के अन्य आभूषण को दर्शाया गया था। फिर आगे भारतीय प्रभाव में मूर्ति के मुख पर आध्यात्मिकता को भी प्रदर्शित किया जाने लगा।

16.7.2.2 मथुरा शैली

यह शैली मथुरा एवं आस-पास के क्षेत्र में विकसित हुई। मथुरा कला का दृष्टिकोण आदर्शवादी है | इसमें मूर्तियों के शारीरिक अंकन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। पारदर्शी कपड़े शरीर से चिपके दिखाऐ गए है, किंतु इसमें मुख्य बल मूर्ति के चेहरे पर आध्यात्मिकता दिखाने पर दिया गया है । प्रायः मूर्तियों की आंखें आधी खुली हुई तथा उसका चेहरा ध्यानमग्न दिखता है। मथुरा कला में मूर्तियों के निर्माण में लाल चिन्हित पत्थर का प्रयोग किया गया है साथ ही इस कला के अंतर्गत बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियों भी निर्मित की गई है।

अतः मथुरा कला एवं गांधार कला जैसी मूर्ति निर्माण कला की महत्वपूर्ण शैलियों ने ही गुप्तकाल में सारनाथ कला के विकास का आधार निर्मित किया।

16.7.3 साहित्य

अश्वघोष जैसे कुछ महान साहित्यकारों को कुषाणों का संरक्षण प्राप्त था। अश्वघोष ने बुद्ध की जीवनी 'बुद्धचरित' के नाम से लिखी। इसके साथ ही अश्वघोष ने 'सौन्दरनन्द' नामक काव्य भी लिखा जो संस्कृत काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। महायान बौद्ध संप्रदाय की प्रगति के फलस्वरूप अनगिनत अवदानों की रचना हुई। कई अवदान बौद्धों की मिश्रित संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं। अवदानों का अन्यतम उद्देश्य लोगों को महायान के उपदेशों से अवगत कराना है। इस कोटि की प्रमुख कृतियाँ हैं- महावस्तु और दिव्यावदान।

16.8 सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस काल में निश्चय ही बहुराज्यीय व्यवस्था कायम रही परन्तु कुषाणों के अधीन उत्तर भारत में एक बड़े साम्राज्य की स्थापना की गई, जिसमें भारत के अतिरिक्त पश्चिमी एशिया और मध्य

एशिया के क्षेत्र भी शामिल थे तथा रेशम मार्ग के एक भाग पर भी कुषाणों का नियन्त्रण था। यह दक्षिण एवं भूमध्यसागरीय क्षेत्र के बीच तीव्र आर्थिक संबंधों का काल था। इस काल में रोमन व्यापार ने मुद्रा अर्थव्यवस्था एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को व्यापक प्रोत्साहन दिया। प्राचीन भारत में सबसे अधिक सिक्के इसी काल में जारी किये गये। उसी प्रकार, सामाजिक क्षेत्र में यह काल नवीन परिवर्तनों को प्रोत्साहन देता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह काल महत्वपूर्ण था। इस काल की संस्कृति को स्वदेशी एवं विदेशी संस्कृति में बांटकर देखना उचित नहीं है, क्योंकि इन्हीं तथाकथित विदेशी शासकों ने तत्कालीन भारतीय समाज में उपस्थित विभिन्न धार्मिक पंथों को अपनाया तथा उन्हें अपना संरक्षण दिया। फिर इन्हीं के माध्यम से ये भारतीय समाज में समाहित हो गये। सबसे बढ़कर इस काल में संस्कृत भाषा साहित्य को, जिसने गुप्तकाल में क्लासिकल मॉडल ग्रहण किया, प्रोत्साहन मिला था। वस्तुतः संस्कृत का प्रथम बड़ा अभिलेख किसी गुप्त शासक के द्वारा नहीं वरन् एक शक शासक रूद्रदामन के द्वारा लिखा गया |

स्वमुल्यांकित प्रश्न

1. भारतीय उपमहाद्वीप का संस्कृत भाषा में लिखित प्रथम अभिलेख कौन सा है-

(अ). समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति लेख

(ब). रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख

(स). सम्राट अशोक का चौदहवां अभिलेख

(द). नयनिका का नानाघाट अभिलेख

2. कुषाण वंश का संस्थापक कौन था-

(अ). कनिष्क

(ब). हुविष्क

(स). कुजुल-कद-फाईसेस

(द). रुद्रदामन

3. चतुर्थ बौद्ध संगीति किस शासक के शासनकाल में हुई थी-

(अ). सम्राट अशोक

(ब). कनिष्क

(स). अजातशत्रु

(द). रुद्रदामन

4. ‘बुद्धचरित’ की रचना किसने की थी-

(अ). अश्वघोष

(ब). चरक

(स). कौटिल्य

(द). कालिदास

5. ईसाई धर्म प्रचारक सेण्ड टॉमस किस भारतीय शासक के शासनकाल में भारत आया-

(अ). सम्राट कनिष्क

(ब). रुद्रदामन

(स). अशोक

(द). गोण्डोफर्नीज

16.7 तकनीकी शब्दावली

क्षत्रप- शकों के अधीन प्रांतीय शासकों का पदनाम |

बौद्ध संगीति – बौद्ध भिक्षुओं का सम्मलेन जिसमें बौद्ध दर्शन, सूत्र एवं नियमों को संकलित किया गया |

शक संवत- कुषाण शासक कनिष्क द्वारा अपने राज्यारोहण के अवसर पर सन् 78 ई० में प्रचलित एक नवीन संवत |

श्रेणी- व्यापारियों एवं शिल्पियों का व्यावसायिक संगठन |

16.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (ब), 2.(स), 3.(ब), 4.(अ), 5. (द)

16.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, उपेन्द्र., ए हिस्ट्री ऑफ एन्शिएंट एंड अर्ली मिड़ेवल इंडिया, दिल्ली, 2009.

2. शर्मा, रामशरण., प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2010.

3 . महाजन, बी. डी., प्राचीन भारत का इतिहास, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005.

4. चक्रवर्ती, रणवीर., हिन्दी अनुवाद- उमाशंकर शर्मा ‘ऋषि’, भारतीय इतिहास का आदिकाल- प्राचीनतम पर्व से ६०० ईस्वी तक, ओरिएंट ब्लेकस्वान पब्लिकेशन, 2012.

5. झा, डी०एन०., प्राचीन भारत एक रुपरेखा, पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम मुद्रण- 1980, इक्कीसवां संशोधित मुद्रण- 2012.

16.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बाशम, ए. एल., अद्भुत भारत, अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972.

2. मित्तल, ए०के०., भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास- सिन्धु सभ्यता से 1206 ई०, साहित्य भवन, आगरा, 1995.

3. त्रिपाठी, रमाशंकर., प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित, श्री जैनेन्द्र प्रेस, नई दिल्ली, 1977, संशोधित मुद्रण-2007.

4. https://en.wikipedia.org/wiki/Kushan_Empire

5. https://www.metmuseum.org/toah/hd/kush/hd_kush.htm

6. https://egyankosh.ac.in/handle/123456789/67705

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. शक कौन थे | शकों के राजनीतिक प्रसार एवं उपलब्धियों की समीक्षा कीजिये |

2. कुषाण कौन थे | कुषाणों के अधीन राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था की विवेचना कीजिए |

3. कुषाण शासकों के अधीन कला की विभिन्न शैलियों का वर्णन कीजिए |